Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/2017-19
R.N.I.No. 51966/1989,ISSN 2455-2399
Date of Publication 15th March 2018
Date of posting 15th & 20th March2018

फरवरी-मार्च 2018 • वर्ष 30 • अंक 02-03 • मूल्य ₹ 80

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

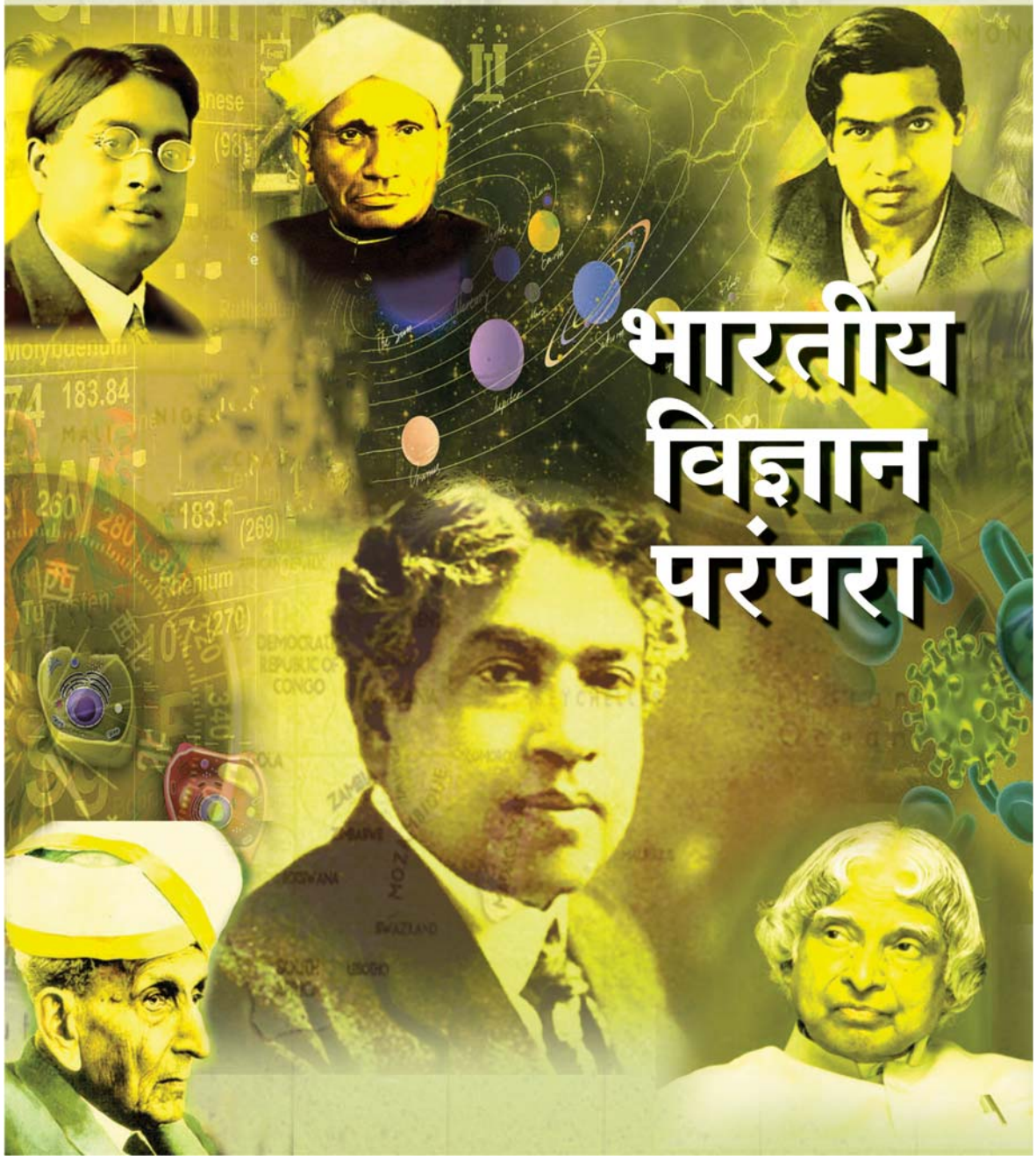

भारतीय विज्ञान परंपरा

RNI No. 51966/1989
ISSN 2455-2399
www.electroniki.com
फरवरी-मार्च 2018
वर्ष 30
अंक 2-3

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान, रामेश्वर गुरु पुरस्कार, भारतेन्दु पुरस्कार तथा सारस्वत सम्मान से सम्मानित

सलाहकार मण्डल
शरदचंद्र बेहार, डॉ. वि.दि. गर्दे, देवेन्द्र मेवाड़ी, मनोज पटैरिया,
डॉ. संध्या चतुर्वेदी, प्रो. विजयकांत वर्मा, डॉ. रविप्रकाश दुबे,
डॉ.अशोक कुमार ग्वाल, डॉ.आर.एन.यादव

संपादक
संतोष चौबे

कार्यकारी संपादक
विनीता चौबे

उप–संपादक
पुष्पा असिवाल

सह–संपादक
मोहन सगोरिया, रवीन्द्र जैन, मनीष श्रीवास्तव

संस्थागत सहयोग
अमिताभ सक्सेना, गौरव शुक्ला, डॉ. राघव, डॉ. विजय सिंह,
डॉ. अनुराग सीठा, डॉ. सत्येन्द्र खरे, संतोष शुक्ला

राज्य प्रसार समन्वयक
शशिकांत वर्मा, लातूर सिंह वर्मा, लियाक़त अली खोखर,
राजेश शुक्ला, दर्शन व्यास, शलभ नेपालिया, अंबरीष कुमार, ए.के.सिंह,
हरीश कुमार पहारे, अभिषेक आनंद, निशांत श्रीवास्तव, रजत चतुर्वेदी

क्षेत्रीय प्रसार समन्वयक
राजीव चौबे, जितेन्द्र पांडे, लुकमान मसूद,
आर.के. भारद्वाज, संजीव गुप्ता, रवि चतुर्वेदी, प्रवीण तिवारी,
अरुण साहू, अभिषेक अवस्थी, विजय श्रीवास्तव, के.आई. जावेद,
असीम सरकार, अमृतेष कुमार, योगेश मिश्रा, संदीप वशिष्ठ,
मनीष खरे, आबिद हुसैन भट्ट, दलजीत सिंह, राजन सोनी,
अजीत चतुर्वेदी, अनिल कुमार, अमिताभ गांगुली,
कुम्भलाल यादव, राजेश बोस, देबदत्ता बॅनर्जी, नरेन्द्र कुमार

समन्वयक प्रचार एवं विज्ञापन
राजेश पंडा

आवरण एवं डिजाइन
वंदना श्रीवास्तव, अमित सोनी

विज्ञान हमारे समय का सबसे बड़ा सत्य है। विज्ञान प्रकृति की जो समझ देता है और जिस गहन समरसता को उद्घाटित करता है, वह मानव मस्तिष्क को गहरा संतोष देता है। विज्ञान में समाज को बदलने की बड़ी शक्ति है, शायद किसी भी अन्य गतिविधि से भी अधिक।

– दौलत सिंह कोठारी

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 283-84

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

पाठकीय/09

संपादकीय

प्राचीन भारत की विज्ञान परंपरा • संतोष चौबे/11

विज्ञान धरोहर

आज की प्रगति पूर्व आविष्कार का परिणाम है • अब्दुल कलाम/13

दूरियाँ हुईं दूर • प्रो.यश पाल/16

आज भी खरे हैं तालाब • अनुपम मिश्र/21

इतिहास में विज्ञान

विज्ञान : पश्चिम व भारतीय धारणा • सुरेश सोनी/24

पर्यावरण संरक्षण : भारतीय प्राचीन दर्शन• अखिलेख कुमार पाण्डेय/26

अंकों का उद्भव • शुकदेव प्रसाद/29

आर्यभट की आधुनिक खगोल वैज्ञानिक दृष्टि• देवेन्द्र मेवाड़ी/34

कैलेंडर का इतिहास और वर्तमान• संगीता चतुर्वेदी/37

ब्रह्माण्ड की तेरह महत्वपूर्ण संख्याएँ• आशीष श्रीवास्तव/40

अरबों वर्ष पुरानी है पृथ्वी! • डॉ.विजय कुमार उपाध्याय/45

भू-पुरात्त्वीय इतिहास की खोज • डॉ.कपूरमल जैन/48

भारत निर्माण यात्रा में विज्ञान और परंपरा • राग तेलंग/53

भारतीय यांत्रिकी संरचनाएँ • संजीव वर्मा 'सलिल'/55

विज्ञान और उद्यम

उद्यमशीलता और नवोन्मेष • लक्ष्मण प्रसाद/58

जैवविविधता के संरक्षण और जैव प्रौद्योगिकी• विनीता सिंघल/62

भविष्य जैविक खेती का • दिनेश मणि/66

अंतरिक्ष में विज्ञान

104 उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण • कालीशंकर/72

भारत की परमाणु शक्ति • विजन कुमार पाण्डेय/76

आज अंतरिक्ष में भारत • डॉ.शुभ्रता मिश्रा/78

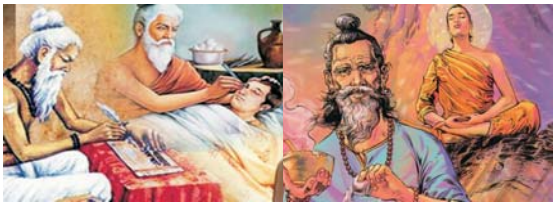

जीवन में विज्ञान

योग का विज्ञान • विजन कुमार पांडे/80

• 'विपश्यना' ध्यान का विज्ञान • विजय चितौरी/84

आदिवासी औषधि संपदा• डॉ.स्वाति तिवारी/88

हिन्दी में विज्ञान

विज्ञान साहित्य की वर्तमान स्थिति तथा संभावनाएं • शिवगोपाल मिश्र/92

चिकित्सा विज्ञान में हिंदी • प्रो.मोहनलाल छीपा/96

हमारे वैज्ञानिक

सुश्रुत और कौमारभृत्य जीवक • वाणी रे/101

नोबेल पुरस्कृत हमारे वैज्ञानिक /104

गुज़िश्ता सदी के भारतीय वैज्ञानिक • शुचि मिश्रा/108

आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे • नवनीत कुमार गुप्ता/113

विज्ञान इस माह

पृथ्वी की जैविक सुपर मार्केट • इरफान ह्यूमन/116

कॅरियर

कृषि विज्ञान • संजय गोस्वामी/120

समीक्षा

भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा : सुरेश सोनी • मनीष पारासर/120

पत्र व्यवहार का पता

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस, एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल–462047

फोन : 0755-6766166 (डेस्क), 0755-6766101, 0755-2432801 (रिसेप्शन), 0755-6766110(फैक्स)

e-mail : electroniki@electroniki.com, website : www.electroniki.com वार्षिक शुल्क : 480/- यह अंक : 80/-

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है।

सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा पहले-पहल प्रिंटरी, 25 ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- संतोष चौबे।

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

मध्यप्रदेश शासन
भोपाल-462004

सं.क्र. 35, 19 जनवरी 2018

संदेश

अत्यंत हर्ष का विषय है कि 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' पत्रिका द्वारा 'भारतीय विज्ञान परंपरा' पर केन्द्रित विशेष अंक का प्रकाशन किया जा रहा है।

भारत की वैज्ञानिक परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। भारत के वैज्ञानिक प्रयोगधर्मा रहे हैं। प्लास्टिक सर्जरी से लेकर धातु विज्ञान, रसायन विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, गणित, काल गणना, आयुर्वेद जैसे कितने ही विषय हैं और असंख्य वैज्ञानिक अवधारणाएँ हैं जिनका उद्‌भव भारत में ही हुआ और यहाँ से विश्व में उनका प्रसार हुआ। आज जब पश्चिम से आयातीत विज्ञान पर हम गर्व करते हैं तो हमारी भारतीय विज्ञान परंपराओं से विद्यार्थियों की नई पीढ़ी को परिचित कराने की आवश्यकता है।

आशा है पत्रिका का यह अंक नई पीढ़ी के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ स्रोत साबित होगा।

शुभकामनाओं सहित।

(शिवराज सिंह चौहान)

UMASHANKAR GUPTA
MINISTER
Revenue, Science and Technology

E-22/45. Banglows, T.T.Nagar Bhopal
Resi : (0755)2770120, 2551385
Secretariate : (0755) 2441193
Fax : (0755) 2770120
Vidhan Sabha : (0755) 2523151

संदेश

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' विज्ञान के प्रचार-प्रसार क्षेत्र में आईसेक्ट द्वारा प्रकाशित किया जाना एक सराहनीय प्रयास है। 'भारतीय विज्ञान परम्परा' जैसे विषय को पत्रिका के केंद्र में रखना एक अनूठी पहल है। इस पहल से विश्व के विज्ञान पटल पर भारतीय वैज्ञानिकों का अवदान रेखांकित होगा।

आईसेक्ट द्वारा प्रकाशित इस पत्रिका की - वर्षों की विज्ञान यात्रा और इसके सतत प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

(उमाशंकर गुप्ता)

दीपक जोशी
राज्यमंत्री
तकनीकी शिक्षा एवं कौशल विकास (स्वतंत्र प्रभार)
श्रम एवं स्कूल शिक्षा विभाग
मध्यप्रदेश शासन

निवास : बी-23, 74 बंगला,
स्वामी दयानंद नगर, भोपाल 462002
निवास : 0755-2441814, 2441068
मंत्रालय : 0755-2443977 (कार्यालय)
फैक्स : 0755-2441814
ई-मेल : deepakjoshistateminister@gmail.com
अ.शा. पत्र क्रमांक 216
भोपाल दिनांक 22-1-18

संदेश

बड़े हर्ष का विषय है कि 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' विज्ञान की मासिक पत्रिका का यह विशेषांक 'भारत की विज्ञान परंपरा' पर केंद्रित है और पाठकों तक पहुँच रहा है। आईसेक्ट का यह प्रयास प्रशंसनीय है। भारत की वैज्ञानिक परंपरा जो इस दौर में लगभग विस्मृति तक पहुँच गई है, इस विशेषांक से पाठक, छात्र और विज्ञानकर्मी परिचित हो सकेंगे। किसी भी पत्रिका का निरंतर तीस वर्षों से प्रकाशित होना एक बड़ी उपलब्धि की तरह देखा जाना चाहिए।

विशेषांक 'भारत में विज्ञान परंपरा' के सफल प्रकाशन हेतु मेरी ओर से हार्दिक-हार्दिक शुभकामनाएँ।

(दीपक जोशी)

सुरेन्द्र पटवा
राज्यमंत्री
पर्यटन एवं संस्कृति (स्वतंत्र प्रभार)
किसान कल्याण तथा कृषि विकास
मध्यप्रदेश शासन

मंत्रालय : 0755-2558826
निवास : बी-4, स्वामी दयानंद नगर,
74 बंगला, भोपाल
दूरभाष/फैक्स : 0755-2558775, 2441228
ई-मेल : mctbhopal@gmail.com
जावक क्रमांक 132
दिनांक 22-1-18

संदेश

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आईसेक्ट द्वारा प्रकाशित विज्ञान मासिक पत्रिका 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' विगत तीस वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका के पाठक छात्र, शोधार्थी, वैज्ञानिक, विज्ञान संचारक, विज्ञानकर्मी समय-समय पर इसे रेखांकित कर रहे हैं, यह एक प्रशंसनीय एवं सराहनीय कार्य है।

मैं इस अवसर पर पत्रिका के आगामी अंक 'भारतीय विज्ञान परंपरा विशेषांक' के प्रकाशन हेतु आपको एवं आपके साथ कार्य करने वाले समूह को अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(सुरेन्द्र पटवा)

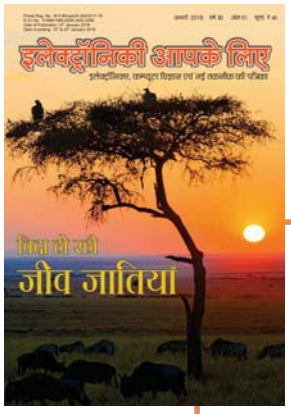

पत्र-प्रतिक्रिया

पत्र-प्रतिक्रिया

पा ठ की य

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' अंक दिसंबर, 2017 प्राप्त हुआ। विज्ञानवार्ता के अंतर्गत 'जीवन के हर पहलू से जुड़ा है विज्ञान' तथा विजन कुमार पाण्डेय का आलेख 'नोबेल और भारतीय प्रतिभाएं' संग्रहणीय है। इस पत्रिका में प्रकाशित प्रत्येक आलेख मानव जीवन को एक नया वैज्ञानिक दृष्टिकोण देता है। 'विज्ञान इस माह' स्तंभ भी प्रशंसनीय है। पत्रिका का संपादकीय कौशल किसी भी वैज्ञानिक संस्थान की पत्रिका के संपादक के लिए अनुकरणीय है। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' का संपादकीय कौशल मेरे लिए सदैव पथ-प्रदर्शक रहा है। पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका इसी प्रकार अन्य पत्रिकाओं के संपादकों का मार्ग प्रशस्त करती रहेगी।

डॉ.राजनारायण अवस्थी, हैदराबाद

आपके द्वारा प्रकाशित पत्रिका को पढ़कर मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' विज्ञान पत्रिका के रूप में एक ऐसा स्थान बना चुकी है जहाँ आने वाले समय में अन्य कोई पत्रिका पहुँच न सकेगी, क्योंकि जिस तरह किताबें ई-वर्जन में आ रही है, प्रिंट स्वरूप का अस्तित्व खतरे में है। हम सब आज एक वर्चुअल वर्ल्ड में जी रहे हैं, यह कहना-समझना कितना दिलचस्प है कि हमारे साधन-साध्य और 'टूल्स' भी वर्चुअल हो रहे हैं। ऐसे समय में आईसेक्ट लिमिटेड की ओर से सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा पत्रिका प्रकाशन का एक ठोस कदम उठाना ऐतिहासिक ही है। इस पत्रिका के पक्ष में मैं इतना ही कहूँगा कि अन्य विज्ञान पत्रिकाओं की तुलना में यह अधिक पठनीय, रोचक और संग्रहणीय है। सबसे बड़ी बात यह है कि हिन्दी में निकलने वाली यह पत्रिका 'अपनी' ही पत्रिका लगती है जबकि अन्य पत्रिकाएँ अंग्रेजी पत्रिकाओं की डमी लगती हैं। अन्य पत्रिकाओं से इसकी तुलना करने का मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, इसका स्वतंत्र रूप में उल्लेख होना चाहिए।

दिसम्बर अंक में डॉ.बी.के.त्यागी का इंटरव्यू 'जीवन के हर पहलू से जुड़ा है विज्ञान' एक अच्छी चर्चा है। जब कोई वैज्ञानिक विषय विशेष पर बयान देता है तब वह अपने कर्तव्य का निर्वहन ही कर रहा होता है, उन्हें बधाई और धन्यवाद। इस अंक में स्वाति तिवारी, राग तेलंग, अरविंद दुबे और इरफान ह्यूमन की प्रशंसा करनी होगी कि उनकी भाषा में एक रवानगी है। जीवन के अलग-अलग पहलू और विषयों पर वे वैज्ञानिक ढंग से अपनी तार्किक बात कह सके हैं। संजय गोस्वामी का कॉलम 'कॅरियर' हमेशा की तरह उपयोगी है।

अखिलेश सोनी, सीहोर

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' का जनवरी अंक पढ़ा। आवरण पृष्ठ प्रभावित करता है। इसमें विलुप्त हो रही जीव-जातियों की चिंता है। वर्ष के आरंभ से ही आपने यह चिंता दर्ज करायी है तो सहज ही पूरी जिम्मेदारी से कहा जा सकता है कि पत्रिका अपने दायित्व को निभा रही है। देवेन्द्र मेवाड़ी एक वरिष्ठ विज्ञान लेखक हैं, उनका लिखा किसी भी क्लासिक श्रेणी से कम नहीं। बच्चों के लिए उनके द्वारा किए जा रहे काम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। प्रो. हुकुमसिंह का मनीष मोहन गोरे ने बहुत उम्दा इंटरव्यू लिया है। साक्षात्कार किसी भी पत्रिका को चर्चा में लाने के लिए एक अमोघ जरिया है, लेकिन सिर्फ चर्चा ही नहीं आप इसका उपयोग विज्ञान संचार के लिए कर रहे हैं। एक और सम-सामयिक स्तंभ आपने शुरू किया है वह है, स्वाति तिवारी का दैनिक विज्ञान। इस हेतु आपको बधाई। इधर विज्ञान पर केन्द्रित एक कविता वायरल हुई है जो कि समग्र विज्ञान के इतिहास पर केंद्रित है, मुझे लगता है आपकी पत्रिका ऐसे ही समग्रता में कार्य कर रही है। इसलिए इस कविता को पाठकों के लिए प्रेषित कर रहा हूँ। विज्ञान के इतने सारे संस्तर हैं कि उन्हें एक पत्र में समेटना संभव नहीं है और ना ही पत्रिका के एक अंक में। आप पिछले तीस वर्षों से इस पत्रिका का संपादन-प्रकाशन कर रहे हैं, यह एक महत्वपूर्ण, उल्लेखनीय और प्रशंसनीय कार्य है। आपका साधुवाद।

मनीष पारासर, भोपाल

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए का जनवरी अंक प्राप्त हुआ। आभार। यह अंक मुझे कई मायनों में विशिष्ट लगा और मैं इसे उल्लेखनीय मानता हूँ कि आपने सारी सामग्री का संयोजन कुशलता से किया है। संपादक मंडल को मेरी बधाई।

गणित के विद्वान प्रो.हुकुमसिंह से डॉ.मनीष मोहन गोरे की वार्ता ने हमें कई मायनों में संपन्न किया। गणित का अध्ययन हमें सत्य और शुद्धता की प्रेरणा देता है, मेरी इस उक्ति से पूर्ण सहमति है। गणित और विज्ञान जैसे गूढ़ विषयों से उनकी आत्मा की भाषा तक आपकी दृष्टि पहुँचती है और हम इलेक्ट्रॉनिकी पत्रिका के कायल हो जाते हैं। बरमूडा त्रिभुज लेख, विज्ञान कथा हिमीभूत इस अंक की उपलब्धि है। प्रमोद दीक्षित जी का आलेख विज्ञान की कक्षा में एक दिन, कैसिनी मिशन का अंत, जहरीली हवा में अटकती सांसें दिलचस्प आलेख लगे।

आपकी पत्रिका अंतरिक्ष ब्रह्मांड और पर्यावरण जैसे मुद्दों पर अक्सर फोकस करती है। यह देश की अकेली ऐसी हिन्दी की विज्ञान पत्रिका है जो जटिल से जटिल विषयों को सरलीकृत ढंग से पेश करती है और वैज्ञानिक सोच और नजरिए के निर्माण का काम करती है। यह कार्य करना आज के समय में चुनौती भरा है और आप लोग यह कार्य कर रहे हैं। इस हेतु मेरा विनम्र साधुवाद।

विनीत शर्मा, भोपाल

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के पिछले अंक में दिनेश मणि का लेख 'पर्यावरण हितैषी हरित रसायन विज्ञान' बहुत उम्दा लेख है। यह भारत के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए जैविक खेती की ओर संकेत करता है। रसायन से होने वाले लाभ और नुकसान की ओर इशारा करते हुए रासायनिक संरचना क्रिया और कार्यप्रणाली पर दिनेश मणि ने एक अच्छा लेख लिखा है। कालीशंकर का लेख टेक्नीकल होते हुए भी बहुत उपयोगी है। डॉ. रुचि बागड़देव संभवतः इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए में पहली बार प्रकाशित हुई है। इसके पहले मैंने इनका कोई लेख नहीं पढ़ा था लेकिन पहली बार पढ़कर ही मैं उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभावित हुआ हूँ

राम लालवानी, शहडोल

प्राचीन भारत की विज्ञान परंपरा

संपादकीय

धर्म, दर्शन और साहित्य की समृद्ध परंपरा के साथ भारत में विज्ञान और वैज्ञानिक चिंतन की भी अपनी परंपरा है और वर्तमान समय में शायद उसके पुनः अन्वेषण की सबसे ज्यादा ज़रूरत है। आइये भारत की विविध परंपराओं में से उदाहरण के तौर पर हम इस वैज्ञानिक परंपरा पर दृष्टिपात करते हैं।

विज्ञान का सामान्य अर्थ समझा जाता है 'पश्चिमी विज्ञान' जिसने अनेक अद्भुत आविष्कारों और टेक्नॉलॉजिकल यंत्रों को जन्म दिया है। किन्तु आधारभूत वैज्ञानिक सिद्धांत और तकनीक प्राचीन काल में भी मौजूद थे और विज्ञान के विकास में पूर्व का महत्वपूर्ण योगदान है। सभ्यता की अनेक निधियाँ पूर्व से मिली हैं।

भारत में प्रारंभिक विज्ञान की दो प्रमुख धाराएँ थीं- प्रथम, गणित और खगोल शास्त्र तथा द्वितीय, औषध विज्ञान। आपस्तम्बकृत 'सल्वसूत्र' में पाइथागोरस के प्रमेयों तथा अन्य कई विशिष्ट प्रश्नों का सामान्य विवरण है। 'सल्वसूत्र' का प्रणयन पाइथागोरस के बाद के समय में हुआ था, किन्तु उसके विशिष्ट सूत्र निश्चय ही यूनानी नहीं, भारतीय हैं। वे प्राचीन प्रयोगसिद्ध अंकीय आविष्कार हैं जिनके आधार पर बाद में ज्यामितीय प्रमेय बने या प्रमेय के आधार पर विकसित विशिष्ट हिन्दू प्रयोग हैं, यह इतना स्पष्ट नहीं है। संक्षेप में इतना कहना ही काफी है कि हमारे यहाँ गणित में हिन्दुओं की महत्वपूर्ण मौलिक उपलब्धियाँ हैं। स्थानिक अंकों का महत्वपूर्ण आविष्कार तथा 'शून्य' के लिए संकेत भारतीय योगदान है। खगोलशास्त्र में हमारे यहाँ पांच सिद्धांत, पैतामह, वसिष्ठ, सूर्य, पौलिष और रोमक हैं, और यह परम्परा अटूट रही है- आर्यभट्ट (पांचवीं शताब्दी ईसवी), वराहमिहिर (छठी शताब्दी), ब्रह्म गुप्त (छठी और सातवीं शताब्दी), महावीर (नवीं शताब्दी), श्रीधर (दसवीं शताब्दी), भास्कर (बारहवीं शताब्दी)।

औषधविज्ञान का उदय बहुत पहले हुआ। बुद्ध के युग में, आत्रेय तक्षशिला में अध्यापक थे और उनसे अपेक्षाकृत कम उम्र समकालीन सुश्रुत काशी (अथवा बनारस) में शिक्षक थे। बाद में विज्ञानियों ने शल्यचिकित्सा पर जोर दिया- अण्डकोष में आंत उतरने, पेडू चीरकर बच्चा पैदा करने, मूत्राशय की पथरी, मोतियाबिन्द की शल्यचिकित्साएँ प्रचलित हुईं। शल्यक्रिया के 121 भिन्न औजारों का वर्णन मिलता है। मलेरिया और मच्छरों का सम्बन्ध मालूम किया जा चुका था और मधुमेह के रोगियों के मूत्र में शर्करा की उपस्थिति मालूम थी। कश्मीर में जन्मे और कनिष्क के समय में जीवित (120-162 ईसवी) चरक ने आत्रेय के एक शिष्य अग्निवेश के आधार पर एक ग्रंथ की रचना की। वाग्भट्ट (पिता और पुत्र) तथा माधवकर व वृन्द इस क्षेत्र के अन्य व्यक्ति थे।

दिल्ली का लौह-स्तंभ लगभग 400 ईसवी में खड़ा किया गया था। इसकी ऊंचाई 28 फुट से अधिक है तथा आधार का व्यास 16.4 इंच है जो कम होते-होते 12.04 इंच हो जाता है। यह विशुद्ध, जंग न खाने वाले लोहे का बना है। इसे वे कैसे बना सके? सुल्तानगंज

की बुद्ध की मूर्ति विशुद्ध तांबे की दो परतों से बनी है जो साढ़े सात फुट ऊंचे और एक टन भारी एक अन्तर्भाग पर मढ़ी गई है। ये इंजीनियरिंग के कौशल के आश्चर्यजनक नमूने हैं।

संस्कृत व्याकरण का विकास ग्रीक व्याकरण से पहले हुआ था। यास्क ने वेदों की व्युत्पत्तिविषयक टीका 'निरुक्त' लिखी। यह पाणिनि-काल से पहले, 500-700 ईसा पूर्व के आसपास की है। भाषा विज्ञान और व्याकरण में पाणिनि का नाम सर्वोपरि है। वे छठी सदी ईसा पूर्व के उत्तरार्द्ध में हुए थे। पाणिनि ने यास्क और शौनक को अपना अग्रज माना है। उनकी 'अष्टाध्यायी' एक दीर्घकालीन भाषा विज्ञानी विकास का शीर्षबिन्दु है। पाणिनि ने नियमों को स्वीकार और अपवादों को व्यक्त किया है। उनकी अष्टाध्यायी में लगभग 4000 सूत्र हैं। केवल एक लेखक अकस्मात् इनका आविष्कार करके दूसरों पर लाद नहीं सकता था। यह शताब्दियों का विकास है और पाणिनि परम्परागत व्याकरण को अन्तिम रूप प्रदान करने वाले वैयाकरण थे। उनकी कृति में अनेक अग्रजों के नाम हैं। अपनी शुद्धता और विस्तार के कारण ही वे अपने अग्रजों से आगे बढ़ गए।

पतंजलि के अनुसार, पाणिनि की कृति भली प्रकार सम्पादित एक महान ग्रन्थ है। कात्यायन ने अपनी टिप्पणियों 'वार्त्तिक' का प्रणयन पाणिनि के सूत्रों के तुरन्त बाद किया था और उनकी व्याख्या पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' (दूसरी शताब्दी ईसापूर्व) में की थी। भाषाविज्ञान का सम्पूर्ण विकास 600-1000 ईसा पूर्व में हुआ था। भाषाविज्ञान जैसे कठिन विषय का इतने प्राचीन काल में इतना अधिक विकास सदा विस्मयजनक रहेगा। इससे यही मालूम होता है कि अत्यधिक प्राचीन भारत के बारे में हमारा ऐतिहासिक ज्ञान असम्पूर्ण है- इस महान काल की आंशिक झांकी हमें केवल पुरातत्व से मिल सकती है।

भाषाविज्ञान के उत्तरकालीन विकास में 'कातंत्र' के रचयिता सर्ववर्मन (300 ईसवी), चन्द्रगोमिन (600 ईसवी), 'वाक्यपदीय' के रचयिता भर्तृहरि (सातवीं शताब्दी ईसवी) के नाम शीर्षस्थ हैं। 'वाक्यपदीय' में भाषाविज्ञान या व्याकरण से अधिक जोर भाषा के दर्शन पर दिया गया है। जयादित्य और वामन ने पाणिनि पर एक पाठ्यपुस्तक 'काशिकावृत्ति' की रचना की। 1625 के लगभग भट्टोजि दीक्षित ने 'सिद्धांतकौमुदी' का प्रकाशन किया; यह पाणिनि के ग्रन्थ का सार-संक्षेप है।

संस्कृत के वैयाकरणों ने सर्वप्रथम शब्द-रूपों का विश्लेषण किया, धातु और प्रत्यय का अन्तर समझा, प्रत्यय के कार्य निश्चित किए, और कुल मिलाकर इतने अधिक शुद्ध और सम्पूर्ण व्याकरण का निर्माण किया कि उसका सानी किसी दूसरे देश में पाना असंभव है। प्रोफेसर वेबर का कथन है कि ''पाणिनि के व्याकरण में भाषा की जड़ों तथा उसके शब्दों की रचना की खोज पूरी गहराई के साथ की गई है, इसलिए वह अन्य सभी देशों के व्याकरणों में श्रेष्ठ है।''

यह कोई संयोग नहीं कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जब भारतीय दर्शन और सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः स्थापना हो रही थी उसी समय सर सी.वी.रामन ने भौतिकी की अपनी महत्वपूर्ण खोज की और भारत के पहले नोबल पुरस्कार प्राप्त करने वाले वैज्ञानिक बने। वर्तमान में भारत विज्ञान और तकनीक के कई क्षेत्रों में विश्व के शीर्षस्थ देशों में गिना जाता है और मूलभूत विज्ञान में प्रगति के लिये एक व्यग्रता देश में देखी जाती है। सामाजिक विज्ञान तथा प्राकृतिक विज्ञान के बीच भी संवाद की गहरी कोशिश जारी है। यदि हमें विश्व में एक स्वतंत्र और शक्तिशाली देश के रूप में स्थान बनाना है, जहाँ हमारे धर्म, संस्कृति और ज्ञान की रक्षा हो सके और वह सतत प्रवहमान रह सके, तो हमें विज्ञान और तकनीक के विकास की भी उतनी ही चिंता करना पड़ेगी जितनी कला और संस्कृति की। न सिर्फ ये, बल्कि विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टि की इस ताकत को आम लोगों तक भी पहुँचाना होगा और यह काम उनकी ही भाषा में होगा।

संतोष चौबे
(संपादक)

विज्ञान धरोहर

आज की प्रगति पूर्व आविष्कार का परिणाम है

डॉ.अब्दुल कलाम

विज्ञान क्या है ? सिलसिलेवार प्रश्न पूछना और कठोर कार्य से इन प्रश्नों के उत्तर खोजना ही विज्ञान है। ये उत्तर ही प्रकृति के नियमों अथवा प्रौद्योगिकीय प्रगति को जन्म देते हैं। अतः मैं एक सुझाव दे सकता हूँ, प्रश्न पूछने से कभी भी न डरो। तब तक पूछते रहो जब तक आपको संतोषजनक उत्तर न मिल जाए। केवल प्रश्न पूछने वाले दिमाग ने ही विश्व को रहने योग्य बनाया है।

हमें यह जानना चाहिए कि मानव मस्तिष्क एक अनोखा उपहार है। आप इसमें तभी प्रवेश कर सकते हैं जब आप में जिज्ञासा हो और चिंतन हो। मैं आप सभी को सुझाव देता हूँ कि चिंतन को आपकी पूंजीगत धरोहर बन जाना चाहिए। गैर चिंतन व्यक्ति, संस्थान और देश के लिए विनाश है। चिंतन क्रिया को जन्म देता है। बिना किसी कार्यवाही के ज्ञान व्यर्थ और गैर प्रासंगिक है। कार्यवाही युक्त ज्ञान समृद्धि लेकर आता है। मैं चाहूँगा कि एक विद्यार्थी के रूप में आपके पास ऐसा मस्तिष्क हो जो मानव जीवन के प्रत्येक पहलू की खोजबीन करे। हम अकेले नहीं हैं। समस्त ब्रह्मांड हमारे लिए मित्रवत है और जो लोग स्वप्न देखते हैं और कार्यवाही करते हैं उन्हें यह सर्वोत्तम देने की चेष्टा करता है। जिस तरह चंद्रशेखर सुब्रमण्यनृ ने ब्लैक होल की खोज की। आज हम चंद्रशेखर की सीमाओं का उपयोग करके यह गणना कर सकते हैं कि सूरज कब तक चमकेगा। जिस तरह सर सी.वी.रामन ने सागर की ओर देखा और प्रश्न किया कि सागर का रंग नीला क्यों है? उन्होंने पाया कि सागर का नीला रंग प्रकाश के आण्विक प्रकीर्णन के कारण है, पानी में प्रकाश के परावर्तन के कारण नहीं है जैसा कि अधिकांश लोग कल्पना करते हैं। इससे रामन प्रभाव का जन्म हुआ। जैसा कि अल्बर्ट आइंस्टाइन ने ब्रह्माण्ड की जटिलता से अभिभूत होकर प्रश्न किया कि ब्रह्माण्ड का जन्म कैसे हुआ। इसने प्रसिद्ध समीकरण $E=mc^2$ को जन्म दिया। जब $E=mc^2$ महान आत्माओं के हाथ में हो तब नाभिकीय पदार्थों से बिजली प्राप्त होती है। लेकिन जब यही समीकरण चरमपंथी राजनैतिक विचारकों के हाथ लगा तब हिरोशिमा का विध्वंस हुआ। लाखों करोड़ों व्यक्ति इस ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं। लेकिन पिछली सहस्राब्दि में एक महान आत्मा ने भारत की धरती पर अपने कदम रखे और अहिंसा धर्म के इस्तेमाल का मार्ग प्रशस्त किया। फलस्वरूप भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सन् 1947 में भारत की स्वतंत्रता एक अकेले विचार का परिणाम थी, भारत को स्वतंत्रता चाहिए। मैं जहां कहीं जाता हूँ स्कूल के विद्यार्थियों से मिलता हूँ। आज तक मैं 5 लाख से भी अधिक विद्यार्थियों से मिल चुका हूँ। हाल ही में मैं हिमाचल प्रदेश में शिमला और उसके आसपास के क्षेत्रों के भ्रमण पर गया था जहाँ मैंने काफी स्कूली और विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ पारस्परिक विचार विमर्श किया। सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, चाचियन के दसवीं कक्षा के श्री शम्मी धीमन द्वारा पूछा गया एक प्रश्न था-विज्ञान और प्रौद्योगिक किस तरह गरीबी को मिटाकर भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बना सकती है? 1950 के दशक में खाद्य पदार्थों की अत्यधिक कमी थी। हमें भारत को भुखमरी से बचाने के लिए अटलांटिक महासागर को पार कर आने वाले गेंहू से भरे हुए जलयानों पर निर्भर रहना पड़ता है। राजनैतिक नेता श्री सी.सुब्रमण्यम और एक कृषि वैज्ञानिक प्रो. एम.एस.स्वामीनाथन ने 1950 के दशक में

मैं यह भी मानता हूं कि सीखना एक सतत् प्रक्रिया है और ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया जारी रहती है। मैं आपके साथ वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीविदों की सृजनात्मकता बांटना चाहता हूँ। मानव की उड़ान और कुछ नहीं है बल्कि मानव मस्तिष्क की सृजनात्मकता है और इसमें उत्कृष्टता अर्जित करने के लिये अंतरिक्ष अन्वेषण की दिशा में अनेक संघर्ष करने पड़े हैं।

एक प्रश्न पूछा। भारत विकसित देशों से आयात किए जाने वाले गेहूं पर कब तक निर्भर रह सकता है? अब हमें खाद्य पदार्थों में आत्मनिर्भर हो जाना चाहिए। इस विचार ने प्रौद्योगिकी कृषि विज्ञान और किसानों की भागीदारी के परिणाम स्वरुप हरित क्रांति का मार्ग प्रशस्त किया जब प्रो. वर्गीज कुरियन भारत के ग्वाले के मन में ऐसे ही विचार आए तब भारत में आवश्यकता से अधिक दूध का उत्पादन होने लगा। हम अपनी आवश्यकता से अधिक दूध और दुग्ध उत्पाद पैदा करते हैं। विज्ञान क्या है? सिलसिलेवार प्रश्न पूछना और कठोर कार्य से इन प्रश्नों के उत्तर खोजना ही विज्ञान है। ये उत्तर ही प्रकृति के नियमों अथवा प्रौद्योगिकीय प्रगति को जन्म देते हैं। अतः बच्चों आपमें से जो भी विज्ञान कांग्रेस में भाग ले रहे हैं उन्हें मैं एक सुझाव दे सकता हूं। प्रश्न पूछने से कभी भी न डरो। तब तक पूछते रहो जब तक आपको संतोषजनक उत्तर न मिल जाए। केवल प्रश्न पूछने वाले दिमाग ने ही विश्व को रहने योग्य बनाया है।कोई भी व्यक्ति केवल चिंतन करने और प्रश्न पूछने तक ही सीमित नहीं रह सकता है। समस्याओं को सुलझाने के लिए कार्यवाही आवश्यक है। जिसके लिए कठिन परिश्रम और अध्यवसाय की आवश्यकता होती है। अब मैं अपने एक अनुभव से कठिन परिश्रम और अध्यवसाय के परिणाम को समझाने का प्रयास करूंगा जिसका हमारे ग्रामीण विकास से गहरा संबंध है। इसका संबंध प्रो. साराभाई के अंतरिक्ष कार्यक्रम संबंधी दृष्टि से है। भारत के प्रथम उपग्रह यान की डिजाइन प्रायोजना को स्वीकृति मिल गयी थी। राकेट के प्रत्येक चरण, ऊष्मा कवच निर्देशन प्रणाली के डिजाइन की जिम्मेदारी चुने हुए प्रायोजना मुखियाओं को दी गयी थी। मुझे एसएलवी-3 के चौथे चरण की जिम्मेदारी दी गई थी जो रोहिणी को कक्षा में स्थापित करने के लिए अंतिम गति देने वाला ऊपरी चरण का राकेट होता है। चौथे चरण का एसएलवी एपोजी मोटर का उपयोग करता है। इसे अल्पतम भार की स्थिति में अधिकतम प्रणोद देना चाहिए। इसमें एक क्रांतिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग होता है। इसलिए इसे मिश्रित संरचना से बनाया गया था, जिससे इसका भार कम हो जाता है। मुझे याद है कि यह 1969 के प्रारंभिक दिनों की बात थी। मुझे अहमदाबाद से प्रो. साराभाई का संदेश मिला कि वे फ्रांसीसी अंतरिक्ष संगठन के अध्यक्ष प्रो. हरबर्ट कुरियन के साथ त्रिवेन्द्रम आ रहे हैं। मुझे प्रो. कुरियन की टीम के समक्ष चौथे चरण के संबंध में एक प्रस्तुतिकरण के लिए कहा गया। जब हमारी टीम का प्रस्तुतिकरण समाप्त हुआ तब हमें ज्ञात हुआ कि एसएलवी-3 चौथे चरण पर फ्रांसीसी चौथे चरण के प्रक्षेपण यान डायमांट पी- 4 के लिए भी विचार किया जा रहा है और फ्रांसीसी संगठन एक ऐसे एपाजी राकेट मोटर की तलाश में है जिसका प्रक्षेपण भार और आकार हमारे द्वारा डिजाइन किए गए मोटर से लगभग दोगुना है।उसी बैठक में यह निर्णय लिया गया कि एसएलवी के चौथे चरण को पुनः इस पकार डिजाइन किया जाए कि वह फ्रांसीसी उपग्रह प्रक्षेपण यान और भारतीय प्रक्षेपण यान दोनों ही के लिए उपयुक्त हो। मैं उस समय की हमारी राकेट प्रौद्योगिकी की स्थिति की एक तस्वीर प्रस्तुत करना चाहूंगा। वह ड्राइंगबोर्ड और डिजाइन तैयार किए जाने की स्थिति में थी। एक भविष्य दृष्टा ऐसा था जो यह स्वप्न देखता था कि भारतीय वैज्ञानिक एक ऐसा ऊपरी चरण का राकेट तैयार करेंगे जो भारतीय तथा फ्रांसीसी प्रक्षेपण यान प्रणाली दोनों के ही अनुकूल हो। भारतीय वैज्ञानिक समुदाय में उन्हें कितना अधिक विश्वास था। यह निर्णय लिया गया कि इस ऊपरी चरण का डिजाइन करना और उसे विकसित किया जाना है और तुरंत ही इस प्रायोजना पर कार्य शुरू हो गया। यह घटना हम सबके लिए उल्लेखनीय और प्रेरणादायक थी। हम पूरी लगन से इस पर कार्य करने लगे। दोनों टीमों के बीच अनेक पुनर्विवेचन आयोजित किए गए। चौथा चरण ड्राइंगबोर्ड से निकलकर विकास की अवस्था तक पहुंचा। परंतु 1971 में प्रो. साराभाई की मृत्यु हो गयी और उसी समय डायमंड पी-4 कार्यक्रम भविष्य में पुनः संरूपित किए जाने के लिए कहकर बंद कर दिया गया। जब चौथे चरण का विकास कर लिया गया और उस पर अनेक परीक्षण चल रहे थे तब क्षितिज पर एक नई आवश्यकता उभर कर सामने आई। यह आवश्यकता थी भारत एक छोटे संचार उपग्रह का निर्माण कर रहा था जिसे एक पिगी बैंक उपग्रह के रूप में एरियान कार्यक्रमों (यूरोपीय अंतरिक्ष प्रक्षेपण कार्यक्रम) के साथ समेकित किया जाना था। हमारे भारतीय एपल कार्यक्रम जो भारत का प्रथम संचार उपग्रह है एसएलवी-3, चौथा चरण पूरा फिट बैठा और 1980 के दशक में फ्रेंच गुयाना कोराऊ से यूरोपीय अंतरिक्ष प्रक्षेपण से हमारा उपग्रह अंतरिक्ष में उड़ चला। सन 1969 में प्रो. साराभाई ने जिस दृष्टि के बीज बोए थे उन्होंने उस समय वास्तविकता का रूप लिया जब एपल उपग्रह ने भारतीय अर्थ स्टेशन को संचार प्रसारित करना प्रारंभ कर दिया। इससे प्रौद्योगिकीय टीम द्वारा प्रतिबद्ध कठोर परिश्रम के साथ एक भविष्यद्रष्टा के अंतर्मन की कुछ थाह मिलती है। यहाँ तक कि हम अपने राकेट तैयार कर सकते हैं जिन्हें विदेशी धरती से उड़ाया जा सकता है। इस उपलब्धि ने देश में राकेट प्रौद्योगिकीविदों को जन्म दिया और यह वास्तव में समस्त टीम के कठोर

परिश्रम और अध्यवसाय का परिणाम है। आज देश में किसी भी प्रकार उपग्रह तैयार करने और उन्हें कक्षा में प्रक्षेपित करने की क्षमता है। प्रो. विक्रम साराभाई की दृष्टि को हमारे अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने पीएसएलवी और जीएसएलवी के प्रक्षेपण द्वारा पूरी तरह साकार कर दिया है। 20 सितम्बर 2004 को भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने पूरी तरह शिक्षा के उद्देश्य से एडूसेट का प्रक्षेपण किया है। यह उपग्रह देश के विभिन्न भागों में फैले हुए यूनीवर्सल टेलीएजूकेशन के माध्यम से 1 लाख 50 हजार से भी अधिक कक्षाओं को संपर्क प्रदान करेगा। यह ग्रामीण गरीबों को अच्छी शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रौद्योगिकी की शक्ति का एक और उदाहरण है। किसी भी व्यक्ति के जीवन का सबसे अच्छा भाग होता है बचपन में स्कूलों में उसे पढ़ने-सीखने की अवधि। सीखने का प्रमुख वातावरण 5 वीं से 16 वीं वर्ष की आयु होती है। निश्चय ही घर में प्यार और स्नेह भी महत्वपूर्ण होता है। अच्छे पड़ोसी और मित्र भी होते हैं। लेकिन फिर दिन का अधिकांश समय स्कूल का गृहकार्य करने, अध्ययन, खाने खेलने और सोने में बीत जाता है। अतः बच्चों के लिए स्कूल में बिताया गया समय सीखने का सबसे अच्छा समय होता है और उसके लिये सबसे अच्छे वातावरण और मूल्य प्रणाली के साथ मिशनोन्मुख शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में उन्हें अच्छा नागरिक बनने के लिये स्कूलों में और घरों में मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता होती है। इससे मुझे एक महान अध्यापक बेस्टोलोजी की कही हुई बात याद आ जाती है 'मुझे सात वर्ष के लिए एक बच्चा दे दीजिए, उसके बाद चाहे ईश्वर बच्चे को ले ले अथवा शैतान, वे बच्चे को बदल नहीं सकते हैं माता-पिता तथा अध्यापकों के लिए स्कूल परिसर में 25,000 घंटे की मूल्य आधारित शिक्षा से वंचित रह जाता है तो कोई भी सरकार अथवा समाज एक पारदर्शी समाज अथवा न्यायनिष्ठ समाज की स्थापना नहीं कर सकता। सत्रह वर्ष की आयु तक पिता, माता और अध्यापक बच्चे को एक प्रबुद्ध नागरिक बनने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। मैं यह भी मानता हूं कि सीखना एक सतत् प्रक्रिया है और ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया जारी रहती है। मैं आपके साथ वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीविदों की सृजनात्मकता बांटना चाहता हूँ। मानव की उड़ान और कुछ नहीं है बल्कि मानव मस्तिष्क की सृजनात्मकता है और इसमें उत्कृष्टता अर्जित करने के लिये अंतरिक्ष अन्वेषण की दिशा में अनेक संघर्ष करने पड़े हैं। सन 1890 में एक महान और सुविख्यात वैज्ञानिक लार्ड केल्विन जो लंदन की रायल सोसायटी के अध्यक्ष भी थे, ने कहा 'कोई भी वस्तु जो हवा से भारी हो न तो उड़ सकती है और न ही उड़ाई जा सकती है। दो दशकों के भीतर राइट बंधुओं ने यह साबित कर दिया कि मनुष्य उड़ सकता है, हां निश्चय ही काफी खतरे और कीमत पर। सन् 1961 में सफलतापूर्वक चंद्र अभियान पूरा होने पर वेरनर वॉन ब्राउन, एक प्रसिद्ध राकेट डिजाइनकर्ता जिन्होंने अंतरिक्ष यात्रियों के साथ कैप्सूल को प्रक्षेपित करने वाले और सन 1975 में चंद्रमा पर मनुष्य की चहलकदमी को वास्तविकता में बदलने वाले सैटर्न का निर्माण किया था, ने कहा था, 'यदि मुझे अधिकार दिया जाए तो मैं शब्दकोष से असंभव शब्द को निकाल दूंगा।' प्राचीन काल में टोलेमैक खगोलविद्या विभिन्न तारों और ग्रहों की गतिकी की गणना करने में व्यापक स्तर पर प्रयुक्त होने वाली प्रणाली है। उस समय माना जाता था कि पृथ्वी समतल है। पृथ्वी का आकार गोल है और यह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। यह सिद्ध करने में कितना वैज्ञानिक संघर्ष करना पड़ा। दो महान खगोल शास्त्री, कोपरनिकस और गैलीलियो ने खगोल विज्ञान के संसार को नया आयाम दिया। आज हम सहजता से यह मान लेते हैं कि पृथ्वी एक ग्लोब है जो सूर्य के चारों ओर एक कक्षा में चक्कर लगाती है और सूर्य आकाशगंगा में चक्कर लगाता है। आज जो भी प्रौद्योगिकीय प्रगति दिखाई देती है वह पिछली कुछ शताब्दियों में हुई वैज्ञानिक खोजों का परिणाम है। कभी भी मनुष्य समस्याओं से नहीं हारा है। वह असफलताओं को अपने वश में करने में लगातार प्रयासरत है। अब 'जल' जैसे विषय पर आते हैं। मैं सभी बच्चों तथा स्कूलों के प्रबंधन से जुड़े लोगों को एक सलाह देता हूं। मुझे उत्तरांचल के स्कूली बच्चों के आश्चर्यजनक और अद्‌भुत प्रयोग को जानने का अवसर मिला है। याद रखें वे सभी एक साधारण से स्कूल से हैं और उनमें से अधिकांश हिन्दी में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रयोग में पड़ोस के समुदाय में मूलभूत सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय और पारिस्थितिक, पहलुओं की खोज और चित्रण के लिए मानचित्रण तकनीकों का उपयोग शामिल है। वैश्विक अवस्थितिक प्रणाली, भौगोलिक सूचना प्रणाली, अंतरिक्ष प्रतिबिंबन से लैस होकर और साथ में हाथ में लिए जा सकने वाले कंप्यूटरों के साथ बच्चे अपने चारों ओर के वातावरण के संबंध में अपनी जानकारी को बढ़ाने के लिए आसपड़ोस की विस्तृत जानकारी युक्त मानचित्र तैयार कर रहे हैं। ये मानचित्र आगे चलकर तेजी से समाप्त होते जा रहे पानी के प्राकृतिक स्रोतों को पुनर्जीवित करने, सड़कों की स्थिति सुधारने, जल तथा बिजली के वितरण केन्द्रों के लिए बेहतर स्थलों की तलाश करने, यातायात में भीड़ का जमाव कम करने और कचरा इकट्ठा करने की बेहतर प्रणाली के निर्माण में प्रौद्योगिकीविदों की सहायता करेंगे।

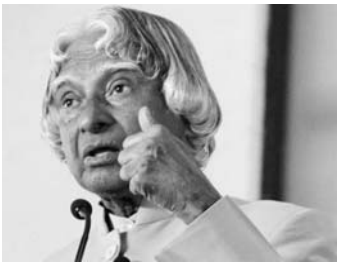

पृथ्वी का आकार गोल है और यह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। यह सिद्ध करने में कितना वैज्ञानिक संघर्ष करना पड़ा। दो महान खगोल शास्त्री, कोपरनिकस और गैलीलियो ने खगोल विज्ञान के संसार को नया आयाम दिया।

दूरियाँ हुई दूर
वर्ल्ड वाईड वेब का कमाल

प्रो.यश पाल
अनुवाद : संतोष शुक्ला

वर्ल्ड वाईड वेब की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यह अलग-अलग भाषाओं व बोलियों वाले व्यक्तियों को आपसी सम्पर्क की सुविधा प्रदान करता है। वे जानकारियों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। वेब में सभी व्यक्तियों को समान दर्जा प्राप्त है कोई भी श्रेष्ठ या सर्वोत्तम नहीं है। यहाँ सभी को विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता प्राप्त है किसी भी प्रकार का सांस्कृतिक भेदभाव नहीं है वेब स्वयं ही एक सार्वभौम संस्कृति है।

हालांकि संभवतः हम अभी ऐसी स्थिति तक नहीं पहुँच पाये हैं जहाँ कि ऊपर लिखी समस्त बातें सत्य हों लेकिन उपरोक्त स्थिति तक बहुत जल्दी ही पहुँचने की संभावना है। आज जिस व्यक्ति का हम सम्मान कर रहे हैं उसने तकनीकी आविष्कार से कहीं बहुत बड़ा काम किया है। उसके आविष्कार ने एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति को जन्म दिया है। लोग अक्सर उसके इस योगदान को भूल जाते हैं। जिन लोगों ने WEAVING THE WEB किताब नहीं पढ़ी है उन्हें अतिशीघ्र इस पुस्तक को पढ़ डालना चाहिये। मेरी राय में समाज शास्त्र राजनीति शास्त्र तथा मानविकी विषय के छात्रों के लिये इस पुस्तक को पढ़ना अनिवार्य होना चाहिये।

इस व्यक्ति की उपलब्धियों को भली प्रकार न तो वैज्ञानिक ही समझ पाये हैं न ही बिजनेसमेन। आज मैं ''टिम'' की उपलब्धियों व योगदान के पीछे कार्यरत शक्ति के संबंध में कुछ कहूँगा। मैंने अपनी जिन्दगी तथा विज्ञान एवं तकनीक के अनुभवों से यह सीखा है कि ज्ञान को सामाजिक विकास के लिये उपयोगी होना आवश्यक है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जिन्दगी में हम बहुत दूर तक नहीं चल पायेंगे यदि हम भेदभाव रहित समानान्तर सामाजिक नेटवर्क की विश्वव्यापी स्थापना नहीं कर पायेंगे।

लगभग 25 वर्ष पूर्व जब मैं पार्टिकल फिजिक्स तथा हाई एनर्जी एस्ट्रोनॉमी के क्षेत्र में CERN में कार्य कर रहा था उसी समय टिम भी वहाँ पर वेब के महत्वपूर्ण अंगों के बारे में सोचने तथा उन्हें अमली जामा पहनाने में व्यस्त थे। भारत जैसे देश में जहाँ कि आधारभूत सुविधाओं का अभाव है वहाँ दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों से सम्पर्क स्थापित करने व जानकारियाँ पहुँचाने में अंतरिक्ष विज्ञान की खोजों व प्रसारण व्यवस्था से मैं पहले से ही अभिभूत रहा हूँ। मुझे लगता है कि वेब तकनीक हमारे जैसे देशों को ध्यान में रखते हुए ही विकसित की गई और इसी बात ने अहमदाबाद में स्थापित हो रहे स्पेस एप्लीकेशन सेंटर जो कि उपग्रह संचार को उपयोग करते हुए पहला बड़ा सामाजिक तकनीकी प्रयोग था से जुड़ने के लिये मुझे प्रेरित किया। इसका उद्देश्य भारत के दूर-दराज के हजारों गाँवों में सीधे टी.वी. प्रसारण के द्वारा पहुँचना था। यह कुछ उस समय की बात है जबकि हमारे देश में दूरदर्शन का प्रसारण मात्र कुछ ही घंटों के लिये मुम्बई व दिल्ली तक सीमित था।

इस प्रयोग के पीछे तकनीकविदों सामाजिक विज्ञानियों संचार विशेषज्ञों की हजारों मानव वर्ष की मेहनत तथा नासा का उपग्रह ATS-6 शामिल थे। हालाँकि इस प्रयोग से भारत में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया लेकिन यह इससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े अनेक लोगों की जीवन शैली में परिवर्तन लाने में सफल रहा है। इस प्रयोग के दौरान भारत भर में फैले हजारों गांवों से सम्पर्क के जरिये हमने बहुत सारी बातें जानीं। दूरी की बाधा से निजात पाना जहाँ इसकी एक प्रमुख उपलब्धि थी वहीं विविधताओं से परिपूर्ण इस देश में समस्याओं से निजात पाना तथा समस्त व्यक्तियों तक अपनी आवाज़ पहुँचाना या उनकी आवाज़ बन पाना एक चुनौती थी। अंतरिक्ष संचार आधुनिक युग की

एक महत्वपूर्ण देन है तथा इसका उपयोग व्याख्यान देने सिद्धांतों का प्रदर्शन करने व विज्ञापनों के क्षेत्र में प्रभावी रूप से किया जा सकता है। इसका उपयोग कर बहुत सारी जानकारी जन सामान्य तक पहुँचाई जा सकती है लेकिन सही प्रकार की शैक्षणिक व विकासात्मक गतिविधियों को इसके द्वारा संचालित करने के लिये एक बेहतर संवाद व्यवस्था व भागीदारी की जरूरत होती है। दूसरी तरफ यह भी सच है कि लोगों को संचार माध्यमों द्वारा आपस में न जोड़ने पर उनके पिछड़ने व विश्व की मुख्य धारा से अलग-थलग पड़ जाने की संभावना है। जरूरत इन्हीं जटिल समस्याओं के हल ढूंढने की है।

आज जिन शैक्षणिक केन्द्रों को महान कहा जाता है वे सिर्फ इसलिये महान बने हैं क्योंकि मनुष्यों ने उनके बारे में चर्चा की है। कोलंबिया MIT हार्वड आदि इसके उदाहरण हैं और लोग इनमें आना चाहते हैं। हालांकि आज इन संस्थानों के विशेषज्ञों द्वारा लिखित पुस्तकें व पेपर, छपे रूप में इंटरनेट पर और पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं।

मैं एक बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि एक छोटे समूह में मनुष्यों के मेल-जोल से उनके व्यक्तित्व के अनेक बेहतर पक्ष उभर कर आते हैं। क्रिस्टल व रत्नों का विकास भी स्थानीय कम क्षमतावान बलों की गतिविधियों द्वारा ही होता है। यही बात प्राकृतिक रूप से उपलब्ध तत्वों व अणुओं के संदर्भ में भी लागू होती है। सब बातों को छोड़िये और जीवन के लघुतम अणु DNA की स्थिति के बारे में थोड़ा सोचिये। भाषा मनोरंजन संगीत प्लास्टिक निर्मित सुंदर कला भवन शैली यहाँ तक कि विज्ञान भी आज वहाँ नहीं पहुँच सकता था यदि लोगों ने आपस में बैठकर उसके बारे में बातचीत न की होती। ऐसा नहीं है कि यह बात सिर्फ प्राचीन काल के लिये ही लागू होती है। आज जिन शैक्षणिक केन्द्रों को महान कहा जाता है वे सिर्फ इसलिये महान बने हैं क्योंकि मनुष्यों ने उनके बारे में चर्चा की है। कोलंबिया MIT हार्वड आदि इसके उदाहरण हैं और लोग इनमें आना चाहते हैं। हालांकि आज इन संस्थानों के विशेषज्ञों द्वारा लिखित पुस्तकें व पेपर छपे रूप में या इंटरनेट पर व पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं और इनकी प्रसिद्धि में अपना योगदान दे रहे हैं लेकिन मनुष्यों द्वारा आपस में की गई प्रशंसा इनकी प्रसिद्धि का आज भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है। मेरे देश में सदियों से यह माना जाता रहा है कि किताबों व व्याख्यान दे देने मात्र से ज्ञान वांछित व्यक्ति तक नहीं पहुँच सकता है। इसके लिये शिक्षक व छात्र के मध्य पारस्परिक संबंध व तालमेल होना आवश्यक है। हमारे यहाँ यह परम्परा प्राचीनकाल से ही ''गुरु-शिष्य परंपरा'' के नाम से चली आ रही है। टिम की तरह ही मैं भी इस बात को मानता हूँ कि प्रतिभाशाली मनुष्य पूरे विश्व में हर क्षेत्र में मौजूद हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि नये ज्ञान व नयी चीजों के निर्माण में बहुत बड़ी संख्या में व्यक्तियों की सहभागिता संभव नहीं है। इसीलिये आज हम ऐसे विश्व में निवास करते हैं जहाँ कुछ लोग नई दिशा में कार्य करते हैं और शेष व्यक्ति उसी दिशा में चलते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो यह मानते हैं कि उन्हें अपनी सोच के आधार पर विश्व में सृजन का अधिकार प्राप्त है। यह स्थिति पूरे विश्व में विद्यमान है। चाहे वह देशों के मध्य हो उत्तर व दक्षिण के बीच हो यहाँ तक कि यही सोच विभिन्न जाति धर्म रंग महिला पुरुषों तथा देशों के शहरों में मौजूद है।

मैंने अपनी पुस्तक में भी जिक्र किया है साथ ही मेरा यह भी मानना है कि वेब की मूल भावना ऐसी होना चाहिये जिससे कि विश्व इस सीमित सोच से मुक्त हो सके। यदि वेब ऐसा हो सका तो पूरे विश्व का भला होगा। ऐसा करके हम नयी दिशाओं में विभिन्न प्रकार के अनुसंधान व खोज को बढ़ावा देंगे साथ ही भिन्न-भिन्न वातावरण में उपलब्ध ज्ञान की गहराई को समझ पायेंगे तथा उनका लाभ उठा सकेंगे। इसके साथ ही पूरे विश्व में एक वैचारिक परिवर्तन भी आयेगा जिससे कि सद्भावना समानता से परिपूर्ण एक सार्वभौम विश्व का निर्माण होगा जैसा कि हम चाहते हैं। मैं वर्तमान में अपने इस विचार को विस्तार दे रहा हूँ।

अब मैं थोड़ा पीछे चलता हूँ। मेरा ऐसा मानना है और शायद आप भी इस बात से सहमत होंगे कि एक सीमित दायरे में सीमित व्यक्तियों से सम्पर्क या निकटता बनाना मनुष्य के नैसर्गिक स्वभाव का एक हिस्सा है। मैं एक बार फिर से अपनी बात दोहराना चाहूँगा कि आपसी सम्पर्क या निकटता ही मानवता के गुणों का विकास करती है। बिना आपसी सम्पर्क के हमारे बीच कोई प्यार नहीं होगा कोई कला नहीं होगी बधाईयाँ देने के मौके नहीं होंगे कोई त्यौहार नहीं होंगे समारोह नहीं होंगे तात्पर्य यह कि संभवतः कुछ नहीं होगा।

विशिष्ट सामाजिक वातावरण के अंतर्गत प्रचलित पौराणिक कथाओं कल्पित कहानियों तथा सामाजिक उत्थान के परिणाम स्वरूप व्यक्तियों के मध्य आपसी सम्पर्क व निकटता में वृद्धि हुई है। इस परम्परा को हमें बनाये रखना है। हमें अपने निकटस्थ व्यक्तियों की देखभाल करने के लिये ही बनाया गया है। हम अपने लोगों के बीच अपने आपको अधिक सुरक्षित महसूस करते हैं। यही तत्व हमें परिभाषित करता है तथा सामाजिक रूप से ''हम'' की सीमा रेखा तय करता है। इसी ''हम'' के द्वारा हम अपने राष्ट्र धर्म भाषा परम्परा जैसे शब्दों को परिभाषित कर पाते हैं। मानव समाज के लिये कुछ कर गुजरने व उनकी बेहतरी की तमन्ना ने ही महान व्यक्तियों राष्ट्रभक्तों राष्ट्र नेताओं विजेताओं

मेरा ऐसा मानना है और शायद आप भी इस बात से सहमत होंगे कि एक सीमित दायरे में सीमित व्यक्तियों से सम्पर्क या निकटता बनाना मनुष्य के नैसर्गिक स्वभाव का एक हिस्सा है। मैं एक बार फिर से अपनी बात दोहराना चाहूँगा कि आपसी सम्पर्क या निकटता ही मानवता के गुणों का विकास करती है।

अत्याचारियों तानाशाहों व आजकल के आतंकवादियों को जन्म दिया है। वर्तमान में हम अनेकों बंधनों में बंधे हुए हैं और हमें अपनी तरक्की के नये रास्तों को इस सदी में खोजना है। मैं बहुत ही छोटी समय सीमा में एक अलग प्रकार का क्रांतिकारी कार्य सम्पन्न करना चाहता हूँ वो इसलिये क्योंकि समस्याएं बढ़ गई हैं और इनके निदान के लिये गहमा-गहमी भी जारी है। जबकि कुछ समय पहले तक ऐसी स्थिति नहीं थी।

मारकोनी जन्मशती के समय मारकोनी फाउन्डेशन द्वारा मारकोनी फैलो हेतु एक सेमीनार का आयोजन किया गया था। उस समय भी मैंने मॉरकोनी के सपनों जो कि रेडियो के जन्म के 100 वर्षों बाद भी पूरे नहीं हो पाये हैं के बारे में दुख प्रकट किया था। मैंने उस समय भी जिक्र किया था कि पिछले 100 वर्षों में हमने युद्ध व गृह युद्धों में लगभग बुद्ध व ईसा मसीह के समय विश्व की जनसंख्या के बराबर मनुष्यों को परलोक पहुँचा दिया है। मेरे कई मित्रों को मेरे अनुमान के बारे में अविश्वास होता है कि इतने कम लोग हिंसा में मारे गये हैं।

अंतरिक्ष युग के आगमन के उपरांत भी जैसी मुझे व मेरे जैसे लोगों को उम्मीद व आशा थी वैसा सहिष्णु एक दूसरे के लिये आदर व प्यार से परिपूर्ण ब्रम्हांड कहीं नज़र नहीं आता है। फ्रेड हॉयल रविन्द्र नाथ टैगोर टिस्लोक्वास्की तथा अनेक अन्य व्यक्तियों ने इस बात को कहा है कि मनुष्य ने अब बाह्य अंतरिक्ष से हमारी इस खूबसूरत दुनिया को देख लिया है तथा उन्होंने हमारी एकाकी मिलनसारिता को भी देख लिया है। भविष्य में कुछ नयापन आ सकता है समाज में खुलेपन का विचार आ सकता है। एक दूसरे पर निर्भरता का स्थान स्वयंसिद्धि ले सकती है तथा मनुष्य केवल अपने घर तक केन्द्रित हो सकता है। संचार व्यवस्था के फैलाव के कारण समाज में कुछ ऐसा ही प्रभाव आने की संभावना है। लेकिन हो बिल्कुल ही उल्टा रहा है। जिस गति से संचार के साधनों का विकास हो रहा है उसी गति से वर्ग संघर्ष व धार्मिक उन्माद विश्व में बढ़ता ही जा रहा है। हम ये जानते हैं कि अस्थाई प्रकार के अद्‌भुत विचार हमें हमारी मूल जैविक उत्तेजना जिसने कि ''हमें'' दूसरों से अलग पहचान रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है से दूर नहीं ले जा पाते हैं। अनेक उत्तेजनाएं मानव द्वारा अपनी पहचान को अलग दिखाने की चाहत के कारण जन्मती हैं उनके पीछे गहरी सोच का अभाव होता है। जैसे कि किसी भी वस्तु के पैकेट पर अंकित नाम व पैकेट का रंग ही हमें बाहर से दिखाई देता है अंदर की वस्तु को बाहर से हम देख नहीं पाते हैं। इन्हीं बाहरी दिखावों और आडम्बरों ने मनुष्य को नई राह दिखाने वाले व्यक्तियों का दुश्मन बना दिया है। कोला टूथपेस्ट तथा अन्य उत्पादों के विभिन्न ब्रांडों को बेचने के लिये जिन तकनीकों का उपयोग किया जाता है वे उत्पाद विशेष के लिये कुछ राष्ट्रभक्त प्रकार के व कुछ आतंकवादी प्रकार के व्यक्ति निर्मित कर देती है। कभी-कभी सर्वाधिक सामाजिक प्राणी मनुष्य भी मानवता का दृष्टिकोण छोड़ अति घृणित कार्यों में संलग्न हो जाता है। मैं इस प्रकार के पूरे विश्व के कितने ही उदाहरण गिना सकता हूँ मेरा देश भी इससे अछूता नहीं है।

एक और निराशाजनक तथ्य है। पिछले 100 वर्षों में विश्व के बारे में हमारी समझ में काफी इजाफा हुआ है तथा हमने बहुत कुछ जाना व समझा है। यह एक चमत्कार की तरह लगता है। मानसिक प्रसन्नता व बौद्धिक आनंद ने हमारे अंदर यह अहसास भर दिया है कि हम मानव इतिहास के एक महत्वपूर्ण दौर के साक्षी हैं। वर्तमान में पूरा विश्व ग्रह तारे नक्षत्र सूर्य या कहें तो पूरे ब्रह्मांड के रहस्यों को लगभग खोजा जा चुका है। हम जीवन की अद्‌भुत घटनाओं को तथा उस भाषा को पूरी तरह समझ गये हैं जिसमें कि इन विविधताओं व गाथाओं को लिखा गया है। प्रौद्योगिकी की हर छलाँग हमारे रहन-सहन संवाद व जीवन पद्धति को परिवर्तित कर देती है। अनगिनत करिश्मे हो चुके हैं तथा वे आगे भी होते रहेंगे। हम ऐसे समाज के निर्माण में लगे हैं जो कि कौशल से परिपूर्ण हों तथा जिसमें कार्य करने की गति प्रकाश की गति के समान हो। लेकिन हमारी मनःस्थिति आज भी पहले जैसी ही है। हम आज भी बचपन में सिखाये गये ''स्वयं'' व ''दूसरे'' के सिद्धांत से नियंत्रित होते हैं। हमारा मस्तिष्क 4 बिलियन वर्षों के विभिन्न दौरों घटनाओं व अवस्थाओं से गुजर कर परिष्कृत हो वर्तमान अवस्था में आया है। हालांकि यदि हम अपने इतिहास को गौर से देखें तो हमें अपने वर्ग क्षेत्र व धर्म के आधार पर किये गये मूर्खतापूर्ण कत्यों का अहसास भी होता है। जबकि मेरा यह मानना है कि हजारों वर्ष पूर्व जब विभिन्न धर्मों का उदय हुआ था तब इस प्रकार के अज्ञानता भरे कत्यों के लिये कोई स्थान नहीं था। आज पुराने सिद्धांतवादी तत्व हमारे बचपन से दूर हो गये हैं। हमारे मानवीय मूल्यों में बेहतरी लाने व आपसी समझ बढ़ाने के लिये इस परिस्थिति को बदलने की आवश्यकता है तभी हम पुराने मंदिर व मस्जिदों के फेर में पड़कर एक दूसरे के खून के प्यासे होना बंद करेंगे।

आधुनिक समय के विचारणीय विषय

अब मैं इस अंतहीन बहस के मुद्दे से हटकर अपने मूल प्रश्न अर्थात् एक सार्वभौम विषय की संरचना की आवश्यकता पर आता हूँ। मैं इसकी आवश्यकता सिद्ध करने पर अधिक समय लगाना नहीं चाहता। वर्तमान सभ्यता का इसके बिना भविष्य ही नहीं है। समाज में आ रहे वैचारिक परिवर्तन के इस दौर में इस प्रकार की एक व्यापक संरचना अति आवश्यक है। हो सकता है कि हमारी वर्तमान स्थिति को और बेहतर बनाने के लिये कुछ नये आविष्कार भी हमें करने पड़ें। मैं यह भी मानता हूँ कि विश्व के समस्त मनुष्य बराबरी से पूर्णता को प्राप्त कर लें यह संभव नहीं है। सार्वभौमिकता का पूर्णता या बराबरी से सीधा संबंध नहीं है। न ही इसमें किसी प्रकार का धर्मार्थ सम्मिलित है। यहाँ खुद के हितों को भली प्रकार समझना व विकास की इच्छाशक्ति सर्वोपरि है। इसके संबंध में मेरा सूत्र मैं कुछ इस प्रकार से दुनिया के सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ।

यदि हम अपने इतिहास को गौर से देखें तो हमें अपने वर्ग क्षेत्र व धर्म के आधार पर किये गये मूर्खतापूर्ण कृत्यों का अहसास भी होता है। जबकि मेरा यह मानना है कि हजारों वर्ष पूर्व जब विभिन्न धर्मों का उदय हुआ था तब इस प्रकार के अज्ञानता भरे कृत्यों के लिये कोई स्थान नहीं था।

No individual, no human collectivity, no country, no professional, no corporation, indeed no one shall be only or be made into only a consumer

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को करीब से देखने के कारण मैंने इससे बहुत कुछ सीखा है। हमारे सबसे बड़े नेता थे मोहनदास करमचंद गाँधी। वे पूरे देश की नब्ज पहचानते थे। पूरा देश उनके दिखाए मार्ग पर चलता था। वे आज के दौर की तरह के राजनैतिक नेता नहीं थे। हालांकि बहुत सारे नौजवान उनकी अनेक बातों से सहमत नहीं थे लेकिन वे भी इस बात को स्वीकारते हैं कि महात्मा गाँधी देश के लिये सिर्फ स्वतंत्रता नहीं चाहते थे वरन वे जन्मभूमि से प्यार करने वाले व्यक्तियों के लिये आजादी चाहते थे। इसी के साथ-साथ वे हम पर शासन कर रहे व्यक्तियों की उन्नति के भी समर्थक थे। वे एक धार्मिक व्यक्ति थे लेकिन उन्होंने जो भी कार्य किये वे किसी धार्मिक नेता की तरह नहीं किये। जब कभी भी उन्होंने धर्म की बात की सिर्फ एक धर्म की बात नहीं की। उन्होंने हर प्रकार के विचारों को ग्रहण किया। उनका मूल उद्देश्य देश के लोगों को आजादी दिलाना व एक ऐसे समाज की स्थापना करना था जो कि सार्वभौम विश्व के निर्माण की दिशा में पथ प्रदर्शक का कार्य कर सके। मुझे ऐसा भी लगता है कि उनके इस दृष्टिकोण को उनके बाद के वे नेता नहीं समझ सके जिन्होंने कि भारत पर शासन किया। ऐसा शायद इसलिये हुआ होगा कि इतिहास के उस दौर में उनकी गहरी किन्तु साधारण सी दिखने वाली बातों के लिये स्थान नहीं था। मैं आज उनका जिक्र यहाँ इसलिये कर रहा हूँ क्योंकि मुझे लगता है कि गाँधी समय से पहले इस धरती पर आ गये थे। आज उनके विचार अवश्य सार्थक होते। टिम तथा आप में से अनेक लोगों ने उनके विचारों को सार्थक किया है। इसी से जुड़े कुछ और तथ्य मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

गाँधी जी ने ग्राम स्वराज के संबंध में विचार रखे थे। इसके अंतर्गत दूर से किसी भी प्रकार के नियंत्रण से मुक्त व्यवस्था का निर्माण करना था। यहाँ विचारों और कार्य की स्वतंत्रता की व्यवस्था की गई थी। आप अपना रास्ता स्वयं चुनकर आगे बढ़ सकते थे इस पर किसी प्रकार का दूरस्थ नियंत्रण नहीं था। उनके विचार में नैतिक रूप से व्यक्ति को सिर्फ उपभोक्ता नहीं होना चाहिये। वे अधिकाधिक व्यक्तियों के द्वारा उत्पादन के पक्षधर थे न कि बड़ी मशीनों द्वारा अधिक उत्पादन के। जहाँ तक ज्ञान का प्रश्न है वे इस बात को मानते थे कि आसपास के वातावरण के साथ साक्षात्कार व सामाजिक आवश्यकताओं को समझ कर उनकी निर्माण प्रक्रिया में सम्मिलित हो बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा को जब किताबी ज्ञान का सहारा मिल जाता है तब वह व्यक्ति विद्वानों की श्रेणी में आ जाता है। आज भी यदि ऐसी शिक्षा पद्धति को अपनाया जाता है तो उत्तम होगा। उन्हें पिछली पीढ़ी का पहला पर्यावरणवादी माना जा सकता है। उन्होंने कहा था कि इस धरती पर प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के लिये पर्याप्त संसाधन हैं लेकिन प्रत्येक व्यक्ति की लोलुपता पूर्ण करने के लिये यह नहीं है। यह भी सत्य है कि हम महात्मा गाँधी के प्रत्येक विचार को शब्दशः नहीं ले सकते हैं लेकिन उनके बताए रास्तों पर चलने के अलावा कोई चारा भी नहीं है। यह भी सत्य है कि दूर से किये जाने वाले नियंत्रण से वास्तविक आजादी छिन सी जाती है। जब तक समाज में व्यक्ति वस्तुओं व सेवाओं के बदले दूसरों से कुछ वस्तु व सेवा प्राप्त न करें तो वे एक प्रकार के आर्थिक व सांस्कृतिक प्रदूषण व शोषण के शिकार हो जाते हैं। बहुत सारा ज्ञान मौखिक रूप से व उंगलियों के जरिये पुराने समय में हम प्राप्त करते थे और आज भी कर रहे हैं। उनके समस्त विचार अहिंसा से ओतप्रोत थे। गाँधी जी के समय उपलब्ध तकनीकी आकार में बहुत विशालकाय थी उन्हें आसानी से विकेन्द्रीकत करना सम्भव नहीं था। जबकि वर्तमान समय में ऐसा नहीं है। आज सॉफ्टवेयर व हार्डवेयर दोनों के ही उत्पादन को आसानी से विकेन्द्रीकृत किया जा सकता है। सूचना

प्रो.यश पाल और आईसेक्ट चेयरमैन संतोष चौबे

आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं तथा प्रयुक्त की जा सकती हैं। आज आपको सूचना के आदान-प्रदान हेतु उस स्थान तक जाने की जरूरत नहीं है। आप जैसे चाहें वैसे रह सकते हैं और सारी दुनिया से सम्पर्क में भी रह सकते हैं। आप आवश्यकतानुसार अपनी गति तथा आपसे सम्पर्क रखने वालों की गति बदल सकते हैं। गाँधी जी का नारा ''अधिकाधिक व्यक्तियों द्वारा उत्पादन न कि मशीनों द्वारा अधिक उत्पादन'' आज फलीभूत हो सकता है। यदि विश्व को एक ''जेहाद'' चाहिये तब यहाँ लोगों को यह समझना होगा कि यही एक मात्र तरीका है जो लोगों को एक रख सकता है उनकी विभिन्नताओं को बचाकर रख सकता है तथा व्यक्तियों को पूर्णता व आनंद की ओर ले जा सकता है। इन सबके लिये एक सर्वोत्तम तकनीक की आवश्यकता होगी। लोग अब सिर्फ मेंढ़क के समान अपने कुएं में नहीं रहना चाहते हैं। वे आपस में एक व्यवस्था के तहत शेष विश्व से जुड़े रहना चाहते हैं। इसके लिये नीचे से ऊपर तक एक बड़े प्रयास की जरूरत है। मुझे नहीं मालूम है कि कौन इस चुनौती को अंगीकार करेगा। हालॉकि गाँधी जी एक शताब्दी पूर्व इस धरती पर आ गये थे लेकिन अब टिम और उनके मित्र इसे सफल बनायेंगे।

अंत में संक्षेप में कहूँ तो आज विश्व के सामने जो प्रमुख चुनौतियाँ हैं वे हैं- जैसे-जैसे विश्व तीव्र गति से वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) की तरफ बढ़ रहा है वैसे-वैसे आत्मीयता का ह्रास होता जा रहा है जो कि मानवता का एक महत्वपूर्ण अंग है। आत्मीयता व संवेदनाओं के कारण ही संगीत कला भाषा मूल्यों संस्कृति व अन्य मनोरंजक प्रवृत्तियों का निर्माण हुआ है।

यदि इनमें से किसी पर कुठाराघात होता है तब वह पूरी मानवता पर कुठाराघात होता है। जिस तरह से हमारी शारीरिक प्रणाली के रक्षक तत्व बीमारी के हमले के समय उससे स्वतः ही मुकाबला करते हैं उसी तरह यदि ऊपर वर्णित तत्वों के साथ छेड़छाड़ होती है तब स्वभाविक रूप से अनेक बार उग्र प्रतिक्रिया होती है। और कभी-कभी यही आतंकवाद को जन्म देता है। मेरा यह भी मानना है कि आधुनिक आतंकवाद का हल सैनिक कार्यवाही से कतई संभव नहीं है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के समानान्तर इसका भी फैलाव होता गया है जैसे कि मेरे एक मित्र कहते हैं कि विश्व का ''कोला-नाइजेशन'' हो गया है। इससे विश्व में सांस्कृतिक आघात के साथ-साथ आर्थिक परिणाम भी परिलक्षित हुए हैं। गाँधी जी द्वारा इन सभी के बारे में पहले से ही सोच लिया गया था। अब बिना आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्था को छेड़े हुए एक अलग प्रकार का वैश्वीकरण संभव हो गया है। वैश्वीकरण के अब नये नियम बनाये जा सकते हैं। मनुष्य अब एक साथ अलग-अलग रह सकते हैं। उन पर अपना स्वयं का नियंत्रण होगा तथापि वे पूरे विश्व व ब्रह्मांड के साथ नेटवर्क में जुड़े होंगे। इसके लिये तकनीक व साधन अब उपलब्ध हैं। यही मेरे द्वारा चाही गई एक सार्वभौम विश्व की संकल्पना है। एक बात और तय है वह यह कि इसके लिये वेब को उन क्षेत्रों में भी पहुँचाना होगा जहाँ वह अभी नहीं पहुँचा है। वैसे यदि हम कम्प्यूटर आधारित वेब के साथ-साथ विभिन्नता युक्त मानव वेब निर्मित कर पायें तो वह अधिक श्रेयस्कर होगा।

santoshshukla.bhopal@gmail.com

❑❑❑

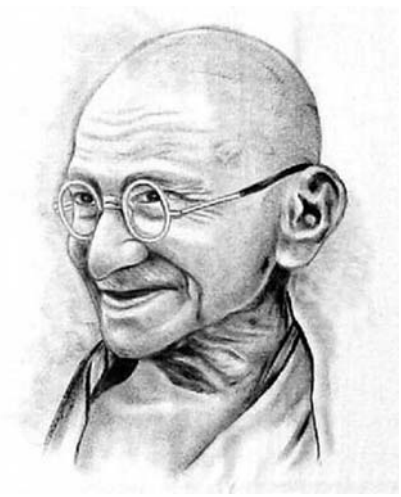

गाँधी जी ने ग्राम स्वराज के संबंध में विचार रखे थे। इसके अंतर्गत दूर से किसी भी प्रकार के नियंत्रण से मुक्त व्यवस्था का निर्माण करना था। यहाँ विचारों और कार्य की स्वतंत्रता की व्यवस्था की गई थी। आप अपना रास्ता स्वयं चुनकर आगे बढ़ सकते थे इस पर किसी प्रकार का दूरस्थ नियंत्रण नहीं था। उनके विचार में नैतिक रूप से व्यक्ति को सिर्फ उपभोक्ता नहीं होना चाहिये।

आज भी खरे हैं तालाब

अनुपम मिश्र

बुरा समय आ गया था।

भोपा होते तो ज़रूर बताते कि तालाबों के लिए बुरा समय आ गया था। जो सरस परंपराएं, मान्यताएँ तालाब बनाती थीं, वे ही सूखने लगी थीं।

दूरी एक छोटा सा शब्द है। लेकिन राज और समाज के बीच में इस शब्द के आने से समाज का कष्ट कितना बढ़ जाता है, इसका कोई हिसाब नहीं। फिर जब यह दूरी एक तालाब की नहीं, सात समुंदर की हो जाए तो बखान के लिए क्या रह जाता है?

अंग्रेज़ सात समुंदर पार से आए थे और अपने समाज के अनुभव लेकर आए थे। वहाँ वर्गों पर टिका समाज था, जिसमें स्वामी और दास के संबंध थे। वहाँ राज्य ही फैसला करता था कि समाज का हित किस में है। यहाँ जाति का समाज था और राजा ज़रूर थे पर राजा और प्रजा के संबंध अंग्रेज़ों के अपने अनुभवों से बिलकुल भिन्न थे। यहाँ समाज अपना हित स्वयं तय करता था और उसे अपनी शक्ति से, अपने संयोजन से पूरा करता था। राज उसमें सहायक होता था।

पानी का प्रबंध, उसकी चिंता हमारे समाज के कर्तव्य-बोध के विशाल सागर की एक बूंद थी। सागर और बूंद एक दूसरे से जुड़े थे। बूंदें अलग हो जाएं तो न सागर रहे, न बूंद बचे। सात समुंदर पार से आए अंग्रेज़ों को समाज के कर्तव्य बोध का, न तो विशाल सागर दिख पाया, न उसकी बूंदें। उन्होंने अपने यहाँ के अनुभव और प्रशिक्षण के आधार पर यहाँ के राज में दस्तावेज ज़रूर खोजने की कोशिश की, लेकिन वैसे रिकार्ड राज में रखे नहीं जाते थे। इसलिए उन्होंने मान लिया कि यहाँ सारी व्यवस्था उन्हीं को करनी है। यहाँ तो कुछ है ही नहीं!

देश के अनेक भागों में घूम फिर कर अंग्रेजों ने कुछ या काफी जानकारियाँ ज़रूर एकत्र कीं, लेकिन यह सारा अभ्यास कुतूहल से ज्यादा नहीं था। उसमें कर्तव्य के सागर और उसकी बूंदों को समझने की दृष्टि नहीं थी। इसलिए विपुल मात्रा में जानकारियाँ एकत्र करने के बाद भी जो नीतियाँ बनीं, उन्होंने तो इस सागर ओर बूंद को अलग-अलग ही किया।

उत्कर्ष का दौर भले ही बीत गया था, पर अंग्रेजों के बाद भी पतन का दौर प्रारंभ नहीं हुआ था। उन्नीसवीं सदी के अंत और तो और बीसवीं सदी के प्रारंभ तक अंग्रेज़ यहाँ घूमते-फिरते जो कुछ देख रह थे, लिख रहे थे, जो गजेटियर बना रहे थे, उनमें कई जगहों पर छोटे ही नहीं, बड़े-बड़े तालाबों पर चल रहे काम का उल्लेख मिलता है।

मध्यप्रदेश के दुर्ग और राजनांदगांव जैसे क्षेत्रों में सन 1907 तक भी ''बहुत से बड़े तालाब बन रहे थे।'' इनमें तांदुला नामक तालाब ''ग्यारह वर्ष तक लगातार चले काम के बाद बन कर बस अभी तैयार ही हुआ था। इससे सिंचाई के लिए निकली नहरों-नालियों की लंबाई 513 मील थी।''

जो नायक समाज को टिकाए रखने के लिए यह सब काम करते थे, उनमें से कुछ के मन में समाज को डिगाने-हिलाने वाली नई व्यवस्था भला कैसे समा पाती? उनकी तरफ से अंग्रेजों को चुनौतियाँ भी मिलीं। सांसी, भील जैसी स्वाभिमानी जातियों को इसी टकराव के कारण अंग्रेजी राज ने ठग और अपराधी तक कहा। अब जब सब कुछ अंग्रेज़ों को ही करना था तो उनसे पहले के पूरे ढाँचे को टूटना ही था। उस ढाँचे को दुतकारना, उसकी उपेक्षा करना कोई बहुत सोचा-विचारा गया, कुटिल षड्यंत्र नहीं था। वह तो इस नई दृष्टि का सहज परिणाम था और दुर्भाग्य से यह नई दृष्टि हमारे समाज के उन लोगों तक को भा गई थी, जो पूरे मन से अंग्रेज़ों का विरोध कर रहे थे और देश को आज़ाद करने के लिए लड़ रहे थे।

पिछले दौर के अभ्यस्त हाथ अब अकुशल कारीगरों में बदल दिए गए थे। ऐसे बहुत से लोग जो गुनीजनखाना यानी गुणी माने गए जनों की सूची में थे, वे अब अनपढ़, असभ्य, अप्रशिक्षित माने जाने लगे। उस नए राज और उसके प्रकाश के कारण चमकी नई सामाजिक संस्थाएं, नए आंदोलन भी अपने ही नायकों के शिक्षण-प्रशिक्षण में अंग्रेज़ों से भी आगे बढ़ गए थे। आज़ादी के बाद की सरकारों, सामाजिक संस्थाओं तथा ज़्यादातर आंदोलनों में भी यही लज्जाजनक प्रवृत्ति जारी रही थी।

उस गुणी समाज के हाथ से पानी का प्रबंध किस तरह छीना गया इसकी एक झलक तब के मैसूर राज में देखने को मिलती है।

सन 1800 में मैसूर राज दीवान पूर्णया देखते थे। तब राज्य भर में 39,000 तालाब थे। कहा जाता था कि वहाँ किसी पहाड़ी की चोटी पर एक बूंद गिरे, आधी इस तरफ और आधी उस तरफ बहे तो दोनों तरफ इसे सहेज कर रखने वाले तालाब वहाँ मौजूद थे। समाज के अलावा राज भी इन उम्दा तालाबों की देख-रेख के लिए हर साल कुछ लाख रुपए लगाता था।

राज बदला। अंग्रेज आए। सबसे पहले उन्होंने इस 'फिजूल खर्ची' को रोका और सन 1831 में राज की ओर से तालाबों के लिए दी जाने वाली राशि को काट कर एकदम आधा कर दिया। अगले 32 बरस तक लोगों के थे, सो राज से मिलने वाली मदद के कम हो जाने, कहीं-कहीं बंद हो जाने क बाद भी समाज तालाबों को संभाले रहा। बरसों पुरानी स्मृति ऐसे ही नहीं मिट जाती। लेकिन फिर 32 बरस बाद यानी सन 1863 में वहाँ पहली बार पी.डब्ल्यू.डी. बना और सारे तालाब लोगों से छीन कर उसे सौंप दिए गए।

प्रतिष्ठा पहले ही हर ली थी। फिर धन, साधन छीने और अब स्वामित्व भी ले लिया गया था। सम्मान, सुविधा और अधिकारों के बिना समाज लाचार होने लगा था। ऐसे में उससे सिर्फ अपने कर्तव्य निभाने की उम्मीद कैसे की जाती?

मैसूर के 39,000 तालाबों की दुर्दशा का किस्सा बहुत लंबा है। पी.डब्ल्यू.डी. से काम नहीं चला तो फिर पहली बार सिंचाई विभाग बना। उसे तालाब सौंपे गए। वह भी कुछ नहीं कर पाया तो वापस पी.डब्ल्यू.डी. को। अंग्रेज़ विभागों की अदला-बदली के बीच तालाबों से मिलने वाला राज्स्व बढ़ाते गए और रख-रखाव की राशि छाँटते-काटते गये। अंग्रेज़ इस काम के लिए चंदा तक मांगने लगे जो फिर जबरन वसूली तक चला गया। इधर दिल्ली तालाबों की दुर्दशा की नई राजधानी बन चली थी। अंग्रेज़ों के आने से पहले तक यहाँ 350 तालाब थे। इन्हें भी राजस्व के लाभ के पलड़े से बाहर फेंक दिया गया।

उसी दौर में दिल्ली में नल लगने लगे थे। इसके विरोध की एक हल्की-सी सुरीली आवाज़ सन 1900 के आसपास विवाहों के अवसर पर गाई जाने वाली 'गारियों', विवाह-गीतों में दिखी थी। बारात जब पंगत में बैठती तो स्त्रियाँ 'फिरंगी नल मत लगवाय दियो' गीत गातीं। लेकिन नल लगते गए और जगह-जगह बने तालाब, कुएँ और बावड़ियों के बदले अंग्रेज़ द्वारा नियंत्रित 'वाटर वर्क्स' से पानी आने लगा। पहले सभी बड़े शहरों में और फिर धीरे-धीरे छोटे शहरों में भी यही स्वप्न साकार किया जाने लगा। पर केवल पाईप बिछाने और नल की टोंटी लगा देने से पानी नहीं आता। यह बात उस समय नहीं लेकिन आजादी के कुछ समय बाद धीरे-धीरे समझ में आने लगी थी। सन 1970 के बाद तो यह डरावने सपने में बदलने लगी थी तब तक कई शहरों के तालाब उपेक्षा की गाद से पट चुके थे और उन पर नए मोहल्ले, बाजार, स्टेडियम खड़े हो चुके थे।

पर पानी अपना रास्ता नहीं भूलता। तालाब हथिया कर बनाए गए नए मोहल्लों में वर्षा के दिनों में पानी भर जाता है और फिर वर्षा बीती नहीं कि इन शहरों में जल संकट के बादल छाने लगते हैं।

जिन शहरों के पास फिलहाल थोड़ा पैसा है, थोड़ी ताकत है, वे किसी और के पानी को छीन कर अपने नलों को किसी तरह चला रह हैं पर बाकी की हालत तो हर साल बिगड़ती ही जा रही है। कई शहरों के कलेक्टर फरवरी माह में आसपास के गाँवों के बड़े तालाबों का पानी सिंचाई क कामों से रोक कर शहरों के लिए सुरक्षित कर लेते हैं।

शहरों को पानी चाहिए पर पानी दे सकने वाले तालाब नहीं। तब पानी ट्यूबवैल से ही मिल सकता है पर इसके लिए बिजली, डीज़ल के साथ-साथ उसी शहर के नीचे पानी चाहिए। मद्रास जैसे कई शहरों का दुखद अनुभव यही बताता है कि लगातार गिरता जल-स्तर सिर्फ पैसे और सत्ता के बल पर थामा नहीं जा सकता। कुछ शहरों ने दूर बहने वाली किसी नदी से पानी उठा कर लाने के बेहद खर्चीले और अव्यावहारिक तरीके अपनाए हैं। लेकिन ऐसी नगर पालिकाओं पर करोड़ों रुपये के बिजली के बिल भी चढ़ चुके हैं।

इंदौर का ऐसा ही उदाहरण आंख खोल सकता है। यहाँ दूर बह रही नर्मदा का पानी लाया गया था। योजना का पहला चरण छोटा

पड़ा, तो एक स्वर से दूसरे चरण की माँग भी उठी और अब सन 1993 में तीसरे चरण के लिए भी आंदोलन चल रहा है। इसमें कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, साम्यवादी दलों के अलावा शहर के पहलवान अनोखीलाल भी एक पैर पर एक ही जगह 34 दिन तक खड़े रह कर 'सत्याग्रह' कर चुके हैं। इस इंदौर में अभी कुछ ही पहले तक बिलावली जैसा तालाब था, जिसमें फ्लाइंग क्लब के जहाज़ के गिर जाने पर नौसेना के गोताखोर उतारे गए थे पर वे डूबे जहाज़ को आसानी से खोज नहीं पाए थे। आज बिलावली एक सूखा मैदान है और इसमें फ्लाइंग क्लब के जहाज़ उड़ाए जा सकते हैं।

इंदौर के पड़ोस में बसे देवास शहर का किस्सा तो और भी विचित्र है। पिछले 30 वर्ष में यहाँ के सभी छोटे-बड़े तालाब भर दिए गए और उन पर मकान और कारखाने खुल गए। लेकिन फिर 'पता' चला कि इन्हें पानी देने का कोई स्रोत ही नहीं बचा है।

इंदौर के पड़ोस में बसे देवास शहर का किस्सा तो और भी विचित्र है। पिछले 30 वर्ष में यहाँ के सभी छोटे-बड़े तालाब भर दिए गए और उन पर मकान और कारखाने खुल गए। लेकिन फिर 'पता' चला कि इन्हें पानी देने का कोई स्रोत ही नहीं बचा है। शहर के खाली होने तक की खबरें छपने लगी थीं। शहर के लिए पानी जुटाना था पर पानी कहां से लाएं? देवास के तालाबों, कुओं के बदले रेलवे स्टेशन पर दस दिन तक दिन-रात काम चलता रहा।

25 अप्रेल, 1990 को इंदौर से 50 टैंकर पानी लेकर रेलगाड़ी देवास आई। स्थानी शासन मंत्री की उपस्थिति में ढोल नगाड़े बजा कर पानी की रेल का स्वागत हुआ। मंत्रीजी ने इंदौर स्टेशन आई 'नर्मदा' का पानी पीकर इस योजना का उद्घाटन किया। संकट के समय इससे पहले भी गुजरात और तमिलनाडु के कुछ शहरों में रेल से पानी पहुँचाया गया है पर देवास में तो अब हर सुबह पानी की रेल आती है, टैंकरों का पानी पंपों के सहारे टंकियों में चढ़ता है और तब शहर में बंटता है।

रेल का भाड़ा हर रोज़ चालीस हज़ार रुपया है। बिजली से पानी ऊपर चढ़ाने का खर्च अलग और इंदौर से मिलने वाले पानी का दाम भी लग जाए तो पूरी योजना दूध के भाव पड़ेगी। लेकिन अभी मध्यप्रदेश शासन केंद्र शासन से रेल भाड़ा माफ़ करवाता जा रहा है। दिल्ली के लिए दूर गंगा का पानी उठा कर लाने वाला केंद्र शासन अभी मध्यप्रदेश के प्रति उदारता बरत रहा है। मनमोहन सिंह की नई 'उदारवादी' नीति रेल और बिजली के दाम चुकाने को कह बैठी तो देवास को नरक सा बनने में कितनी देरी लगेगी?

पानी के मामले में निपट बेवकूफ़ी के उदाहरणों की कोई कमी नहीं है। मध्यप्रदेश के ही सागर शहर को देखें। कोई 600 बरस पहले लाखा बंजारे द्वारा बनाए गए सागर नामक एक विशाल तालाब के किनारे बसे इस शहर का नाम सागर ही हो गया था। आज यहाँ नए समाज की चार बड़ी प्रतिष्ठित संस्थाएँ हैं। पुलिस प्रशिक्षण केंद्र है, सेना के महार रेजिमेंट का मुख्यालय है, नगर पालिका है और सर हरिसिंह गौर के नाम पर बना विश्वविद्यालय है। एक बंजारा यहाँ आया और विशाल सागर बना कर चला गया लेकिन नए समाज की चार साधन संपन्न संस्थाएं इस सागर की देखभाल तक नहीं कर पाई! आज सागर तालाब पर ग्यारह शोध प्रबंध पूरे हो चुके हैं, डिग्रियाँ बंट चुकी हैं पर एक अनपढ़ माने गए बंजारे के हाथों बने सागर को पढ़ा-लिखा माना गया समाज बचा तक नहीं पा रहा है।

उपेक्षा की इस आंधी में कई तालाब आज भी भर रहे हैं और वरुण देवता का प्रसाद सुपात्रों के साथ-साथ कुपात्रों में भी बांट रहे हैं। उनकी मज़बूत बनकर इसका एक कारण है पर एकमात्र कारण नहीं। तब तो मज़बूत पत्थर के बने पुराने किले खंडहरों में नहीं बदलते। कई तरफ से टूट चुके समाज में तालाबों की स्मृति अभी भी शेष है। स्मृति की यह मज़बूती पत्थर की मज़बूती से ज़्यादा मज़बूत है।

छत्तीगढ़ के गांवों में आज भी छेर-छेरा के गीत गाए जाते हैं और उससे मिले अनाज से अपने तालाबों की टूट-फूट ठीक की जाती है। आज भी बुंदेलखंड में कजलियों के गीत में उसके आठों अंग डूब सकें- ऐसी कामना की जाती है। हरियाणा के नारनौल में जात उतारने के बाद माता-पिता तालाब की मिट्टी काटते हैं और पाल पर चढ़ाते हैं। न जाने कितने शहर, कितने सारे गांव इन्हीं तालाबों के कारण टिके हुए हैं। बहुत-सी नगर पालिकाएं आज भी इन्हीं तालाबों के कारण पल रही हैं और सिंचाई विभाग इन्हीं के दम पर खेतों को पानी दे पा रहे हैं। बीजा की डाह जैसे गांवों में आज भी सागरों के वही नायक नए तालाब भी खोद रहे हैं। उधर रोज़ सुबह-शाम घड़सीसर में आज भी सूरज मन भर सोना उंडेलता है।

कुछ कानों में आज भी यह स्वर गूँजता है :
''अच्छे-अच्छे काम करते जाना।''

'आज भी खरे हैं तालाब' से साभार

❑❑❑

विज्ञान

पश्चिम व भारतीय धारणा

सुरेश सोनी

पाश्चात्य व भारतीय दृष्टि से निम्न तीन प्रश्नों का संक्षिप्त विचार करते हैं 1) विज्ञान याने क्या, 2) विज्ञान की परिधि कहाँ तक व्याप्त है, 3) विज्ञान की अभिव्यक्ति किस रूप में होती है?

पश्चिमी दृष्टि में

1) कार्ल पियर्सन अपनी पुस्तक ग्रामर ऑफ साइंस `Grammar of Science' में विज्ञान की व्याख्या करते हुए लगता है "तत्वों का विभक्ति कारण उसकी क्रमबद्धता तथा तुलनात्मक पाँचवी विज्ञान का कार्य है इन प्राप्त तत्वों से व्यक्तिगत सीमित अनुभूतियों से निरपेक्ष रहे निष्कर्ष प्राप्त करना ही वैज्ञानिक सोच का लक्षण है।" इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिज्ञासा, प्रयोग, निरीक्षण, कारण-मीमांसा तथा निष्कर्ष - इन पाँच कड़ियों की शृंखला के माध्यम से विज्ञान गतिमान होता है।

2) विज्ञान की परिधि के संदर्भ में इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने कहा गया है "लेटिन" भाषा के शब्द सायंशिया `Grammar of Science' का अर्थ ज्ञान है। इस शब्द का वर्तमान काल में प्रयोग कुछ ऐसे ज्ञान पर होता है इसका क्षेत्र इतना व्यापक है कि कोई भी व्यक्ति उसके एक अंश से अधिक को नहीं समझ सकता। साइंस विषयक ज्ञान नानाविध हैं। यह अंतर अनुविषयों से लेकर मानसिक क्रियाएँ तक फैला हुआ है... नक्षत्रों के जन्म मरण से लेकर पक्षियों के स्थानांतरण तक सूक्ष्मजीवों से लेकर महान गैलेक्टिक नेबुलाओं (आकाश गंगा) तक रवेदार चरणों के उत्थान पतन से लेकर अनुभव और ब्रह्मांड के निर्माण और विघटन तक फैला हुआ है इसमें प्राणियों के कार्य की ज्ञान और विचार करने के नियम और उनमें विघ्न बाधाओं का ज्ञान भी सम्मिलित है।

3) विज्ञान के विकास में दो रूप माने गए एक्टिव साइंस का विशुद्ध विज्ञान तथा दूसरा अप्लाइड साइंसेस व्यावहारिक विज्ञान शोध विज्ञान में ब्रह्मांड की अंतिम सत्य एवं उसे संचालित करने वाले नियम की खोज तथा व्यवहारिक विज्ञान के क्षेत्र में उन नियमों को समझ मानव समाज का जीवन विस्तार अधिकारी सुविधापूर्ण हो इस नाते विद्युत का आविष्कार आते हैं। व्यवहारिक विज्ञान की दृष्टि से पश्चिम में अनेक विज्ञान विकसित हुए हैं। भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव शास्त्र, नक्षत्र विज्ञान, गणित, तथा इनकी अनेकानेक शाखाएं।

भारतीय दृष्टि में

1) भारत के प्रथम परमाणु वैज्ञानिक महर्षि कणाद अपने वैशेषिक दर्शन के दसवें अध्याय में कहते हैं 'दृष्टानां दृष्ट प्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय' अर्थात प्रत्यक्ष देखे हुए और अन्य को दिखाने के उद्देश्य से अथवा स्वयं और अधिक गहराई से ज्ञान प्राप्त करने हेतु रखकर किए गए प्रयोगों से अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त होता है।

इसी प्रकार सामान्य कण से लेकर ब्रह्मांड और उनका प्रयोजन जानने के लिए महर्षि गौतम न्याय दर्शन में 16 चरण की प्रक्रिया बताते हैं प्रमेय याने वे साधन जिससे जानना है। प्रमाण याने वे साधन जिससे जानने का प्रयत्न करते हैं। संशय याने जिसके कारण जाँच पड़ताल की जाती है। समाधान के सभी अंगों का अलग-अलग जानना अवयव कहलाता है। उसके बाद प्रतिज्ञा याने हाइपोथिसिस रखी जाती है। फिर हेतु, उदाहरण आदि माध्यम से सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न, इस प्रकार की प्रक्रिया बताई गई।

2) जानने की परिधि का भारतीय वर्णन अधिक स्पष्ट है यहाँ कहा गया कि कार्य जगत यानी दृष्यमान जगत और उसके समस्त व्यापार तथा जगत का कारण दोनों को जानना चाहिए आज पश्चिम जगत को आब्जर्व कर रखा है पर आब्जर्वर के बारे में उतना नहीं जानते।

गीता के अध्याय 7 में भगवान कृष्ण कहते हैं कि ब्रम्हा के समग्र रूप को जानने के लिए ज्ञान-विज्ञान दोनों को जानना चाहिए क्योंकि जिन्हें

जानने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रहता। आगे वह कहते हैं कि पृथ्वी याने ठोस, जल याने द्रव्य, वायु यानि गैस, अग्नि याने ऊर्जा, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार तथा यह सब जिसमें हैं वह परम चेतना तत्व इंसान के बारे में जानना चाहिए।

इस प्रकार महर्षि कणाद कहते हैं पृथ्वी जल तेज वायु आकाश देख कर मन और आत्मा में जानना चाहिए इस परिधि में जड़ चेतन सारी प्रति व जीव आ जाते हैं।

3) ज्ञान विज्ञान का अंतिम उद्देश्य जगत के अंतिम कारण की खोज है इस दृष्टि से अनेक संदर्भों का वेदों उपनिषदों का दर्शन ग्रंथों में उल्लेख है इसमें दृष्टि की उत्पत्ति क्रम तथा लाभ प्रक्रिया दृष्टि संचालन के नियमों का उल्लेख आता है किसी के साथ साथ व्यावहारिक विज्ञान की दृष्टि से भौतिक, रसायन, वनस्पति शास्त्र, कगणित नक्षत्र विज्ञान जीव शास्त्र आयुर्वेद धातु विज्ञान और विभिन्न कला कौशल की भी अध्ययन व प्रयोग का क्षेत्र था यह संदर्भ छांदोग्योपनिषद् के सप्तम अध्याय के प्रथम खंड में नारद जी और सनत कुमार के संवाद से ज्ञात होता है एक बार नारद सनत कुमार जी के पास गए और प्रार्थना की कि भगवान मुझे ज्ञान दीजिए तब सनत कुमार ने पूछा तुमने क्या पढ़ा है क्या जानते हो (छा.7-1-1) इसके उत्तर में नारद कहते हैं भगवान मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद, इतिहास, पुराणरूप, पाँचवा वेद, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, ज्योतिष, विधिशास्त्र, तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र, देवविद्या, ब्रम्हविद्या, भूत विद्या, क्षत्र विद्या, नक्षत्र विद्या, गारुड़ मंत्र देवजन विद्या, नृत्य-संगीत, शिल्प यह सब पढ़ा है मैं मंत्रवेत्ता हूँ पर आत्मवेत्ता नहीं और कहते हैं हाथ में वैधता दुख के समुंद्र से पार हो जाता है अतः वह ज्ञान मुझे दीजिए। छा। (7-1-2,3)

आगे के पृष्ठों मैं प्रायोगिक या व्यावहारिक विज्ञान के विविध क्षेत्रों और शुद्ध विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय परंपरा व योगदान के बारे में जानने का कुछ प्रयत्न करेंगे।

जब हम वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, पुराण, महाभारत, रामायण आदि भारत का प्राचीन साहित्य पढ़ते हैं तो उसमें वर्णित कुछ घटनाएं वैज्ञानिक विकास का आभास देती है जैसे उपनिषद में वर्णित घटना की उपमन्यु की नेत्र ज्योति आ जाती है और अश्विनी कुमार उसे पुनः ज्योति देते हैं शाण्डिल के पति की मृत्यु पर अनुसुइया उसे पुनः जीवित कर देती है च्यवन ऋषि का वार्धक्य अश्विनी कुमार दूर करते हैं रावण द्वारा विभिन्न भौतिक शक्तियों पर नियंत्रण, त्रिपुरासुर के तीन नगर जमीन, आसमान व जल पर गतिमान होते थे पौलुमी आकाशस्थ नगरवासी असुरों से अर्जुन का युद्ध विभिन्न देवताओं की अंतरिक्ष यान, दिव्यास्त्रों का वर्णन, रामायण में इच्छा अनुसार चलने वाला पुष्पक विमान आदि पड़े हैं तो चित्र एक विकसित सभ्यता का उभरता है परंतु फिर प्रश्न उठता है क्या यह मात्र कथा कहानी या कवि कल्पना हैं। क्योंकि यदि ऐसा हुआ था तो उसकी तकनीक क्या थी? इस तकनीक को बताने वाले ग्रंथ है क्या? यह जानने का प्रयत्न करने में सबसे बड़ी बाधा है, जो जानकारी है संस्कृत में हैं और आज भी हजारों, लाखों पांडुलिपियां यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है फिर भी प्रायोगिक विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति के प्रमाण और कुछ ग्रंथ हैं जिनसे हम इसे जान सकते हैं।

वैज्ञानिक परंपरा

वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन अनुसंधान की परंपरा प्राचीन काल से चली आई है अनेकों ऋषियों ने इसके लिए जीवन खपाया। भृगु, वशिष्ठ, भरद्वाज, अत्रि, गर्ग, शौनक, शुक्र, नारद, चाक्रायण, धुंडीनाथ नंदीश, काश्यप, अगस्त्य, परशुराम, द्रोण, दीर्घतमस आदि हुए जिन्होंने विमान विद्या, नक्षत्र विज्ञान, रसायन विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र रचना, जहाज निर्माण और जीवन के सभी क्षेत्रों में काम किया उदाहरण के लिए भृगु अपने शिल्पशास्त्र में शिल्प की परिभाषा करते हुए जो लिखते हैं उसे ज्ञान की परिधि कितनी व्यापक थी इसकी कल्पना आती है।

नानाविधानां वस्तूनां यंत्राणाँ कल्पसंपदा
धातूनां साधनां च वास्तूनां शिल्पसंज्ञितम्।
कृषिर्जलं खनिश्चेति धातचखण्डं त्रिधाभिधम।।
नौका-रथाग्नियानानां, तिसाधनमुच्यते।
वेश्म, प्राकार, नगररचना वास्तु संज्ञितम्।।

-भृगु संहिता-1[3]

भृगु 10 शास्त्रों का उल्लेख करते हैं : 1) कृषि शास्त्र, 2) जल शास्त्र, 3) खनि शास्त्र, 4) नौका शास्त्र, 5) रथ शास्त्र, 6) अग्नि शास्त्र, 7) वेषम शास्त्र, 8) प्राकार शास्त्र, 9) नगर रचना, 10) यंत्र शास्त्र इसके अतिरिक्त 32 प्रकार की विधाएं तथा 64 प्रकार की घटनाओं का उल्लेख आता है इन में धातु विज्ञान, वस्त्र विज्ञान, स्वास्थ्य, कृषि, बांध बनाना, वन रोपणी, युद्ध, शस्त्र, पुल बनाना, मुद्राशास्त्र नौका, रथ विमान, नगर रचना, गृह निर्माण, स्वास्थ्य, जीव शास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भोजन बनाना, बालसंगोपन, राज्य संचालन, आमोद-प्रमोद आदि सब आते थे। इस विषय सूची को देखकर लगता है इन की परिधि संपूर्ण जीवन को व्याप्त करने वाली थी। इन विधाओं की अनेक ग्रंथ थे, कितने ही लुप्त हो गए। कई विद्याएं जानने वालों के साथ ही लुप्त हो गई क्योंकि हमारे यहाँ एक मान्यता रही कि अनधिकारी के हाथ में विद्या नहीं जानी चाहिए यह सत्य है कि बहुत सा ज्ञान लुप्त हो गया, परंतु आज भी लाखों पांडुलिपियां बिखरी पड़ी है आवश्यकता है उनके अध्ययन, विश्लेषण और प्रयोग की।

('भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा' से साभार)

❑❑❑

पर्यावरण संरक्षण

भारतीय प्राचीन दर्शन

अखिलेश कुमार पाण्डेय

समूची सृष्टि पंचमहाभूत अर्थात अग्नि, जल, वायु, आकाश और पृथ्वी से निर्मित है जो किसी ना किसी रूप में जीवन का निर्माण करते हैं और उसे पोषण देते हैं। इन सभी तत्वों का सम्मिलित स्वरुप ही पर्यावरण है पर्यावरण संरक्षित तो जीवन सुरक्षित यह उक्ति मात्र एक कहावत भर नहीं बल्कि अनिवार्य एक अकाट्य सत्य है प्रकृति ने हमें जल-जंगल-जमीन का अनोखा उपहार दिया किंतु हमने इन उपहारों पर निर्दयतापूर्वक प्रहार किया। जल को हमने प्रदूषित किया, जंगल को काटा और जमीन को विषाक्त रसायनों का भंडार बना दिया। अप्रत्याशित औद्योगिक और वाहन प्रदूषण रासायनिक कचरे का बढ़ता ढेर और नदियों में नगरपालिकाओं के गंदे पानी आदि के कारण स्वास्थ्य संबंधी संकट को साफ तौर से देखा जा सकता है। इसके साथ अन्य कई कारण पर्यावरण क्षरण के लिए सीधे तौर पर जिम्मेदार हैं जो कई आपदाओं जैसे तूफान, सुनामी, भूकंप, बीमारियां नई-नई बीमारियों को जन्म दे रहे हैं। करीब 8 वर्ष पहले संयुक्त राष्ट्र का सहस्त्राब्दि पर्यावरण आकलन आया था जिसमें तमाम विनाशकारी खतरों की ओर संकेत थे। पर्यावरण का संतुलन ही जीवन चक्र को नियमित और नियंत्रित करता है और इसमें गतिरोध आते ही जीवन संकट में पड़ जाता है। इस कटु सत्य को जानते हुए भी मनुष्य ने विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति का अंधाधुंध शोषण कर आज विश्व को एक भयानक संकट की ओर धकेल दिया। इन्हीं कारणों से पर्यावरण संरक्षण की चिंता प्राचीन काल से होती आ रही है। प्राचीन कालीन महाऋषिगणों ने इसकी आवश्यकता एवं महत्व को ध्यान में रखकर इसे शुद्ध एवं संरक्षित रखने हेतु नियम बना लिए थे ।

भारतीय वेद पुराणों में सृष्टि की जीवनदायी तत्वों की विशेषताओं का काफी सूक्ष्म विस्तृत विवरण है। यह विवरण निश्चित रूप से आज भी विश्व में पर्यावरण के नित्य नवीन चुनौतियों का समाधान करने में सक्षम है। भारतीय वेद पुराण वस्तुतः उस परम व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं जिसके अधीन यह प्रति अपने क्रियाकलाप संचालित करती हैं। वेदों के विभिन्न सूक्तों में प्रकृति की महत्ता की ओर इंगित किया गया है। इन सूक्तों के प्रत्येक शब्द में भाव संवेदना एवं ज्ञान के उच्च स्वर ध्वनित होते हैं। ऋग्वेद में अग्नि के रूप, रूपांतरण कार्य एवं गुणों की व्याख्या की गई है। यजुर्वेद में जहां वायु के गुणों, कार्यों और उसके विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है, वही ऋग्वेद उसके औषधीय गुणों का बखान करता है। सामवेद में जल तत्व का विस्तार से वर्णन मिलता है। ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र जल की शुद्धता का वर्णन करते हुए कहता है कि प्रशंसा के गीत गाएँ- प्रवाहित जल के, जो हजारों धाराओं से इस स्फटिक की तरह बह कर आंखों को आनंद देता है। ऊर्जा के अपरिमित स्रोत सूर्य को जगत की आत्मा कहकर पूजा अर्चना की गई है। स्कंदपुराण के अनुसार गंगा दशमी के दिन नदी में स्नान करने से समस्त पापों का नाश होता है। इसी प्रकार वराहपुराण के अनुसार जेष्ठ शुक्ल दशमी दिन बुधवार हस्त नक्षत्र में गंगा धरती पर आयी थी। अतः इस दिन इस में स्नान करने से सारे पापों से मुक्ति मिलती है। भविष्यपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य गंगा दशहरा के दिन गंगा में खड़ा होकर दस बार गंगा महिमा को पढ़ता है, सारे पाप से मुक्त हो जाता है। स्कंदपुराण में नर्मदा को सर्वाधिक पवित्र एवं पुण्य दायिनी मानकर उसकी स्तुति की गई है। जल की महत्ता पर ऋग्वेद में नदी सूक्त की रचना की नदियां केवल विशाल जलराशि का भंडार यह नहीं उनसे हमारा धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पक्ष जुड़ा है। सनातन धर्म के सोलह संस्कारों में जल को विशेष महत्व दिया गया है। प्रत्येक संस्कार में जल पूजन एवं स्नान का विशेष महत्व है। इसके बिना यज्ञ और पूजन सफल नहीं माने जाती तथा जल को

बुराइयों का संहारक माना गया है। बच्चों के जन्म उपरांत कुआं पूजन के बाद जल स्पर्श के पीछे यही कारण है कि जल ही जीवन है उसे संरक्षित रखना आवश्यक है।

माता भूमि : पुत्रोऽहं पृथिव्या। अर्थात मैं भूमि का पुत्र हूं और यह पृथ्वी मेरी माता है, जैसी उद्घोषणा में प्रकृति के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त हुई है अथर्ववेद पृथ्वी तत्व का मुख्य वेद है। आकाश तत्व का वर्णन सभी वेदों में हुआ है। पर्यावरण के निर्माण में इन्हीं चार तत्वों की मुख्य भूमिका होती है मनीषियों ने पंच तत्वों के महत्व एवं संरक्षण के लिए उन्हें भगवान या अल्लाह के साथ जो जुड़ा है तथा उसका विश्लेषण इस प्रकार किया है।

भगवान : रू भ त्र भूमि यानि पृथ्वी, ग त्र गगन यानि आकाश, व त्र वायु यानि हवा, अ त्र अग्नि यानि आग और न त्र नीर यानि जल।

अलइलअह (अल्ला) : अ त्र आब यानि पानी, ल त्र लाब यानि भूमि, इला त्र दिव्य पदार्थ यानि वायु, आ त्र आसमान यानि गगन और ह त्र हरक यानि अग्नि।

इस प्रकार वेद पर्यावरण की अत्यंत सूक्ष्म एवं समग्र व्याख्या करते हैं। वैदिक महार्षियों ने प्राकृतिक शक्तियों को देवी का रूप माना और उनकी उपासना व अभ्यर्थना का प्रावधान किया था। प्रकृति के प्रति भारतीय दृष्टि बिल्कुल अलग है। जहां पाश्चात्य सभ्यता में वनस्पति पर्वत वन समुद्र वायु जल सभी उपभोक्ता सामग्री है तथा बाजार शैली प्रकृति पर नियंत्रण करता है, वही भारतीय दर्शन सहजीविता का है। भगवान महावीर ने भी पर्यावरण-मिट्टी, पानी, हवा, वृक्ष आदि को सजीव कहा है। उनके अनुसार, प्राकृतिक संसाधनों पर सिर्फ मनुष्य का अधिकार नहीं है, धरती आकाश जितने हमारे हैं उतने ही अन्य प्राणियों के भी हैं। नदियां भी प्राणवान हैं, वन उपवन का भी एक व्यक्तित्व है। अतः प्रकृति के सभी घटकों को मस्ती में जीने का अधिकार है। रामायण के नायक जब समुद्र सोचने की बात करते हैं तो समुद्र अपने अस्तित्व के लिए उनसे संवाद करता है। तुलसी की रामकथा में पृथ्वी के आहत होने का भी उल्लेख है, 'अतिसय देख धरम कै हानी। परम सभीत धरा अकुलानी।।' यहां धर्म का अर्थ लोक मंगल आचरण है, सामवेद में जीवनदायिनी वनस्पतियों और पशु जगत तथा औषधि विज्ञान के सुंदर मंत्रों का उदाहरण है। वैदिक कर्मकांडों में अनेक स्थानों पर पर्यावरण के संरक्षण का महत्व समझाया गया है। यजुर्वेद में यज्ञों को ही पर्यावरण शुद्धि का केंद्र माना है और यज्ञ के विधि विधानों का विस्तार से वर्णन किया है। यजुर्वेद का अध्ययन किस तत्व का संकेत करता है कि उसकी शांति पाठ में पर्यावरण के सभी तत्व को शांत और संतुलित बनाए रखने का उत्कट भाव है। वही इसका तात्पर्य है कि समूचे विश्व का पर्यावरण संतुलित और परिष्कृत हो। इस में उल्लेख है कि द्युलाक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक-अजैविक धटक संतुलन की अवस्था में रहे। अदृश्य आकाश, पृथ्वी एवं उसके घटक, जल औषधीयाँ, वनस्पतियाँ, संपूर्ण संसाधन एवं ज्ञान शांत रहें। पर्यावरण के प्रति इतना ज्ञान एवं सूक्ष्म गहन का दिग्दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है सामवेद को संगीतात्मक ग्रंथ माना गया है। गीता में श्रीकृष्ण ने 'वेदानां सामवेदोस्मि' कहकर इस ग्रंथ को विशेष महत्व प्रदान किया है। सामवेद में प्राकृतिक वैभव के साथ ही वनस्पति एवं पशु जगत के संरक्षण के महत्व को भी उभारा आ गया है। एक सूक्त में ऋषि का कथन है अत्यधिक वर्षा करने वाले इंद्र की जल वृष्टि से सूर्य की किरणें वृक्षों और वनस्पतियों का पोषण करने में सहायक होती है। एक अन्य सूक्त में याचना की गई है कि- हे इंद्र सूर्य रश्मियों और वायु से हमारे लिए औषधियों की उत्पत्ति करो। इस प्रकार सामवेद के उदाहरणों से वानस्पतिक उत्कर्ष के द्वारा सर्वत्र स्वास्थ्य जीवन की कामना व्यक्त की गई है। आयुर्वेद जिसको एक अतुल्यनीय औषध शास्त्र माना गया है, में कई औषधीय वनस्पतियों का वर्णन है। वृक्षों के प्रति प्रेम भाव हमेशा ही भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। हमारे ऋषि-मुनियों और पुराणकारों ने मनुष्य की तर्कबुद्धि की अपेक्षा उसकी मानवीय संवेदना को अधिक महत्व दिया है और इसी कारण वृक्षों में मानवीय संवेदनाओं का वर्णन किया गया है। ऋषि मुनियों ने वृक्षारोपण, वृक्ष संरक्षण को धार्मिक कृत्य बताकर वृक्षोत्सव वनोत्सव की डाल दी है। महाभारत के शांति पर्व में पेड़ पौधों में जीवन माना गया है और कहा गया है कि वे भी सुख-दुख का अनुभव करते हैं। वृक्ष विशेष रूप से पीपल को महादेव शिव का प्रतिनिधि माना गया है जो उनकी तरह ही प्रदूषण रूपी विष को पीकर प्रकृति का रक्षण करते हैं पद्मपुराण में उल्लेख है कि सभी ईश्वर के स्वरूप हैं। स्कंदपुराण के अनुसार एक वृक्ष का रोपण दस पुत्रों के समान है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वृक्ष पुत्र की भांति इस लोक और परलोक सुधारने वाला माना गया है। भविष्य पुराण के अनुसार कोई व्यक्ति यदि पीपल, नीम, बरगद, बेल इत्यादि लगाता है तो नरक में नहीं जाता। पद्मपुराण एवं मत्स्यपुराण में वृक्षारोपण एक महोत्सव के रूप में मनाने का वर्णन है। बृद्धदारण्यक उपनिषद में वृक्ष की तुलना मानव शरीर से की है। श्रीमद्भागवत गीता के दसवें अध्याय के छब्बीसवे श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'अक्ष्वत्य सर्ववृक्षाणां' अर्थात सभी वृक्षों में मैं हूँ। पुराणों में वृक्षों में देवी-देवताओं का निवास होने की बात की गई है। स्कंदपुराण में कहा है कि पीपल के मूल में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण पत्तों में भगवान हरि विराजमान हैं। वृक्षों के संरक्षण के बारे में जागरूकता में साहित्यकारों ने भी अद्भुत योगदान दिया है। संस्कृत के मूर्धन्य कवि कालिदास वृक्षों के महत्व

को बखूबी समझते थे। उनके साहित्य में पेड़-पौधों के प्रति गहरी संवेदना सर्वत्र मुखरित हुई है। कालिदास ने वनस्पतियों को मानव के सच्चे मित्र परिजन तथा संरक्षक के रूप में देखा और चित्रित किया है। सब की मंगल कामना करने वाले कालिदास वृक्षों को सर्वदा नाचता झूमता हँसता-खेलता और प्रेमालाप करते देखना चाहते थे। अपने साहित्य के माध्यम से संदेश दिया है कि वृक्षों का संरक्षण, पालन और संवर्धन हमारे हित में है। मेघदूत में मदार के एक पौधे का उल्लेख है जिसे यक्ष की प्रिय ने पुत्र मानकर बढ़ाया है। अभिज्ञानशाकुंतलम् में तो वृक्षों को सगे भाई जैसा और पुत्री से भी

अधिक प्रिय बताया गया है। कुमारसंभव महाकाव्य के अनुसार वृक्ष केवल परिणय सूत्र में ही नहीं बनते, अपितु भुज बंधन भी प्राप्त करते हैं। भुजाओ में बंधन- लतावधु। ऋतुसंहार में कहा गया है कि प्रातः जब कमल को सूर्य की किरणें जगा रही है तब वह जम्हाई ले रहा है। वृक्षों की दानशीलता सराहनीय है। उत्तर मेघ में वर्णन है कि उलकापुरी में महिलाओं की प्रसाधन की समस्त सामग्री अकेले कल्पवृक्ष ही सुलभ कर देता है। पर्यावरण संरक्षण की एक अनिवार्य इकाई पशु जगत के प्रति भी सामवेद में अनुराग भरा दृष्टिकोण प्राप्त होता है। इसमें अनेक काव्यात्मक बिंबों के माध्यम से प्रकृति के साथ पशुधन संरक्षण के मनोरम चित्र अंकित किए गए हैं। संरक्षण की दृष्टि से पशु-पक्षियों को हमारे देवी-देवताओं या अवतारों के साथ चाहे वाहन के रूप में या साथी को के रूप में जोड़ा गया है। पशुओं के विभिन्न अंगों में देवताओं का निवास होता है उदाहरण के लिए भविष्य पुराण एवं बृहत्पराशरस्मृति के अनुसार गौ के सींगों के मूल में ब्रह्माजी, दोनों सींगों के मध्य में भगवान नारायण तथा शिरोभाग में भगवान शिव का निवास होता है। पद्मपुराण के अनुसार छः अंगों, पदों और क्रमोसहित संपूर्ण वेद गौओ के मुख में निवास करते हैं। प्रायः सभी वेद पुराणों में गौओं को महानतम की श्रेणी में रखा है। इसके मुख्य उदाहरण गणपति एवं मूषण, शिव नंदी एवं सांप, कार्तिकेय एवं मोर, विष्णु एवं शेषनाग, दुर्गा एवं सिंह, श्रीकृष्ण एवं गाय तथा सरस्वती एवं हंस आदि हैं। पर्यावरण समन्वय की अभूतपूर्व मिसाल भगवान शिव के परिवार में मिलती है। जहां सभी के वाहन अलग-अलग एक दूसरे के घोर विरोधी हैं। फिर भी सामंजस्य बनाकर प्रकृति में निवास करते हैं। उदाहरण के लिए गंगा (पानी) और आग (तीसरी नेत्र) एक दूसरे के विरोधी हैं। लेकिन शिव के मस्तक पर विराजमान हैं। शिव का वाहन नंदी, पार्वती के वाहन सिंह का आहार है। शिव के गले में सांप शिव पुत्र कार्तिकेय के वाहन मयूर का भोजन, गणेश का वाहन मूषक सांप की खुराक है लेकिन सभी प्रकृति संरक्षण की भावना से एक दूसरे के साथ रहते हैं। जीवन सुख समृद्धि से ओत-प्रोत को पर यह तभी संभव है जब वनस्पति जगत फले-फूले दिव्य औषधियां सहज सुलभ को पशुधन सुरक्षित रहें और मानव पशु एवं वनस्पति और स्नेहिल तादात्म्य के साथ संगठित रहें। वैदिक सूक्तों में पर्यावरण के संबंध में हमारे ऋषियों का यही दृष्टिकोण मुख्यतः उभरकर हमारे सामने आता है : 'जीवेम शरदः शतम्' की अवधारणा प्रकृति के माधुर्ययुक्त संवाद में ही संभव है अपितु वह ईश्वरीय चेतना ही क्रीडा कर रही है। पर्यावरण को संरक्षित रखने के लिए वैदिक ऋषियों ने जिस मार्ग का अन्वेषण किया, उसकी महत्ता आज भी उतनी ही है जितनी तब थी। ध्वंस के द्वारा प्रकृति अपना संतुलन स्वयं स्थापित करें इससे बेहतर यह है कि हम प्राकृतिक नियमों का पालन कर उसे ध्वंस की ओर नहीं अपितु सृजन की ओर उन्मुख करें। यज्ञ, प्रकृति प्रेम, अहिंसा यह वेदों की विशेषताएं हैं जिन पर चलकर विषाक्त हो चुके पर्यावरण को हम अमृतमय में बना सकते हैं। पर्यावरण संरक्षण एवं प्रकृति प्रबंधन का भारतीय दर्शन अति उत्तम है लेकिन प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण के मूल प्रश्न मनुष्य की आधुनिक जीवन शैली से ही जुड़े हुए हैं। पश्चिमी दृष्टि में प्रकृति एवं मनुष्य के बीच अंतर्विरोध है। पश्चिमी दृष्टि में प्रकृति का अंधाधुंध दोहन एवं शोषण इसी दृष्टि का परिणाम है। विकास की दृष्टि आत्मघाती है। भारतीय जीवन दृष्टि पृथ्वी और जल को माता, आकाश को पिता, अग्नि और सूर्य को देव और वायु को प्रत्यक्ष ब्रह्मा जानती और मानती है। अतः विकास का समावेशी होना चाहिए जिसमें पर्यावरण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। 'आज विकास करो और बाद में इसकी कीमत चुकाओ' वाला मॉडल भारतीय चिंतन एवं दर्शन के अनुकूल नहीं है। भारतीय सभ्यता जैव विविधता के अति संवेदनशील रही है और आदरभाव दिखाया है। इसलिए हरित विकास के क्षेत्र में वैश्विक अगुआ बनना हमारे लिए कठिन नहीं है। भारत पूरे विश्व को 'विकास किसी कीमत पर' वाले से सिद्धांत से होने वाली समस्याओं और पर्यावरण संरक्षण की भारतीय दृष्टि से अवगत कराएं तो विश्व तथा समस्त जीव जंतुओं का कल्याण होगा। प्रकृति और मानव में सामंजस्य स्थापित करने में सरल, सुलभ एवं मातृभाषा में उपलब्ध साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में-

कुछ कर गुज़रने के लिए मौसम नहीं मन चाहिए।
साधन सभी जुट जायेंगे संकल्प का धन चाहिए।।

अतः हमें आधुनिकता तथा प्राचीनता में सामंजस्य स्थापित करना होगा तभी प्रकृति का संरक्षण हो पाएगा।

akpmycol@yahoo.co.in
❑❑❑

अंकों का उद्‌भव

शुकदेव प्रसाद

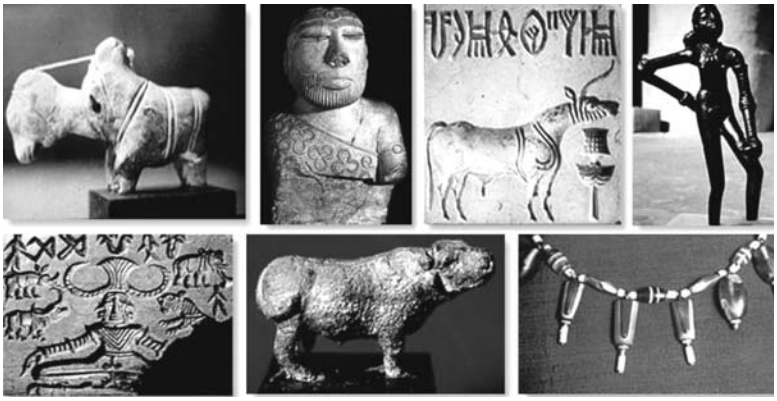

अंकों का उद्‌भव उतना ही पुराना है, जितना स्वयं मानव का उद्‌भव। सभ्यता की विकास यात्रा के साथ ही जुड़ा है अंकों का विज्ञान। आदमी ने अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में छोटे-छोटे लेन-देन और वाणिज्य-व्यवसाय में हिसाब-किताब रखने के लिए गणना कला सीखी होगी। आदिम सभ्यता के लोग अपनी नावों, शिकार किए हुए पशु-पक्षियों की गिनती करते थे तो वणिक वर्ग धन-धान्य तथा रोज इस्तेमाल में आने वाली चीजों के क्रय-विक्रय और उनसे प्राप्त आय के हिसाब-किताब के लिए गणना करता था। वैदिक-ऋषि दान में मिली गायों को अपनी संपदा समझते और अपनी स्मृति के लिए गणना का सहारा लेते थे। इसी गणना क्रम में अंक विद्या पनपी। यह अलग बात है कि वह आज जैसी फूली-फली और वैज्ञानिक नहीं थी, फिर भी थी तो गणना प्रणाली ही। आदमी ने अंगुलियों के सहारे गणना सीखी या फिर कंकड़ों, सीपियों, घोंघों की मदद से। एक (1) से लेकर नौ (9) तक की संख्याएं ही गणना की आधार रही हैं और आज भी हैं। हर देश, काल और परिस्थिति में ये अंक ही मानव की गणना के आधार रहे हैं, चाहे उनके लिखने का तरीका भिन्न रहा है। भारतीय अंक पद्धति जितनी उन्नत और वैज्ञानिक थी, उतनी अन्य किसी भी सभ्यता की अंक विद्या नहीं रही, यह इतिहास सम्मत और सर्वमान्य है।

भारत की देन

गणित में हमारे देश की सबसे युग-प्रवर्तक खोज रही है दशमलव पद्धति की जो अब सारे विश्व में स्वीकृत हो चली है। यह पहली नौ संख्याओं (1 से 9 तक) तथा शून्य के सिद्धांत पर आधारित है। इस अंक लेखन ने शास्त्रीय गणनाओं एवं पद्धतियों को अत्यंत सरल बना दिया। हिंदू (भारतीय) गणितज्ञों में कब और किसने शून्य का आविष्कार किया, ठीक से ज्ञात नहीं है, लेकिन इब्नवशिया, अलमसूदी, अलबेरूनी प्रभृति विद्वान इसके आविष्कार का श्रेय हिंदुओं को देते हैं। कदाचित इसी नाते अरबवासी गणित को 'इल्मेहिंदसा' (अर्थात हिंदुस्तान की विद्या) कहते हैं।

शून्य का महत्व

शून्य के आविष्कार से पूर्व अंकों लिए चिह्न हुआ करते थे, जिन्हें मिलाकर गणना की जाती थी। रोमन अंकों-एक (I), पांच (V), दस (X), पचास (L), सौ (C), पांच सौ (D), तथा हजार (M) की मदद से रोम वासी कुछ हजार तक ही लिख सकते थे। हजार से बड़ी संख्याएं लिखने के लिए रोमन अंक पद्धति में कोई स्थिर व्यवस्था न थी। रोमवासी दस हजार को प्रायः ((I)) और 100,000 को प्रायः (((I))) से लिखते थे। तीसरी शती ईसा पूर्व का एक रोमन स्मारक मिला है, जिसमें 23,00000 की संख्या को '(((I)))' चिह्न को 23 बार दुहराकर लिखा गया है। ऐसा अंक दारिद्रय रोमन पद्धति में था। यूनानी भी दस हजार (मिरियड) से आगे नहीं बढ़ पाते थे। और इसे भी व्यक्त करने के लिए अक्षरों का सहारा लिया जाता था। यथा

y B r

M = 10,000; M = 20,000; M = 30,000 आदि। अलबेरूनी ने लिखा है कि - *'अंक क्रम में जो एक हजार से अधिक जानते हैं वे, हिन्दू हैं।'* भारतीय विद्वानों की मेधा का ही यह परिणाम था कि दशगुणोत्तर एवं शतगुणोत्तर पद्धति से वे बहुत कुछ लिख सकते थे। प्राचीन हिंदुओं ने बड़ी संख्याओं को व्यक्त करने के लिए संज्ञाओं का प्रयोग करना आरंभ किया था। आज भी किसी देश की अंक-संज्ञाएं, जो अपने यहां से प्रेरित होकर फैली हैं, उतनी वैज्ञानिक एवं पूर्ण नहीं, जितनी हिंदुओं की हैं।

अंक संज्ञाएं

प्राचीन हिंदुओं के पास अंकों को सूचित करने वाली 18 संज्ञाएं विद्यमान थीं। अंक संज्ञाओं का प्रयोग अंक स्थानों के अर्थ में आगे किया जाने लगा। इस संबंध में आर्यभट (रचना काल 499 ई.) अंक स्थानों का नाम गिनाते हुए लिखते हैं-

एकं दश च शतंच सहस्रमयुतनियते तथा प्रयुतम
कोट्यर्बुदंच वृन्दं स्थानात्स्थानं दशगुणं स्यात्।।

(आर्यभटीयम, 2)

अर्थात् एक (1), दश (10), शत (100), सहस्र (1000), अयुत (10000), नियुत (100000), प्रयुत (1000000), कोटि (10000000), अर्बुद (100000000), और वृंद (1000000000) इस तरह 10^9 तक। इन स्थानों में से प्रत्येक अपने पीछे वाले से दस गुना है।

अक्षरों की संकेत लिपि

कुसुमपुर (पटना) में जन्मे पांचवीं शती (जन्मकाल 476ई.) के उद्भट गणितज्ञ एवं खगोलज्ञ आचार्य आर्यभट प्रथम ने अंकों के मान के लिए अक्षरों की भी संकेत लिपि बनाई है। आर्यभट ने संस्कृत वर्णमाला के आधार पर अंक निरूपण की प्रणाली दी है (गीतिकापाद के प्रथम 2 श्लोक), जिसके अनुसार,

स्वर

अ=1; इ=100;, उ=10,000; ऋ=10,00,000,
ऌ=10,00,00,000, ए=10,00,00,00,000,
ऐ=10,00,00,00,00,000, ओ=10,00,00,00,00,00,000,
औ=10,00,00,00,00,00,00,000 (100^8)।

व्यंजन

भारतीय व्यंजनों को वर्ग और अवर्ग में बांटा गया है। वर्ग क से म तक अर्थात् क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, म वर्ग के पांच-पांच व्यंजन (कुल 25) क्रमशः 1 से 25 तक की संख्याओं के द्योतक हैं। यथाः क=1, ख=2, ग=3, घ=4, ङ=5, च=6, छ=7, ज=8, झ=9, ञ=10, ट=11, ठ=12, ड=13, ढ=14, ण=15, त=16, थ=17, द=18, ध=19, न=20, प=21, फ=22, ब=23, भ=24, म=25।

वर्ग व्यंजनों के अतिरिक्त 8 अवर्ग व्यंजन हैं, जो निम्न अंकों के द्योतक हैं :

य=30, र=40, ल=50, व=60, श=70, ष=80, स=90, ह=100।

आर्यभट ही नहीं, अन्य भारतीय गणितज्ञों ने ऐसी अंक संज्ञाएं आविष्कृत की हैं, जिनका महत्व मात्र ग्रंथों की रचनाओं में होता था। चूंकि अधिकांश प्राचीन ग्रंथ संस्कृत के श्लोकों में पद्यबद्ध हैं, अतः अंकों के बजाय पदों में अंक संज्ञाएं विराजमान हुईं, जिन्हें समझना मात्र पंडितों के वश का था, सामान्य जनता इस बुद्धि कौशल से सर्वथा वंचित थी। मात्र एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। एक महायुग में सूर्य पृथी के 43,20,000 चक्कर (भगण) लागाता हुआ माना गया है, जिसे आर्यभट ने 'ख्युघृ' से प्रकट किया है।

ख के लिए 2 प्रयुक्त किया गया है और य 30 का द्योतक है। दोनों संयुक्ताक्षर हैं और उनमें उ की मात्रा लगी हुई है जो 100^2 अर्थात् 10000 के समान है, अतः ख्यु का अर्थ हुआ 32×100^2 या 32,0000। घृ के घ का अर्थ है 4 और ऋ का 100^3 या 100000, अतः घृ का अर्थ हुआ 40,00,000 इसलिए ख्युघृ = खु + यु + घृ। अतः

खु	=	20 000
यु	=	300 000
घृ	=	4000 000
खुयुघृ	=	4320000

स्पष्ट है कि ऐसी जटिल गणना पद्धति सहज-सामान्य बुद्धि के परे थी। यह ज्ञान मात्र पोथियों में सिमट कर रह गया।

भारतीय अंकों का विकास

इस पृष्ठभूमि के बाद आइए, भारतीय अंक पद्धति की बिखरी कड़ियां जोड़ें और देखें कि किस तरह भारतीय अंक अस्तित्व में आए और देश, काल की सीमाओं को पार कर अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर छा गए तथा सार्वकालिक मान्यता प्राप्त की।

सिन्धु सभ्यता के अंक

विगत शती के प्रारंभ में भारत की लुप्त सभ्यता की खोज हुई। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से 'सिंधु सभ्यता' (Indus Civilisation) की खोज हुई, तब हमें अपनी महान गौरवशाली विरासतों और उन्नत संस्कृति का भान हुआ।

सिंधु सभ्यता में करीब 2 हजार मोहरें मिली हैं, जिन पर वनस्पतियों, मानवों की आकृतियां उभरी हैं। साथ ही लिपि चिह्न भी अंकित हैं। हालांकि अभी तक इन लिपियों को पढ़ पाने में हम असमर्थ रहे हैं, लेकिन इन मुहरों पर पाई गई खड़ी लकीरों को यदि हम अंक संकेत मानें, तो यह कहा जा सकता है कि सिंधु सभ्यता में 1 से 13 तक की संख्याओं का चलन था जो दायीं ओर से बायीं ओर को लिखी जाती थीं। यथा :

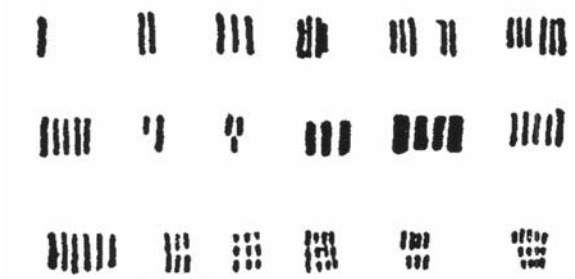

सिंधु सभ्यता के अंक संकेत

फिर भी सिंधु लिपि का हमें ज्ञान न होने के कारण उनकी अंक पद्धति की और विस्तृत विवेचना नहीं की जा सकती। लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता है कि अंक पद्धति का उन्मेष सिंधु संस्कृति में हो चुका था, विकास की अपनी जिस भी अवस्था में अंक पद्धति रही हो।

वैदिक अंक

ईसा पूर्व पंद्रह सौ वर्ष के आस-पास सिंधु सभ्यता लुप्त हो चुकी थी, मात्र उसके ध्वंसावशेष खोजे गए हैं। इसके बाद आता है वैदिक युग। वैदिक संस्कृति हमारी सांस्कृतिक थाती है तो वेद हमारी अतीत गाथा और महान विरासतों के गौरवशाली ग्रंथ और उपाख्यान।

चारों वेदों में ऋग्वेद सबसे पहला है (रचनाकाल 1200 ई.पू.), यद्यपि इसमें हमें अंक पद्धति के उन्मेष मिलते हैं जो सिंधु सभ्यता से काफी उन्नत हैं। लेकिन वैदिक युग में अंक संज्ञाओं की ही चर्चा मिलती है, अंकों की नहीं।

ऋग्वेद में एक (1), द्वि(2), त्रि (3), चतुः (4), पंच (5), षट् (6), सप्त (7), अष्ट (8), नव (9), दश (10), शत (100), सहस्र (1000), और अयुत (10000) तक की संज्ञाओं का उल्लेख है और ऋग्वेद में प्रयुक्त अयुत ही सबसे बड़ी संख्या है। अलबत्ता इन अंक संज्ञाओं की गुणक (मल्टिपल्स) इकाइयां उल्लिखित हैं। यथा एक स्थान पर 'षष्टिः सहस्र' (60,000) का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में 'शून्य' (0) का भी कोई उल्लेख नहीं है।

अलबत्ता यजुर्वेद में और बड़ी संख्याएं उल्लिखित हैं। इसमें अंक संज्ञाएं एक से लेकर 'अयुत' (10,000), तक तथा उससे आगे 'परार्ध' तक विस्तार पाती हैं। यथा :

एक (1), दश (10), शत (100), सहस्र (1000), अयुत (10000), नियुत (100000), प्रयुत (1000000), अर्बुद (10000000), न्यर्बुद (100000000), समुद्र (1000000000), मध्य (10000000000), अन्त्य (1000,000,000,00,), और परार्ध (1000,000,000,000)। वैदिक काल में दश गुणोत्तर पद्धति पनप चुकी थी जिसमें कि हर संख्या अपनी पिछली मे दस गुना बड़ी है। इस युग में वैदिक ऋषि शून्य (0) से अनभिज्ञ थे।

अशोक कालीन अंक

ईसा पूर्व की तीसरी सदी के मध्य में यही कोई चालीस वर्षों तक अशोक ने एक बड़े भारतीय भू-भाग पर शासन किया। उसके दर्जनों शिलालेख और स्तंभ लेख मिलते हैं, जो उसने अपने राज्य में जगह-जगह खुदवाये थे। ब्राह्मी लिपि में लिखित अशोक स्तंभों को जेम्स प्रिन्सेप ने 1837 में पढ़ पाने में सफलता अर्जित की। अशोक के लेखों में मात्र चार संख्याओं के संकेत देखने को मिलते हैं।

अशोक के शिला लेखों मे 'शून्य' का उल्लेख नहीं है।

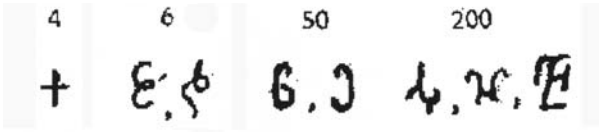

अशोक के स्तंभ लेखों के अंक संकेत

अशोकोत्तर अंक

अशोक के बाद महाराष्ट्र में सातवाहन राजे शासनारूढ़ हुए, जिन्होंने पूना के आस-पास की पहाड़ियों में बौद्ध भिक्षुओं और यात्रियों के लिए गुफाएं बनवायी थीं। इन गुफाओं में भी अनेक लेख मिले हैं। नानाघाट और नासिक गुफाओं में ब्राह्मी लिपि में अंक संकेत मिले हैं।

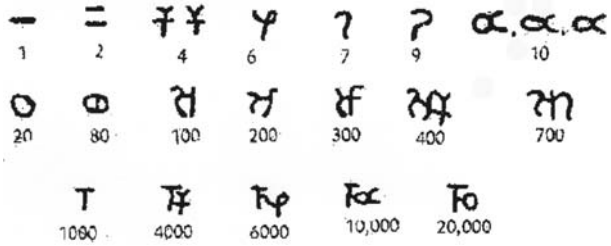

नानाघाट लेखों के अंक संकेत

नासिक गुफाओं के अंक संकेत

इन लेखों में 1 से 10 तक की संख्याओं के अंक संकेत मिलते हैं, जो लगभग समान हैं। 100 के संकेत को मात्राओं अथवा 1 से 9 तक के संकेतों से जोड़कर 200, 300, 500 के संकेत बनाए गए हैं। इसी प्रकार 1000 से आगे भी संकेत निर्मित हैं। शून्य का उल्लेख इन लेखों में नहीं मिलता।

अशोक के अभ्युदय के 150 वर्ष पूर्व खरोष्ठी लिपि अस्तित्व में आ चुकी थी, अतः अशोक के काल में उसका प्रचलन था। अशोक ने अपने राज्य की उस सीमा में, जहां इस लिपि का प्रचार-प्रसार था (उत्तर पश्चिमी भारत), कुछ लेख खरोष्ठी में भी खुदवाए। चौथी सदी के अंत तक यह लिपि परंपरा लुप्तप्राय हो गई लेकिन अगली तीन सदियों तक के लेखों में मध्य एशिया में इसका अस्तित्व बरकरार रहा।

अशोक के बाद शक, पार्थव और कुषाणों ने भी इस लिपि में लेख खुदवाए हैं। अशोक ने खरोष्ठी में जो लेख खुदवाए, उनमें मात्र चार अंकों (1, 2, 4 और 5) के संकेत हैं। अशोकोत्तर खरोष्ठी में अंकों की संख्याएं और विस्तार पाती हैं। अशोक के लेखों में चार खड़ी लकीरों से 4 को लिखा जाता था, बाद में इसे 'X' से लिखा जाने लगा और इसके पीछे (बायीं ओर) क्रमशः 1, 2, 3 लकीरें खींचकर 5, 6, 7 बनाये जाते थे।

खरोष्ठी के अंक संकेत

खरोष्ठी में 10 के अलग संकेत हैं, फिर 100 के लिए भी ऐसी ही व्यवस्था है। खरोष्ठी में भी गणना का आधार 10 ही है लेकिन इस काल में 'शून्य' की अवधारणा विकसित नहीं दिखाई देती।

आर्यभट और उनके बाद इस आलेख के आरंभ में ही हमने यह चर्चा की है कि पांचवीं शती के उद्भट विद्वान आर्यभट ने अपनी प्रख्यात कृति 'आर्यभटीयम्' (रचनाकाल 499 ई.) में अंक संज्ञाओं का उल्लेख किया है। और उनमें गणना की दशगुणोत्तर पद्धति प्रयुक्त हुई है।

आर्यभट के समकालीनों में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान है। आगे चलकर (12वीं शती) भास्कराचार्य या भास्कर-द्वितीय (1150 ई.) ने अपनी प्रख्यात कृति 'लीलावती' में उसे और विस्तार दिया। आर्यभट में एक से लेकर (10) तक ही अंक संज्ञाएं सीमित हैं लेकिन भास्कर उसे परार्ध (10^{17}) तक ले जाते हैं।

यथा :

एक	= 1
दस	= 10
शत	= 100
सहस्र	= 1000
अयुत	= 10000
नियुत	= 100000
प्रयुत	= 1000000
कोटि	= 10000000
अर्बुद	= 100000000
अब्ज	= 1000000000
खर्ब	= 10000000000
निखर्ब	= 100000000000
महापद्म	= 1000000000000
शंकु	= 10000000000000
जलधि	= 100000000000000
अन्त्य	= 1000000000000000
महप	= 10000000000000000
परार्ध	= 100000000000000000

प्राचीन भारत में अधिकांश गणित ग्रंथ पद्यमय हैं, इसलिए ये अंक संज्ञाएं प्रयुक्त होती थीं। इस पद्धति में 1 से 10 तक की संज्ञाओं के लिए एक-एक शब्द हुआ करते थे। 11 से 99 तक की संज्ञाएं इसी प्रकार व्यक्त की जाती थीं, पहले दहाई लिखी जाती थी फिर इकाई। बड़ी संख्याओं में (दो अंकों से अधिक) पहले बड़ी, फिर छोटी इकाई प्रयुक्त होती थी।

यथा,

19 = एकान्नविंशति (एक कम बीस=उन्नीस)

297 = त्रिहीन शतत्रय (तीन कम तीन सौ=दो सौ सत्तानवे)

आर्यभट (499ई.) से लेकर भास्कर (1150ई.) तक के काल में भले ही अंक संज्ञाएं रही हैं, पर यह ऐतिहासिक साक्ष्य है कि इस कालावधि में शून्य का आविष्कार हो चुका था लेकिन उसे व्यवहृत होने में अरसा लगा। अपने आविष्कार के बाद के 1000 वर्षों में शून्य प्रणाली लोकप्रिय हो सकी। 10वीं शती के बाद शून्य पर आधारित नई अंक प्रणाली सर्वत्र व्यवहार में आ चुकी थी और यह देश-काल की सीमाओं को पार करके अपनी कीर्ति विदेशों में भी फैला चुकी थी।

विगत शती के प्रारंभ में पेशावर के भक्षाली गांव में शारदा लिपि में भोज पत्र पर लिखी हुई एक पुरानी गणित की पुस्तक मिली है, जिसकी लिपि दशवीं शती की है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि उक्त पांडुलिपि (भक्षाली हस्तलिपि) तीसरी चौथी-शती की मूल कृति की प्रतिलिपि है। इस हस्तलिपि में 1 से 10 तक के अंक संकेत स्पष्टतया अंकित हैं, जिसमें शून्य ने बिन्दी का आकार ग्रहण किया है।

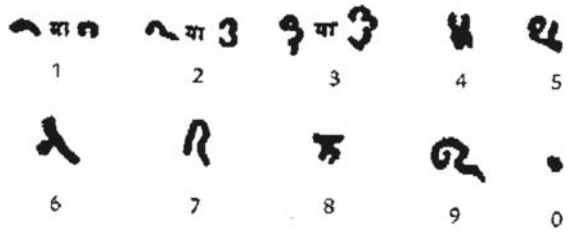

भक्षाली हस्तलिपि के अंक संकेत

इन साक्ष्यों का यही निष्कर्ष है कि शून्य प्रणाली का आविष्कार प्राचीन भारत में पहली शती में हो चुका था जिसे जनमानस की पद्धति बनने में कम से कम 10 शतियां व्यतीत हो गईं।

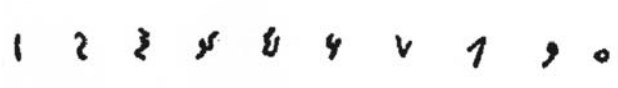

दसवीं शती की एक अरबी पुस्तक में गुबार (भारतीय) अंक

समाहार

अरबों को गणित ज्ञान (नई अंक विद्या) भारतीयों से मिला और यह विद्या अरबों के हाथों समूचे यूरोप में फैली-पनपी। कदाचित इसी नाते यूरोपीय इन अंकों को अरबी अंक कहते हैं लेकिन कई अरबी विद्वानों ने स्वयं भारतीय देन को स्वीकारा है और वे इसे सगर्व 'इल्म-ए हिंदसा' अर्थात हिंदुस्तान की विद्या कहते हैं।

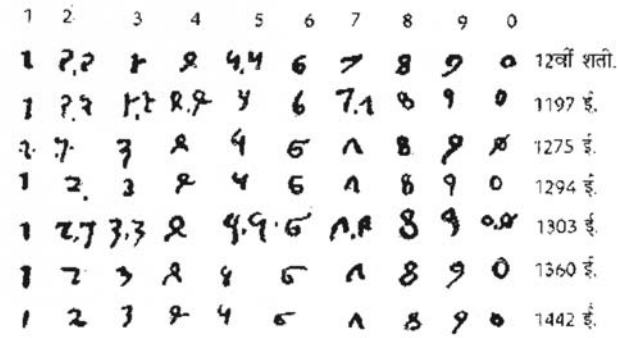

समूचे यूरोप में प्रसरित भारतीय अंक

15वीं शती तक समूचे यूरोप में भारतीय अंक फैल चुके थे। चूंकि यह प्रणाली अति विशुद्ध और नितांत वैज्ञानिक थी, इसी नाते यह अपनी पैठ बनाती चली गई और आज सर्व स्वीकृत अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली बन चुकी है।

अंग्रेजी लिखावट में जो अंक प्रयुक्त होते हैं, उनका उद्‌भव ब्राह्मी लिपि से हुआ है। आज यह प्रणाली विश्व की मान्य एवं सार्वकालिक प्रणाली बन चुकी है। इस नाते इन्हें 'भारतीय अंतर्राष्ट्रीय अंक' (Indian International Numerals) नाम से

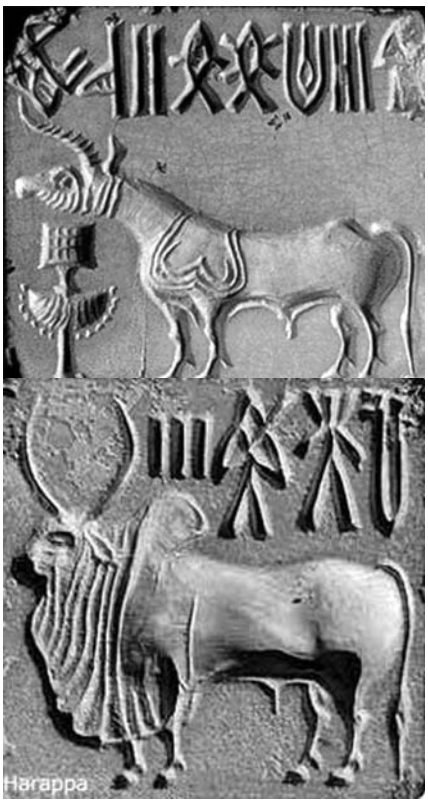

मान्यता प्राप्त है।

यह अलग बात है कि इस प्रणाली के मूलाधार 'शून्य' के खोजी और उसके काल का हमें ज्ञान नहीं है। शून्य की महत्ता के बारे में प्रो. हैल्सटेड लिखते हैं - 'शून्य के आविष्कार के महत्व की कभी भी अतिशयोक्ति नहीं की जा सकती। निरर्थक शून्य को केवल स्थान, संज्ञा, आकृति एवं संकेत ही नहीं बल्कि एक उपयोगी शक्ति प्रदान करना हिंदू जाति की, जहां से इसकी उत्पत्ति हुई है, एक विशेषता है। गणित संबंधी कोई भी आविष्कार ज्ञान एवं शक्ति को आगे बढ़ाने में इतना प्रबल नहीं सिद्ध हुआ।'

आज हिंदू संकेत लिपि सर्वमान्य है। लेकिन हम शून्य के आविष्कारक को नहीं जानते। इस बारे में अलबेरूनी की भांति प्रो. मैकडानल लिखते हैं, 'यह बहुत बड़ी बात है कि भारतवासियों ने गणित के अंकों का आविष्कार किया, जिनका प्रयोग आज संसार में हो रहा है। यह खेद का विषय है कि हम उन पद्धतियों और परीक्षणों के बारे में कुछ भी नहीं जानते, जिनके द्वारा गणित एवं ज्योतिष का इतना विस्तृत अध्ययन हो सका।

sdprasad24oct@yahoo.com

❑❑❑

आर्यभट की आधुनिक खगोल वैज्ञानिक दृष्टि

देवेंद्र मेवांड़ी

आर्यभट प्राचीन भारत के महान गणितज्ञ तथा ज्योतिषी (खगोल विज्ञानी) थे जिन्होंने अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से आधुनिक भारतीय खगोल विज्ञान की नींव रखी। आर्यभट ने 'आर्यभटीय' ग्रंथ की रचना की जो गणित तथा ज्योतिष का श्रेष्ठ और प्रामाणिक ग्रंथ माना गया। इसकी प्रामाणिकता का ही परिणाम है कि 'आर्यभटीय' को सोलहवीं सदी के अंत तक गणित व खगोल विज्ञान के प्रमुख ग्रंथ के रूप में पढ़ा और पढ़ाया जाता रहा। आर्यभट के शिष्यों और अनुयायियों की लंबी परंपरा रही। अनेक विद्वानों ने सदियों तक इस ग्रंथ की टीका की। आर्यभट के परम अनुयायी भास्कर प्रथम उनके इस ग्रंथ को तप से प्राप्त किया हुआ बताते हैं। वे अपने लघु भास्करीय ग्रंथ में लिखते हैं: 'उन आर्यभट की जय हो जिनका ज्योतिष शास्त्र बहुत काल तक सुदूर देशों में स्फुट फल देता है और जिनका सुंदर यशसागर के पार तक पहुच गया है। आर्यभट के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रहों की गति जानने में समर्थ नहीं है। अन्य लोग गहन अंधकार के समुद्र में घूम रहे हैं।' असल में, प्रचलित सिद्धांत बहुत पुराने पड़ गए थे और उनसे सही गणनाएं करना संभव नहीं हो पा रहा था। उन दिनों पांच सिद्धांत प्रचलित थे: पैतामह सिद्धांत, वशिष्ठ सिद्धांत, पौलिशसिद्धांत, रोमक सिद्धांत तथा सौर सिद्धांत। इन पांचों सिद्धांतों से ग्रहों की गति व ग्रहण आदि की सही गणना करना संभव नहीं हो पा रहा था। आर्यभट के 'आर्यभटीय' ग्रंथ अर्थात् 'आर्यसिद्धांत' से यह संभव हो गया। इसीलिए आर्यभट के लिए यह भी कहा गया कि गणनाओं में जो दृष्टि वैशम्य था उसे दूर करने के लिए कलियुग में स्वयं सूर्य कुसुमपुर में आर्यभट के नाम से खगोलविद तथा कुलपति के रूप में अवतरित हुए। इस प्रकार उस काल में आर्यभट को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था और उनकी ख्याति चतुर्दिक फैली।

अनुमान है कि आर्यभट का जन्म शक संवत् 398 अर्थात् 476 ईस्वी में मगध की राजधानी के कुसुमपुर नामक स्थान में हुआ जो तब पाटलिपुत्र और आज बिहार राज्य में पटना कहलाता है। मौर्यकाल से ही पाटलिपुत्र एक प्रसिद्ध स्थान था। अपने जन्म स्थान के बारे में स्वयं आर्यभट ने लिखा है:

'ब्रह्मकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरूकोणभगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम्।।' (गणितपाद, 1)

अर्थात् ब्रह्मा, पृथ्वी, चंद्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि तथा नक्षत्रों को नमस्कार करके आर्यभट इस कुसुमपुर (अर्थात् पाटलिपुत्र नगर में) अतिशय पूजित ज्ञान का वर्णन करता है।

इस आधार पर आर्यभट का जन्म स्थान कुसुमपुर अर्थात् पाटलिपुत्र (पटना) माना जाता है। आर्यभट ने अपने जन्म काल का संकेत भी 'आर्यभटीय' ग्रंथ के इस श्लोक में दिया है:

शष्ट्यब्दानां शष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्य युगपादाः।
यधिका विंशार्तरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः।।

अर्थात्, साठ वर्षों की साथ अवधियां तथा युगों के तीन पाद व्यतीत हो गए थे जब मेरे जन्म के पश्चात् 23 वर्ष हो चुके थे।

इसका अर्थ है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर तीन युग व्यतीत हो जाने पर तथा कलियुग के 3600 वर्ष व्यतीत होने पर उनकी आयु 23 वर्ष थी। भारतीय ज्योतिष के अनुसार शक संवत् का प्रारंभ 3179 कलियुग से होता है। आर्यभट जब 23 वर्ष के थे तो कलियुग के 3600 वर्ष बीत चुके थे। अर्थात् वे 3600-3179= 421 शक् में 23 वर्ष के थे। इसका मतलब उनका जन्म 421-23= 398 शक संवत् में हुआ। ईस्वी सन् के अनुसार यह 476 ई. होता है।

आर्यभट के जन्म के समय गुप्तवंश के सम्राट बुधगुप्त का शासन चल रहा था। तब कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) विद्या अर्जित करने का महान केन्द्र था। सम्राट कुमार गुप्त ने

नालंदा में विश्वविद्यालय की स्थापना की थी जहां दूर-दूर से विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते थे। नालंदा विश्वविद्यालय की एक विशेषता यह भी थी कि वहां वेधशाला की भी स्थापना की गई थी। कई विद्वानों का मत है कि संभवतः आर्यभट ने भी नालंदा में शिक्षा प्राप्त की। गुप्त सम्राट इस विश्वविद्यालय को दान देते थे। विद्वानों को दान में ग्राम दिए जाते थे जिन्हें अग्रहार ग्राम कहा जाता था। विद्वत्जन इन ग्रामों से प्राप्त आमदनी का उपभोग करते और विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। संभव है, आर्यभट ने भी इस प्रकार शिक्षा प्राप्त की हो और विद्यार्थियों को शिक्षा दी हो। आर्यभट को कुलप या कुलपति भी कहा गया है इसलिए यह भी संभव है कि वे नालंदा विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे हों।

आर्यभट रचित ग्रंथ 'आर्यभटीय' में गणित तथा ज्योतिषशास्त्र (खगोल विज्ञान) के विविध नियमों का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ के चार खंड या पाद हैंः दशगीतिका, गणितपाद, कालक्रियापाद तथा गोलपाद। प्रथम खंड 'दशगीतिका' के पहले श्लोक में वे वंदना करते हुए कहते हैंः 'जो ब्रह्मा कारण रूप से एक होते हुए भी कार्य रूप से अनेक है, जो सत्य देवता परम ब्रह्म अर्थात् जगत का मूल कारण है उसको मन, वाणी और कर्म से नमस्कार करके आर्यभट गणित, कालक्रिया और गोल इन तीनों का वर्णन करता है। इस खंड में अक्षरों से बड़ी संख्याएं लिखने की विधि, ब्रह्मा के एक दिन के परिणाम, वर्तमान दिन के बीते समय, आकाशीय पिंडों की गति (भगण), उनके मंद व शीध्र वृत्तों की परिधियों, उनकी कक्षाओं के झुकाव और 24 अर्धज्याओं के मान दिए गए हैं।

उदाहरण के लिए आर्यभट ने अक्षरों के लिए संख्याएं इस प्रकार निर्धारित की हैंः

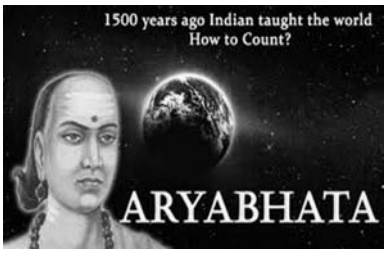

अ = 1
इ = 100
उ = 10000
ऋ = 1000000
ऌ = 100000000
ए = 10000000000
ऐ = 1000000000000
ओ = 100000000000000
ऐ = 1000000000000000

क = 1, ख = 2, ग = 3, घ = 4, ङ.= 5, च = 6, छ = 7, ज = 8,
झ = 9, ञ = 10, ट = 11, ठ = 12, ड = 13, ढ = 14, ण = 15,
त = 16, थ = 17, द = 18, ध = 19, न = 20, प = 21, फ = 22,
ब = 23, भ = 24, म = 25, य = 30, र = 40, ल = 50, व = 60,
भा = 70, श = 80, स = 90, ह = 100

आर्यभट ने संख्याओं को संक्षेप में बताने के लिए इस विधि का प्रयोग किया ताकि ग्रहों की गति को थोड़े ही श्लोकों में बता सकें जैसेः

काहो मनवो ढ मनु युग श्ख गतास्ते च मनु युग छ् ना च।
कल्पादेर्युगपादा ग च गुरूदिवसाच्च भारतात्पूर्वम्।।

अर्थात्, ब्रहमा के एक दिन (कल्प) में ढ = 14 मनु होते हैं। एक मन्वंतर में श = 70 + ख = 2 यानि 72 युग होते हैं। कल्प के प्रारंभ से महाभारत के अंतिम दिन बृहस्पतिवार तक च = 6 मनु, छ् ना = 27 युग तथा ग = 3 युग पाद व्यतीत हो चुके हैं। आर्यभट के अनुसार ब्रह्मा के एक दिन अर्थात् एक कल्प में 14 मनु द्व 72 मन्वंतर अर्थात् 1008 युग होते हैं।

गणितपाद में गणित के साधारण नियमों, क्षेत्रफल व धनफल प्राप्त करने की विधियां, वृत्त में परिधि व व्यास के अनुपात आदि के बारे में बताया गया है। उदाहरण के लिए गणितपाद के दसवें श्लोक या आर्या में वृत्त की परिधि का आसन्न मान दिया गया हैः

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाशष्टिस्तथा सहस्त्राणाम्।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः।।10।।

अर्थात् सौ से चार अधिक (104) का आठ गुना (832) और बासठ सहस्त्र (62832) उस वृत्त की परिधि का आसन्न मान है जिसका व्यास 20,000 है।

कालक्रियापाद और गोलपाद में ज्योतिष (खगोल) के ज्ञान का वर्णन किया गया है। उन्होंने अपने जन्म के समय का उल्लेख क्रियाकालपाद की पूर्व वर्णित दसवीं आर्या में ही किया है कि साठ वर्षों की साठ अवधियां तथा युगों के तीन पाद व्यतीत हो गए जब आर्यभट के जन्म के पश्चात् 23 वर्ष हो चुके थे। कालक्रियापाद में उन्होंने यह भी बताया है कि युग, वर्ष, मास, दिवस, सभी का प्रारंभ एक ही समय चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से हुआ। काल को उन्होंने अनादि और अनंत कहा है जिसका अनुमान आकाश में ग्रहों के गमन से किया जा सकता है। गोलपाद में ग्रहों की स्थिति या और गतियों का वर्णन किया गया है। एक आर्या में उन्होंने लिखा हैः पृथ्वी, चंद्रमा, बुध, शुक्र आदि ग्रह (चंद्रमा उपग्रह है) एवं तारापुंजों (वे अपने प्रकाश से प्रकाशित होते हैं) के गोला के आधे भाग अपनी छायाओं के कारण अंधकारमय होते हैं। जो आधे भाग सूर्य के सम्मुख होते हैं वे अपने आकार के अनुसार प्रकाशित होते हैं (गोलपाद, 5)। आज हम जानते हैं कि सूर्य से ग्रहों का

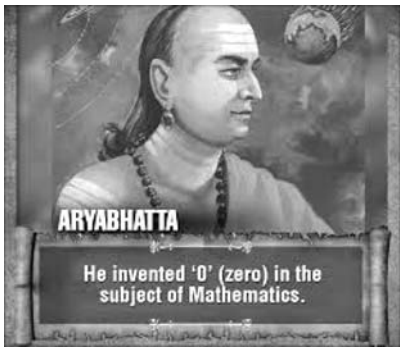

केवल आधा भाग ही प्रकाशित नहीं होता लेकिन अंतर काफी कम होता है। तब न दूरबीनें थीं, न अन्य कोई साधन फिर भी आर्यभट ने ये अनुमान लगाए।

आर्यभट ने आज से लगभग 1500 वर्ष पहले यह पता लगा लिया था कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। 'आर्यभटीय' में गोलपाद की नवीं आर्या में उन्होंने इसका रहस्योद्घाटन किया:

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम।।9।।

अर्थात्, जैसे नाव में बैठा हुआ कोई मनुष्य जब पूर्व दिशा में जाता है तो किनारे की स्थिर वस्तुओं को उल्टी (विलोम) दिशा में जाता हुआ अनुभव करता है। उसी तरह अचल तारागण लंका (शून्य भोगौलिक अक्षांश की स्थिति) में पश्चिम की ओर जाते प्रतीत होते हैं। 1863 में हेंड्रिक केर्न नामक विद्वान ने वाराहमिहिर रचित ग्रंथ 'बृहत्संहिता' की भट्ट उत्पल कृत टीका में आर्यभटीय की उक्त आर्या का उद्धरण पढ़ कर घोषणा की थी कि आर्यभट इस देश में प्रथम तथा संभवतः अकेले खगोलशास्त्री थे जिन्होंने पृथ्वी के अपने ही अक्ष पर घूमने का विचार व्यक्त किया। आर्यभट का यह विचार स्थापित मान्यताओं के खिलाफ था इसलिए ज्योतिषशास्त्रियों और विद्वानों ने इसका समर्थन नहीं किया। वे पृथ्वी को स्थिर मानने के विचार का ही प्रचार करते रहे। उस काल के विद्वान ज्योतिषियों ने अपने ग्रंथों में प्राचीन मत का ही समर्थन किया। इसलिए आर्यभट का यह वैज्ञानिक विचार सदियों तक दबाया जाता रहा। पश्चिम में हजार साल बाद कोपर्निकस इसी नतीजे पर पहुंचा। 1543 में उसकी पुस्तक छपने के बाद उसके विचारों को भी धार्मिक मान्यताओं के विरूद्ध माना गया। लेकिन, सच का वह सिद्धांत टिका रहा और अंततः उसे वैज्ञानिक सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया। भारतीय ज्योतिषशास्त्रियों ने महान खगोलशास्त्री आर्यभट का साथ नहीं दिया। गोलपाद की सैंतीसवीं आर्या में आर्याभट ने स्पष्ट वर्णन किया है कि सूर्यग्रहण तथा चंद्रग्रहण चंद्रमा तथा पृथ्वी की छाया के कारण होते हैं:

चंद्रोजलमर्कोग्निर्मृद् भूच्छायानि या तमस्तद्धि।
छादयति शशी सूर्यं शशिनं महती च भूच्छाया।।37।।

अर्थात् चंद्रमा जल का बना है, सूर्य अग्नि का बना है, पृथ्वी मिट्टी की बनी है और छाया अंधकारमय है। सूर्य को चंद्रमा ढक लेता है (सूर्यग्रहण) और पृथ्वी की बड़ी छाया चंद्रमा को ढक लेती है (चंद्रग्रहण)।

आर्यभट ने गोलपाद की अठतीसवीं आर्या में लिखा है: 'जब चंद्रमा स्फुट चांद्रमास के अंत में पात के समीप होता है तब वह सूर्य में प्रवेश करता है। तब अधिककालिक अथवा अल्पकालिक सूर्यग्रहण का मध्य होता है। इसी प्रकार पक्ष के अंत में जब चंद्रमा पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है तब चंद्रग्रहण होता है।

उस काल में विभिन्न ज्योतिषी यह मानते थे कि सूर्यग्रहण तथा चंद्रग्रहण राहु के कारण होते हैं। आर्यभट का यह कहना कि ग्रहण चंद्रमा और पृथ्वी की छाया के कारण होते हैं, एक क्रांतिकारी विचार था। परंपरावादी ज्योतिषी इस विचार का भी विरोध करते रहे। इस अंधविश्वास की जड़े आज भी समाज में फैली हुई हैं जबकि आर्यभट ने डेढ़ हजार वर्ष से भी पहले ग्रहणों की सच्चाई सामने रख दी थी।

'गोलपाद' की अंतिम आर्याओं मं आर्यभट कहते हैं कि जो यथार्थ ज्ञान का उत्तम रत्न यथार्थ ज्ञान और मिथ्या ज्ञान के समुद्र में डूबा हुआ था उसे मैंने देवता के प्रसाद से अपनी बुद्धिरूपी नाव की सहायता से निकाला है। उनके इस यथार्थ ज्ञान का खगोलविज्ञान तथा गणित मं अप्रतिम योगदान है। 'ज्या' (साइन्स) के निकटतम मान 3.1416 की गणना, अक्षर अंक शद्धति, काल विभाजन, युग पद्धति, खगोलीय स्थिरांक, ग्रह स्थिति की गणना विधि आदि आर्यभट की प्रमुख देन हैं। गणित, बीज गणित और त्रिकोणमिति में भी उनके ज्ञान और गवेषणाओं का सम्मान किया गया।

आर्यभट अपने युग के महान गणितज्ञ और खगोल वैज्ञानिक थे। परंपरापोशक विद्वानों का समर्थन न मिलने के बावजूद आर्य सिद्धांत जीवित रहा और अनेक ज्योतिषी पंचांग बनाने के लिए आर्यभट की गणनाओं का निरंतर उपयोग करते रहे। उनके द्वारा रचित 'आर्यभटीय' गणित और ज्योतिष शास्त्र का वैज्ञानिक ग्रंथ है। आर्यभट का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने भारतीय खगोल विज्ञान को वैज्ञानिक दृष्टि दी और वैज्ञानिक अनुसंधान की नींव डाली।

dmewari@yahoo.com
❑❑❑

पहले समय में अधिकांश कैलेंडर्स चंद्र चक्र पर आधारित हुआ करते थे। इन कैलेंडर्स में एक वर्ष 12 चंद्र चक्रों से बना होता था, ये महीने कहलाते थे। चूंकि 12 चंद्र चक्र 1 सूर्य वर्ष के बराबर नहीं होते हैं अतः एक अतिरिक्त महीना समय-समय पर जोड़ा जाता था। मिस्र के लोगों ने पहला ऐसा कैलेंडर निकाला जिसमें एक वर्ष 365 दिनों पर आधारित था। इसे सूर्य वर्ष कहा जाता था। इसमें उन्होंने महीनों को चंद्र चक्र पर आधारित न करके पूर्ण रूप से अलग इकाई के रूप में रखा। एक वर्ष को 12 महीनों में विभाजित किया गया जिसमें प्रत्येक में 30 दिन होते थे। इस प्रकार कुल 360 दिन होते थे जिसमें 5 अतिरिक्त दिनों को जोड़कर दिनों की कुल संख्या 1 की जाती थी। 365 दिनों का कैलेंडर मिस्रवासियों द्वारा 4236 ई.पू. अपनाया गया था।

कालान्तर में यह पाया गया कि वास्तव में एक वर्ष में 365 1/4 दिन होते हैं। एक दिन का यह अतिरिक्त तिहाई भाग ही ऋतुओं में परिवर्तन का कारण माना जाता था। 238 ई.पू. में Pharaoh Ptolemy III जिन्हें इतिहास में Euergetes कहा जाता था ने इसमें सुधार करके हर चौथे वर्ष में कैलेंडर में एक दिन को जोड़ दिया था। दूसरा कैलेंडर था मेक्सिको की माया का कैलेंडर जो सूर्य कैलेंडर था और इसे 580 ई.पू. में खोजा गया था। यह अमेरिका में तैयार किया गया पहला ऋतु एवं कृषि आधारित कैलेंडर था। यह कैलेंडर मिस्र के कैलेंडर से अलग था। इसमें एक सूर्य वर्ष में 18 महीने होते थे और प्रत्येक महीना 20 दिन का होता था। इसके अंत में पांच दिनों का अनलकी समय जोड़ा जाता था जिससे यह वर्ष 365 दिनों का बन जाता था। प्रत्येक महीने का अपना नाम होता था और दिनों को 0 से लेकर 19 तक संख्या दी जाती थी। इस कैलेंडर के साथ-साथ एक धार्मिक कैलेंडर भी निकाला गया जिसे tzolkin कैलेंडर कहा गया। इसमें 13 महीने होते थे। प्रत्येक महीना 20 दिनों का होता था। प्रत्येक दिन का एक नाम होता था जो 1 से लेकर 13 तक की संख्याओं के साथ जोड़ा जाता था। tzolkin कैलेंडर में कुल 260 दिन होते थे।

जूलियन कैलेंडर

पहले के समय में रोम के लोगों ने एक चंद्र कैलेंडर की शुरुआत की जो काफी जटिल था और इसमें बहुत अस्पष्टता थी। मूलतः यह केवल 10 महीने लंबा था। (मार्च से दिसंबर तक) लेकिन जल्दी ही इसे 12 महीनों का बना दिया गया और इसमें जनवरी और फरवरी महीनों को जोड़ दिया गया। एक तेरहवां महीना जिसे Merce donius कहा गया कभी कभी इसमें डाल दिया जाता था। रोमन कैलेंडर के 12 महीनों में से सात महीने 29 दिनों के होते थे और चार महीने 31 दिनों के होते हैं। फरवरी का महीना 28 दिनों का हुआ करता था। इस प्रकार वर्ष में कुल 355 दिन होते थे। रोमन कैलेंडर वर्ष में 12 महीनों के नाम इस प्रकार होते थे :

महीने का नाम	*नाम का मूल स्थान*
मार्शियस	मार्स का महीना
एप्रिलिस	शुरुआती महीना (नई फसल)
माइयस	सर्वोच्च भगवान जुपिटर का महीना
जूनियस	जूनी का महीना
क्विनिविस	पांचवां महीना
सेक्सटिलिस	छटवां महीना
सेप्टेम्बर	सातवां महीना

सूर्य कैलेंडर

ऑक्टोवर	आठवां महीना
नोवेम्बर	नवां महीना
डिसेम्बर	दसवां महीना
जैनुऐरियस	भगवान जेनस का महीना
फेब्रुऐरियस फेबुआ	शुद्धता की दावत।

धार्मिक कैलेंडर

जूलियन कैलेंडर

जूलियन कैलेंडर करीब 11 मिनट लंबा माना गया जो कुछ शताब्दियों के बाद कई दिनों के अंतराल में बदल जाता था।
1502 में कैलेंडर में एक अन्य सुधार किया गया। जिसे पोप ग्रेगोरी XIII ने निर्धारित किया। इसमें कैलेंडर को ऋतुओं के अनुसार एडजेस्ट किया गया। इसके लिए गणितज्ञ क्रिस्टोफर क्लोवियस और खगोलविद–भौतिकविद Aloysius Lilius की सेवाएं ली गईं। उन्होंने पाया कि जूलियन कैलेंडर की अतिरिक्त लंबाई की वजह से जो गल्तियाँ हो गई थीं उनकी कुल संख्या 10 दिन थी। अतः वर्ष को सही करने के लिए उन्होंने जूलियन कैलेंडर में से 10 दिनों को कम कर दिया और 4 अक्टूबर 1582 को 15 अक्टूबर 1582 माना जाने लगा।

153 ई.पू में जनवरी महीने को वर्ष का पहला महीना माना गया और मार्शियस (मार्च) का तीसरा। जूलियस सीजर ने 47 ई.पू. में पहली बार इस कैलेंडर में सुधार करने की चेष्टा की। सीजर ने रोमन कैलेंडर के लिए सूर्य वर्ष को मान्यता दी। उन्होंने इसे 365 दिनों का माना और 6 घंटों का एक चौथाई दिन अतिरिक्त माना। यह चौथाई दिन प्रत्येक चार वर्षों में पूरे एक दिन के बराबर हो जाता था। जिससे वर्ष के कुल दिनों की संख्या 366 होती थी और इस वर्ष को 'लीप ईयर' कहा जाता था।
046 ई.पू. में पुराने और नए कैलेंडरों के बीच की दूरी को मिटा दिया गया। 45 ई.पू. में सबसे पहले संशोधित कैलेंडर का प्रयोग किया था। जनवरी अभी भी पहला महीना माना गया। रोमन सीनेट ने क्विन्टिलिस महीने का नाम बदलकर जूलियस (हमारा जुलाई) रख दिया। जूलियस सीजर के सम्मान में था। इस नए कैलेंडर का नाम जूलियन कैलेंडर रखा गया। बाद में रोमन सीनेट ने सेक्सटिलिस महीने का नाम बदल कर ऑगस्टस (ऑगस्ट) रख दिया जो राजा ऑगस्टस के सम्मान में था।

सात दिनों का सप्ताह

321 ई. में सम्राट कन्स्टैंटाइन ने सबसे पहले सात दिनों के सप्ताह की शुरुआत की थी। सप्ताह का पहला दिन संडे होता था और इसे क्रिश्चियन लोगों के लिए पूजा का दिन माना गया। यद्यपि इससे लोगों को काफी सुविधा हुई लेकिन इसमें भी कुछ खामियाँ रह गईं। जो अभी तक मौजूद हैं। जूलियन और मिस्र दोनों कैलेंडर्स का स्थाईकरण हो चुका है अर्थात प्रत्येक वर्ष दूसरे अन्य वर्षों की तरह समान होता है। लेकिन सम्राट कन्स्टैंटाइन के सुधारों के आने के बाद जूलियन कैलेंडर में थोड़ा-थोड़ा शिफ्ट होने लगा। चूंकि इसमें सात दिनों के सप्ताह की कुल संख्या 52 है अतः कुल मिलाकर 364 दिन ही होते हैं जो कि वर्ष के दिनों की कुल संख्या से 1 कम है जबकि लीप वर्ष से यह संख्या दो कम है।

ग्रेगोरियन कैलेंडर

एक सूर्य वर्ष की वास्तविक लंबाई है 365 1/4 दिनों में थोड़ी कम। यह है 365.242199 दिन या 365 दिन पांच घंटे, 40 मिनट और 46 सेकेंड। इसलिए जूलियन कैलेंडर करीब 11 मिनट लंबा माना गया जो कुछ शताब्दियों के बाद कई दिनों के अंतराल में बदल जाता था।
1502 में कैलेंडर में एक अन्य सुधार किया गया। जिसे पोप ग्रेगोरी XIII ने निर्धारित किया। इसमें कैलेंडर को ऋतुओं के अनुसार एडजेस्ट किया गया। इसके लिए गणितज्ञ क्रिस्टोफर क्लोवियस और खगोलविद-भौतिकविद Aloysius Lilius की सेवाएं ली गईं। उन्होंने पाया कि जूलियन कैलेंडर की अतिरिक्त लंबाई की वजह से जो गल्तियाँ हो गई थीं उनकी कुल संख्या 10 दिन थी। अतः वर्ष को सही करने के लिए उन्होंने जूलियन कैलेंडर में से 10 दिनों को कम कर दिया और 4 अक्टूबर 1582 को 15 अक्टूबर 1582 माना जाने लगा। इन 10 दिनों के नुकसान से कुछ भ्रम अवश्य हुआ लेकिन बाद में इसी ग्रेगोरियन कैलेंडर को ही काम में लिया जाने लगा।

सभी रोमन कैथोलिक देशों ने ग्रेगोरियन सुधारों को मान लिया लेकिन अंग्रेजों ने इसे 1752 तक स्वीकार नहीं किया था। जापान ने इसे 1873 में, चीन ने 1912 में, ग्रीस ने 1924 में और तुर्की ने 1927 में इसे अपनाया।

प्रयोग में लाए जाने वाले अन्य कैलेंडर्स

वर्तमान समय में ग्रेगोरियन कैलेंडर ही अकेला कैलेंडर नहीं हैं जिसे प्रयोग किया जाता है, बल्कि धार्मिक कार्यों के लिए ज्यूस ने हिब्रू कैलेंडर की शुरुआत की जो चंद्र चक्रों पर आधारित है। इसमें 12 महीने होते हैं जो 29 और 30 दिनों को क्रम में होते हैं। 29 दिनों का एक अतिरिक्त महीना प्रति 19 वर्षों के एक चक्र में सात बार जोड़ा जाता है। जब भी ऐसा होता है 29 दिनों के किसी एक महीने में एक अतिरिक्त दिन जुड़ जाता है। यह वर्ष शरद ऋतु में शुरु होता है।

दूसरा महत्वपूर्ण इस्लामिक या मुस्लिम कैलेंडर है। यह भी चंद्र चक्रों पर आधारित है। इसमें 354 दिन और 12 महीने होते हैं जिनमें से आधे 29 दिनों के है और आधे 30 दिनों के। एक चक्र के 30 वर्षों के बाद और प्रत्येक चक्र में 11 बार एक अतिरिक्त दिन वर्ष के अंत में जुड़ता जाता है। मुस्लिम कैलेंडर की शुरुआत हजीरा वर्ष के पहले दिन से होती है जहां से मोहम्मद साहब का मदीना यात्रा संपन्न हुई थी। यह तारीख थी 15 जुलाई 622 जो कि क्रिश्चियन काल में आती थी।

यद्यपि ग्रेगोरियन कैलेंडर चीन का अधिकारिक कैलेंडर है फिर भी चीनी नया वर्ष अभी भी पुराने चीनी चंद्र कैलेंडर से ही लगाया जाता है। इस चंद्र वर्ष के 12 महीनों के नाम 13 पशुओं के नाम पर होते हैं जो चीनी राशियां मानी जाती हैं जैसे चूहा, बैल, शेर, खरगोश, सांप, घोड़ा, भेड़, बंदर, कुत्ता, सुअर, सपक्ष सर्प, मुर्गा।

कैलेंडर में आधुनिक सुधार

ग्रेगोरियन कैलेंडर ने लोगों की सेवा करीब चार शताब्दियों तक करी। फिर भी कुछ लोगों ने सोचा कि ऐसे सुधार किए जाएं जो ऋतुओं के अनुसार कैलेंडर में स्थिरता लाएं।

1834 में Abbe Marco Mastrofini ने एक योजना लाई जिसमें प्रत्येक वर्ष समान होगा और खोई स्थिरता वापस लाई जाएगी। इस कैलेंडर में 364 दिन थे। 364 एक ऐसी संख्या है जो कई तरीकों से विस्थापित की जा सकती है। 365 वां दिन और लीप वर्ष का 366 वां दिन वर्ष के अतिरिक्त दिनों के रूप में डाले गए। प्रत्येक वर्ष रविवार, जनवरी 1 से शुरु होगा। Ibbe का यह आइडिया इतना सरल था कि अधिकांश आधुनिक कैलेंडरों के सुधार कर्ताओं ने इसे अपने प्रस्ताव का आधार बना लिया। ये कैलेंडर सुधार तब तक चलते रहे जब तक लीग ऑफ नेशन्स ने 1923 में इसके बारे में प्रश्न नहीं पूछा। एक प्रस्ताव यह आया कि विश्व कैलेंडर को आसानी से कटने वाले नंबर 12 पर आधारित होना चाहिए जो कि एक अच्छा विचार था। इस कैलेंडर में वर्ष का प्रत्येक चौथाई भाग अर्थात 91 दिन या 13 सप्ताह या तीन महीने एक ऋतु के बराबर माने जाते थे। इस कैलेंडर में प्रत्येक वर्ष प्रत्येक अन्य वर्ष के बराबर होता था। उदाहरण के लिए वर्ष का पहला दिन एक रविवार को पड़ता था और क्रिस्मस का दिन यानी 25 दिसंबर के बाद और पहला जनवरी के पहले डाला जाता था। लीप वर्ष में 366 वां दिन 30 जून और पहली जुलाई के बीच डाला जाता था।

कैलेंडर में वर्ष का प्रत्येक चौथाई भाग अर्थात 91 दिन या 13 सप्ताह या तीन महीने एक ऋतु के बराबर माने जाते थे। इस कैलेंडर में प्रत्येक वर्ष प्रत्येक अन्य वर्ष के बराबर होता था। उदाहरण के लिए वर्ष का पहला दिन एक रविवार को पड़ता था और क्रिस्मस का दिन यानी 25 दिसंबर के बाद और पहला जनवरी के पहले डाला जाता था।

जार्जियन कैलेंडर

चायनीज कैलेंडर

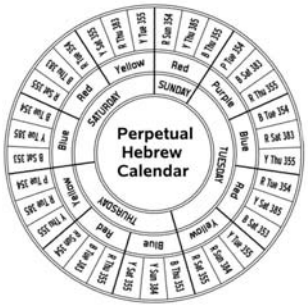

हिब्रू कैलेंडर

s17.chaturvedi@gmail.com

❑❑❑

ब्रह्माण्ड की तेरह महत्वपूर्ण संख्याएँ

आशीष श्रीवास्तव

दैनिक जीवन में कुछ संख्याएं अत्यधिक महत्वपूर्ण होती हैं जिनका उपयोग हम प्रतिदिन करते हैं जैसे फोन नम्बर, आधार कार्ड संख्या, एटीएम पासवर्ड आदि। आपने कभी सोचा है कि कुछ गिनतियाँ ऐसी भी होंगी जो हमारे ब्रह्मांड से बावस्ता हैं। उनका ब्रह्मांड से गहरा संबंध है। ये संख्याएं हमारे ब्रह्मांड को पारिभाषित करती हैं। हमारे अस्तित्व को संभव बनाती है और ब्रह्मांड के अंत को भी तय करती है।

सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक

यह वर्ष 2014 एक महत्वपूर्ण वर्ष ना हो लेकिन 1665 इस वर्ष से बहुत बुरा था, विशेषत: लंदन वासियों के लिए। लंदन में बुबोनिक प्लेग फैला हुआ था, उस समय शहर से बाहर जाने के अतिरिक्त इस महामारी से बचने का कोई अन्य उपाय या औषधि ज्ञात नहीं थी। बादशाह चार्लस् द्वितीय (King Charles II) ने अपनी राजधानी लंदन से आक्सफोर्ड स्थानांतरित कर दी थी और कैंब्रिज विश्वविद्यालय बंद कर दिया गया था। कैंब्रिज विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी ने अपने गृहनगर वूल्सथोर्पे (Woolsthorpe) जाने का निश्चय किया और अपने अगले 18 महीने आधुनिक विज्ञान के लिये नये दरवाजे खोलने में बिताये, इस विद्यार्थी का नाम था आइजैक न्यूटन।

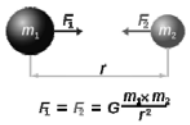

हम ऐसे तकनीकी युग में रह रहे है जिसमें संख्यात्मक(परिमाणात्मक) अनुमान नहीं लगाये जा सके तो जीना दूभर हो जाये और परिमाणात्मक अनुमान लगाने में शायद सबसे पहली सफलता न्यूटन के सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत(Universal Gravitation) से मिली थी। उनकी अवधारणा के अनुसार दो पिंडों में मध्य का गुरुत्वीय आकर्षण उनके द्रव्यमान के गुणनफल के आनुपातिक तथा उनके मध्य की दूरी के वर्ग के विलोमानुपातिक होता है। अपनी इस अवधारणा से न्यूटन ने पता लगाया कि किसी ग्रह की कक्षा एक दीर्घवृत्त (ellipse) के आकार की होती है जिसके एक केंद्र बिंदु (focus) पर सूर्य होता है। जोहानस केप्लर ने ग्रहों की कक्षा के बारे में यह अनुमान न्यूटन से पहले लगाया था लेकिन वह निरीक्षण पर आधारित था। न्यूटन ने यह अनुमान गणितीय गणनाओं और गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के आधार पर लगाया था। उन्होंने इस गणना के लिये गणित की एक नयी शाखा कलन गणित(calculus) भी खोज निकाली थी। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि इस लेख के तेरह स्थिरांकों में से गुरुत्वीय स्थिरांक (G) सबसे पहले खोजा गया है लेकिन इसका मान सबसे कम सटीक रूप से ज्ञात है। इसकी सटीकता में कमी का कारण यह है कि यह बल अन्य सभी मूलभूत बलों में सबसे कमजोर बल है। न्यूटन के लंदन छोड़कर जाने के तीन शताब्दियों बाद पृथ्वी का द्रव्यमान 6×10^{24} किग्रा होने के बावजूद मानव इस बल को मात देते हुये एक रासायनिक राकेट के प्रयोग से प्रयोग द्वारा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर एक उपग्रह स्पूतनिक कक्षा में भेजने में सफल हुआ था।

$G=6.7\times10^{-11}(75)\ N.(m/kg)^2$

प्रकाशगति

मध्ययुग में तोप के आविष्कार से यह सिद्ध हो गया था कि ध्वनि की गति सीमित है, तोप के गोले की रोशनी को, उसके विस्फोट की आवाज से पहले देखा जा सकता था। उसी के पश्चात बहुत से वैज्ञानिकों को जिनमें महान गैलीलियो भी शामिल थे लगने लगा था कि प्रकाशगति भी

सीमित होनी चाहिये। गैलीलियो ने इसे प्रमाणित करने के लिये दूरबीन और प्रकाश स्रोत लिये दूरी पर खड़े व्यक्तियों के साथ एक प्रयोग भी किया था लेकिन प्रकाश की अत्यधिक तेज गति और सत्रहवीं शताब्दी की तकनीकी सीमाओं के कारण यह प्रयोग असफल रहा था। उन्नीसवीं सदी के अंत तक तकनीक और प्रयोगविधियों में इतना विकास हो गया था कि प्रकाशगति को उसकी वास्तविक गति के 0.02 समीप मान तक माप लिया गया था। अलबर्ट मिशेलसन और एडवर्ड मार्ले ने दिखाया कि प्रकाशगति उसकी दिशा पर निर्भर नहीं करती है। इस प्रयोग के परिणामों में आइंस्टीन को उनके प्रसिद्ध कार्य सापेक्षतावाद के सिद्धांत के लिये मार्ग दिया जो कि 20 वीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण खोज थी और शायद अब तक की भी। अक्सर यह कहा जाता है कि प्रकाश से तेज यात्रा असंभव है। यह सही है कि कोई भी भौतिक वस्तु प्रकाश से तेज यात्रा नहीं कर सकती लेकिन हमारे कम्प्यूटर प्रकाशगति के निकट गति से सूचना संसाधन करते हैं उसके बावजूद हम दस्तावेजों के डाउनलोड होने के लिये अधीरता से इंतजार करते हैं। प्रकाशगति तेज है लेकिन निराशा की गति उससे भी तेज है। C=299,792,458m/s

आदर्श गैस स्थिरांक

सत्रहवीं शताब्दी में वैज्ञानिकों को पदार्थ की तीन अवस्थाएँ ही ज्ञात थीं– ठोस, द्रव तथा गैस (चौथी अवस्था प्लाज्मा की खोज) इसके सदियों पश्चात हुई है। उस समय ठोस और द्रव के साथ प्रयोग करना गैस की तुलना में कठिन था क्योंकि ठोस या द्रव में किसी भी परिवर्तन को उस समय के उपकरणों से मापना आसान नहीं था। इसलिए अधिकतर प्रायोगिक वैज्ञानिक मूलभूत भौतिकी नियमों को खोजने के लिए प्रयोगों में गैस का प्रयोग करते थे। राबर्ट बायल शायद ऐसे पहले महान प्रायोगिक वैज्ञानिक थे और वे वर्तमान प्रायोगिक विधि की आधारशिला रखनेवालों में से हैं जिसमें किसी भी प्रयोग में एक या एकाधिक ही कारक में परिवर्तन कर अन्य कारकों पर परिवर्तन का मापन किया जाता है। पुनरावलोकन में यह प्रत्यक्ष दिखायी देता है लेकिन यह एक दूरदर्शिता भरा कदम था।

राबर्ट बायल ने गैस के दबाव और आयतन के मध्य संबंध को खोजा था, इसकी एक सदी बाद जैक्स चार्ल्स तथा जोसेफ गे लुसाक ने आयतन और तापमान के मध्य संबंध खोजा था। यह खोज सफ़ेद जैकेट पहनकर किसी वातानुकूलित प्रयोगशाला में आधुनिक उपकरणों के प्रयोग से नहीं हुई थी। इस प्रयोग के लिये गे–लुसाक एक गर्म हवा के गुब्बारे में तेईस हजार फ़ीट की ऊंचाई पर गये थे, जो कि उस समय का विश्व रिकार्ड था। बायल, चार्ल्स तथा गे–लुसाक के प्रयोगों के परिणामों को एक साथ सम्मिलित करने पर कहा जा सकता है कि किसी गैस की निश्चित मात्रा में तापमान, दबाव तथा आयतन के गुणनफल के अनुपात में होता है। इस अनुपात के स्थिरांक को आदर्श गैस स्थिरांक कहा जाता है। R=8.3144621(75) J/□K/□mol

परम शून्य

मानव प्रागैतिहासिक काल से ही अग्नि उत्पन्न कर उष्मा का प्रयोग कर रहा है लेकिन शीतलन आसान कार्य नहीं है। ब्रह्माण्ड को संपूर्ण रूप में लेने से पता चलता है कि ब्रह्माण्ड में यह कार्य बहुत ही सरलता से हुआ है, संपूर्ण ब्रह्माण्ड का औसत तापमान परम शून्य से कुछ ही डिग्री ज्यादा है। ब्रह्मांड का शीतलन भी उसी तरीके से हुआ है जो हम अपने घर के रेफ्रीजरेटर में करते हैं, गैस के विस्तार द्वारा। माइकल फैराडे जिन्हें विद्युत के अध्ययन के लिये जाना जाता है, ने गैस के विस्तार द्वारा शीतल तापमान की संभावना जतायी थी। फैराडे ने एक बंद परखनली में कुछ द्रव क्लोरीन का निर्माण किया था, जब इस परखनली को तोड़ा गया, क्लोरीन का दबाव कम हुआ और क्लोरीन तत्क्षण गैस में परिवर्तित हो गयी। फ़ैराडे ने पाया कि यदि दबाव कम करने पर द्रव गैस में परिवर्तित की जा सकती है तब गैस पर दबाव डाल कर गैस को द्रव में परिवर्तित किया जा सकता है जिसका तापमान कम होगा। यही प्रक्रिया रेफ्रीजरेटर में होती है, गैस को दबाव से संपीड़ित किया जाता है और उसे विस्तारित होने दिया जाता है जिससे वह अपने आसपास के पदार्थ को शीतल कर देती है। 20वीं सदी के प्रारंभ से ही वैज्ञानिक दबाव के द्वारा आक्सीजन, हायड्रोजन, हीलियम को द्रवित करने में सफल हो गये थे। इस प्रक्रिया में वे परम शून्य से कुछ डिग्री तक पहुंच गये थे। लेकिन गति से उष्मा प्राप्त होती है और लेजर तकनीक द्वारा परमाणुओं की गति रोकने से हम परम शून्य के पास एक डिग्री के लाखवें हिस्से पास तक शीतल तापमान प्राप्त कर चुके हैं जो कि –273.15°C से अल्पमात्रा में ही अधिक है। परम शून्य तक पहुंचना प्रकाशगति प्राप्त करने जैसा ही कठिन है। पदार्थ इस सीमा के समीप तक पहुंच सकता है लेकिन उसे कभी पा नहीं सकता है। परम शून्य न्यूनतम सम्भव ताप है तथा इससे कम कोई ताप संभव नहीं हैं । इस ताप पर गैसों के परमाणुओं की गति शून्य हो जाती हैं । इसे 0 केल्विन में दर्शाते हैं ।

एवेगाड्रो संख्या

रसायन शास्त्र के रहस्यों को उजागर करना किसी ताले को खोलने जैसा नहीं है। इस कार्य के लिये एक नहीं दो कुंजियाँ चाहिये होती है। प्रथम कुंजी है, परमाणु सिद्धांत, जिसे 19 वीं सदी के आरंभ में जान डाल्टन ने खोजी थी। प्रसिद्ध भौतिक वैज्ञानिक रिचर्ड फ़ेयनमैन

के अनुसार परमाणु सिद्धांत इतना महत्वपूर्ण है कि वह कहते हैं। ''किसी भी प्रलय की अवस्था में यदि समस्त वैज्ञानिक ज्ञान नष्ट होने वाला हो और अगली पीढ़ी के लिये उन्हें एक वाक्य में ज्ञान देना हो तो कौन सा वाक्य कम से कम शब्दों में अधिकतम ज्ञान रखेगा मुझे लगता है कि वह परमाणु सिद्धांत है, जिसके अनुसार सभी वस्तुएँ परमाणुओं से बनी है, ऐसे छोटे कण जो अविराम गतिमान रहते हैं।'' प्रकृति में 92 तत्व पाये जाते हैं जो कि ब्रह्मांड के समस्त साधारण पदार्थ का निर्माण करते हैं। लेकिन ब्रह्माण्ड का अधिकतर पदार्थ यौगिक है जिसमें भिन्न प्रकार के तत्वों का मिश्रण है। इस तरह से आधुनिक रसायन की दूसरी कुंजी है वह खोज है जिसके अनुसार हर यौगिक एक जैसे अणुओं से बना है। उदाहरण के लिये शुद्ध जल एक जैसे असंख्य H_2O अणुओं से बना है। लेकिन किसी आयतन में कुल कितने अणु हो सकते हैं हम किसी भी रासायनिक प्रक्रिया के परिणाम का अनुमान लगा सकते हैं, यह आधुनिक रसायनशास्त्र की एक बड़ी सफलता है। इटालयिन रसायन शास्त्री एमेडीओ एवेगाड्रो ने प्रस्ताव दिया कि समान तापमान और दबाव पर विभिन्न गैसों की समान मात्रा में समान संख्या में अणु होंगे। जब उन्होंने यह सिद्धांत प्रस्तावित किया तब उनकी काफी आलोचना हुई लेकिन इस सिद्धांत द्वारा रसायनशास्त्रियों को किसी रासायनिक प्रक्रिया के पहले और पश्चात में मात्रा के मापन द्वारा अणुओं की संरचना के अनुमान में सहायता मिली। एवेगाड्रो संख्या अर्थात 12 ग्राम कार्बन में परमाणुओं की संख्या को कहते हैं और यह लगभग 6 के पश्चात 23 शून्य है। इसे एक मोल में अणुओं की संख्या भी कहते हैंए रसायनशास्त्री इस इकाई का प्रयोग किसी पदार्थ की मात्रा के मापन में करते हैं। एवेगाड्रो संख्या : 6.022169×10^{23}

विद्युत और गुरुत्वाकर्षण की सापेक्ष क्षमता

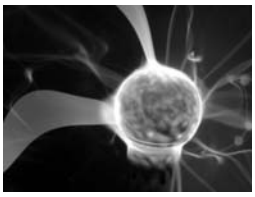

शीतकालीन सुबह में जब आप किसी कालीन पर से गुजरते हैं तब आप इतनी स्थैतिक विद्युत ऊर्जा जमा कर लेते हैं कि छोटी छोटी वस्तुएँ आपके कपड़ों से चिपक जाती है या आपके शरीर के रोंये खड़े हो जाते हैं। यह दर्शाता है कि विद्युत ऊर्जा गुरुत्वीय ऊर्जा से कितनी ज्यादा शक्तिशाली है। पृथ्वी का समस्त द्रव्यमान आपके शरीर से चिपकी उन वस्तुओं को खींच रहा है लेकिन स्थैतिक विद्युत ऊर्जा का एक नन्हा सा भाग उसे मात दे रहा है, लेकिन यह भी अच्छा है कि विद्युत ऊर्जा गुरुत्वाकर्षण से इतनी ज्यादा शक्तिशाली होने से जीवन इस रूप में संभव है। जीवन रासायनिक और विद्युत प्रक्रियाओं का एक सम्मिश्रण है। रासायनिक प्रक्रियाएँ भी जो हमारी मांसपेशियों को ताकत देती है या हमारे भोजन की पाचन प्रक्रियाएँ भी अपने मूल में विद्युत ऊर्जा पर ही निर्भर है। रासायनिक प्रक्रियाएँ परमाणुओं की बाह्य सीमाओं पर स्थित इलेक्ट्रानों के एक परमाणु से दूसरे परमाणु के मध्य पाला बदलने से ही होती है। इस सारी प्रक्रियाओं में ही विभिन्न यौगिक बनते हैं क्योंकि इलेक्ट्रानों द्वारा पाला बदलने या एकाधिक परमाणुओं को साझा करने से वे परमाणु अब जुड़ गये हैं। हमारा तंत्रिका तंत्र मांसपेशियों को संकेत भेजता है जिससे हम चल–फ़िर पाते हैं, हमारा मस्तिष्क सूचना संग्रहण और निर्णय लेता है और हमारी चेतना का प्रादुर्भाव होता है। यदि विद्युत ऊर्जा गुरुत्वाकर्षण से कमजोर होती तो ब्रह्माण्ड वर्तमान रूप में संभव नहीं होता, ना ही वर्तमान स्वरूप में जीवन। हो सकता है कि उस स्थिति में भी जीवन अपने लिये मार्ग खोज लेता लेकिन हमें उसके लिये कोई दूसरा ब्रह्माण्ड खोजना होगा। विद्युत ऊर्जा गुरुत्वाकर्षण बल से 10^{36} ज्यादा शक्तिशाली है।

बोल्टजमैन स्थिरांक

हम जानते हैं कि जल का प्रवाह नीचे की ओर होता है, ऊपर की दिशा में नहीं क्योंकि गुरुत्वाकर्षण ऐसे ही कार्य करता है। गुरुत्वाकर्षण एक बल है और गुरुत्वीय आकर्षण इस तरह व्यवहार करता है कि वह पृथ्वी के केंद्र में स्थित हो और जल नीचे की ओर खींचता है लेकिन हमारे पास इस तथ्य का कोई सरल व्याख्या नहीं है कि क्यों किसी गर्म जल के पात्र में बर्फ़ के टुकड़े पिघल जाते हैं, और किसी शीतल जल के पात्र में बर्फ़ के टुकड़े क्यों अपने आप नहीं बनते हैं? इसका उष्मा की वितरण से संबंध है और इस समस्या का हल उन्नीसवीं सदी की सबसे बड़ी सफलता थी। इस समस्या का हल आस्ट्रियन भौतिक वैज्ञानिक लुडविग बोल्टजमैन ने पाया था, उन्होंने खोज की थी कि शीतल जल की तुलना में बर्फ़ के टुकड़ों के साथ गर्म जल में उष्मा वितरण के ज्यादा तरीके हैं। प्रकृति का खेल प्रतिशत में चलता है। वह अक्सर सबसे ज्यादा संभव तरीके को चुनती है और इस संबंध को बोल्टजमैन स्थिरांक परिभाषित करता है। अव्यवस्था व्यवस्था से ज्यादा सामान्य है, किसी कमरे को साफ करने की बनिस्पत उसे खराब करने के ज्यादा तरीके होते हैं। व्यवस्थित बर्फ के टुकड़े बनाने की अपेक्षा पिघले बर्फ़ के रूप में अव्यवस्थित स्थिति बनाना आसान है। बोल्टजमैन का एन्ट्रापी समीकरण जो बोल्टजमैन स्थिरांक को समाविष्ट करता है, मर्फ़ी के नियम की भी व्याख्या करता है : यदि कोई चीज गलत हो सकती है तो वह होगी ही। कोई दुष्ट शक्ति आपके साथ कुछ भी गलत होने के लिये जिम्मेदार नहीं है, गलत चीज होने के तरीके सही चीज होने के तरीके की संख्या में बहुत ज्यादा होते हैं।

1.3807×10^{-23} joule/kelvin ($J \cdot K^{-1}$)

प्लैंक स्थिरांक

वैज्ञानिक हमेशा मानते आए हैं कि उनके सभी विश्लेषणें का अंतिम निर्णायक प्रकृति होती है और कभी–कभी प्रकृति को निर्णय लेने में लंबा समय लग जाता है। ऐसे ही एक दिन दोपहर के भोजन के समय मैक्स प्लैंक ने अपने पुत्र को भौतिक विश्व के बारे में एक नयी अवधारणा के संबंध में कहा, ''आज मेरे पास एक ऐसी अवधारणा है जो न्यूटन के सिद्धांतों के जैसे ही क्रांतिकारी और महान सिद्ध होगी।'' मैक्स प्लैंक का विश्वास इतना मजबूत था और समय ने उन्हें सही साबित भी किया। उनके चौंका देने वाले रहस्योद्घाटन के अनुसार ब्रह्माण्ड में ऊर्जा का वितरण छोटे–छोटे पैकेटों के रूप में होता है, यह परमाण्विक सिद्धांत से मेल खाता था जिसके अनुसार पदार्थ भी छोटे कणों अर्थात परमाणुओं से बना है। इन ऊर्जा के छोटे पैकेटों को क्वांटा कहा गया और इन पैकेटों के आकार को प्लैंक स्थिरांक (h) का नाम दिया गया।मैक्स प्लैंक के क्वांटम सिद्धांत ने ना केवल ब्रह्माण्ड की संरचना की व्याख्या की, उसके अतिरिक्त इसने 20 वीं और 21 वीं सदी में तकनीकी क्रांति को एक चिंगारी भी दी। इलेक्ट्रानिक्स में हर नयी खोज, लेजर से लेकर कम्प्यूटर, से चुंबकीय अनुनाद छवि निर्माण ये सभी क्वांटम सिद्धांत के आधार पर बने हैं। इसके अतिरिक्त क्वांटम सिद्धांत हमें वास्तविकता की सहज ज्ञान के विपरीत एक अनोखी तस्वीर दिखाता है। कुछ अवधारणाएँ जैसे समानांतर ब्रह्माण्ड जो कि विज्ञान फंतासी के भाग हुआ करते थे, अब उन्हें मान्यता मिल रही है। यह सब क्वांटम सिद्धांत की बदौलत संभव हुआ जो यह बताती है कि कोई भी स्थिति ऐसी क्यों है। यह सिद्धांत हर परिणाम या घटना की सुसंगत व्याख्या करने में सक्षम या संतोषजनक रूप से कर पाता है।

$h=6.62606957 \times 10^{-34}\ m^2\ kg / s$

स्कवार्जचाइल्ड त्रिज्या

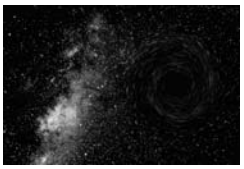

श्याम विवर (ब्लैक होल) का अर्थ होता है, अंतरिक्ष में एक ऐसा क्षेत्र जिसमें पदार्थ का घनत्व इतना ज्यादा हो कि उससे उत्पन्न गुरुत्वाकर्षण खिंचाव से प्रकाश भी नहीं बच सकता है। श्याम विवर की संभावना आइन्सटाइन के साधारण सापेक्षतावाद के सिद्धांत से मजबूत हुयी थी। इस सिद्धांत ने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत का विस्तार करते हुये नये आयाम दिये थे। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान इस सिद्धांत की एक प्रति जर्मन भौतिक वैज्ञानिक और खगोलशास्त्री कार्ल स्कवार्जचाइल्ड को मिली। आइन्सटाइन ने साधारण सापेक्षतावाद के सिद्धांत को कुछ समीकरणों के रूप में प्रस्तुत किया था। इन समीकरणों को हल करना अत्यधिक दुष्कर कार्य था लेकिन युद्ध कि विभीषिका के मध्य स्कवार्जचाइल्ड ने उनका हल खोज निकाला। यही नहीं उन्होंने प्रमाणित किया कि किसी भी मात्रा में पदार्थ को एक विशिष्ट त्रिज्या के गोले में संपीड़ित किया जाये तो वह श्याम विवर बन जायेगा। इस गोले की त्रिज्या स्कवार्जचाइल्ड त्रिज्या कहलाती है। स्कवार्जचाइल्ड त्रिज्या का कोई एक मान नहीं है, हर विशिष्ट द्रव्यमान के लिये एक विशिष्ट स्कवार्जचाइल्ड त्रिज्या है। अधिकतर व्यक्ति यह मानकर चलते हैं कि श्याम विवर कल्पनातीत रूप से लघु, घने और काले होना चाहिये। उदाहरण के लिये पृथ्वी के द्रव्यमान के लिये स्कवार्जचाइल्ड त्रिज्या केवल 1 सेमी है। अर्थात पृथ्वी को श्याम विवर बनाने के लिये उसके संपूर्ण द्रव्यमान को 1 सेमी त्रिज्या में संपीड़ित करना होगा। श्याम विवर खोखले(कम घनत्व के) भी हो सकते हैं। यदि किसी संपूर्ण आकाशगंगा के द्रव्यमान को उसके तुल्य स्कवार्जचाइल्ड त्रिज्या में समान घनत्व में फैलाया जाये तब उस श्याम विवर का घनत्व पृथ्वी के वातावरण का 0.0002 भाग ही होगा।

हायड्रोजन संलयन की कार्यक्षमता

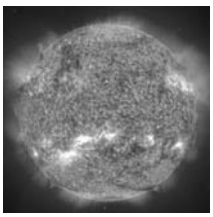

'हम सब सितारों की धूल है' – कार्ल सगन ने बिलकुल सही कहा है और इसका कारण 'हायड्रोजन संलयन की कार्यक्षमता' है। ब्रह्माण्ड का सबसे बड़ा भाग हायड्रोजन का है। इससे अधिक जटिल तत्व निर्माण के लिये विशेषत: जीवन के लिये आवश्यक तत्वों के निर्माण के लिये किसी उपाय से हायड्रोजन से उन तत्वों का निर्माण आवश्यक है। ब्रह्माण्ड में इस कार्य के लिये ढेर सारे कारखाने हैं जिन्हें हम तारे कहते हैं जो कि हायड्रोजन गैस के विशाल गोले है और गुरुत्वाकर्षण से बंधे हुए हैं। इनका गुरुत्वाकर्षण इतना ज्यादा है कि इनके केंद्र में हायड्रोजन के केन्द्रक आपस में जुड़कर हीलियम बनाते हैं, इसी प्रक्रिया को हायड्रोजन संलयन कहते हैं। इस प्रक्रिया में उत्सर्जित ऊर्जा की गणना आइन्सटाइन के प्रसिद्ध समीकरण $E = mc^2$ से की जाती है। इस प्रक्रिया में हायड्रोजन का केवल 0.7 प्रतिशत भाग ही ऊर्जा में परिवर्तित होता है। यही संख्या 0.007 हायड्रोजन संलयन की कार्यक्षमता है और ब्रह्माण्ड में जीवन का अस्तित्व इसी संख्या पर निर्भर है इसमें थोड़ी कमी या बढ़ोत्तरी से जीवन वर्तमान स्वरूप में संभव नहीं होगा। हायड्रोजन संलयन प्रक्रिया के प्रथम चरण में ड्यूटेरीयम (हायड्रोजन का भारी समस्थानिक) का उत्पादन होता है, यदि हायड्रोजन संलयन की कार्यक्षमता 0.006 से कम होती है तो यह चरण सफल नहीं हो पायेगा। इस अवस्था में तारों का निर्माण होगा लेकिन वे सिर्फ एक बड़ी चमकती गेंद होंगे जिससे ऊर्जा का उत्सर्जन अल्प मात्रा में ही होगा जैसे हमारे ग्रह बहस्पति से होता है।

यदि हायड्रोजन संलयन की कार्यक्षमता 0.008 या उससे ज्यादा हो तो संलयन प्रक्रिया अत्यन्त कार्यक्षम होगी और हायड्रोजन से हीलियम का निर्माण अल्पावधि में होकर समस्त ब्रह्माण्ड की हायड्रोजन समाप्त हो जाती। जल के अणु में दो हायड्रोजन के परमाणु होते हैं इस अवस्था में जल का निर्माण असंभव होता और जैसा हम जीते हैं वैसा जीवन का अस्तित्व असंभव होता।

चंद्रशेखर सीमा

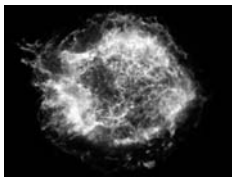

हम जीवन के जिस स्वरूप को जानते हैं वह कार्बन आधारित है लेकिन जीवन को और भी बहुत सारे भारी परमाणु वाले तत्वों की आवश्यकता होती है। ब्रह्माण्ड में भारी तत्वों के निर्माण की केवल एक ही प्रक्रिया है, जिसे सुपरनोवा कहते हैं, अर्थात किसी विशाल तारे की मृत्यु का प्रलयंकारी विस्फोट। सुपरनोवा विस्फोट में जीवन के लिये आवश्यक सभी भारी तत्वों का निर्माण होता है वे समस्त ब्रह्मांड में वितरित होते हैं, जिनसे ग्रहों का निर्माण होता है और उन ग्रहों पर जीवन का उद्भव। सुपरनोवा दुर्लभ किंतु भव्य होते हैं। 1987 में आकाश में दिखायी दिया सुपरनोवा पृथ्वी से 150,000 प्रकाशवर्ष दूरी पर था लेकिन उसे नंगी आखों से देखा जा सकता था। किसी तारे का भविष्य उसका द्रव्यमान तय करता है। सूर्य के जैसे तारों का जीवन अपेक्षाकृत लंबा होता है, सूर्य का अभी पाँच अरब वर्ष जीवन शेष है उसके पश्चात वह लाल महादानव बन कर पृथ्वी को भी निगल जायेगा। सूर्य से थोड़े बड़े तारे श्वेत वामन बनते हैं, जो कि अत्यंत उष्ण लेकिन छोटे होते हैं और धीमे–धीमे शीतल होकर मृत हो जाते हैं। तारे एक विशिष्ट द्रव्यमान, चन्द्रशेखर सीमा से ज्यादा द्रव्यमान पार करें तो उनका सुपरनोवा बनना तय होता है। चंद्रशेखर सीमा सूर्य के द्रव्यमान का लगभग 1.4 गुणा द्रव्यमान है। सुब्रमण्यण चंद्रशेखर ने इस सीमा की खोज उस समय की थी जब वे केवल 20 वर्ष के थे और उन्होंने भारत इंग्लैंड की भाप के इंजन से चलने वाले जहाज से यात्रा के दौरान खगोलीय संयोजन, सापेक्षतावाद और क्वांटम सिद्धांतों का एकीकरण करते हुए इस सीमा की खोज की थी।

हब्बल स्थिरांक

ब्रह्माण्ड के बारे में केवल दो ही संभावनाएं हैं: या तो ब्रह्मांड हमेशा से अस्तित्वमान है या कभी भूतकाल में किसी समय इसका जन्म हुआ था। इस दुविधा का हल 1960 के दशक में मिल गया था, जब बिग बैंग (महाविस्फोट) के निर्णायक प्रमाण मिल गये थे। इस महाविस्फोट का सारा विवरण किसी शोधपत्र में समाविष्ट करना एक दुष्कर तथा असंभव कार्य है। इस ब्रह्माण्ड का सारा पदार्थ, समस्त तारे और आकाशगंगाएँ एक ऐसे नन्हें से आयतन में समाये थे कि उसकी तुलना में एक अकेले हायड्रोजन परमाणु का आयतन विशालकाय महाकाय है। यदि ब्रह्माण्ड का जन्म एक महाविस्फोट में हुआ था तब यह घटना कितने समय पहले हुई थी और ब्रह्माण्ड का वर्तमान आकार कितना है। इन दोनों प्रश्नों में एक गहरा संबंध है, एक ऐसा संबंध जिसकी संभावना 1920 में एडवीन हब्बल के लास एन्जेल्स की माउंट विल्सन वेधशाला में किए निरीक्षणों से सामने आयी थी। हब्बल ने राडारगन में प्रयुक्त होने वाली तकनीक जो कि डाप्लर प्रभाव पर आधारित है, के प्रयोग से पाया था कि सारी आकाशगंगाएँ पृथ्वी से दूर जा रही हैं। ब्रह्माण्ड में पृथ्वी की स्थिति खगोलीय दृष्टि से महत्वहीन है, इसका अर्थ यह है कि आकाशगंगाओं का एक दूसरे से दूर जाना सारे ब्रह्माण्ड में हो रहा होगा। किसी आकाशगंगा के पृथ्वी से दूर जाने की गति और उस आकाशगंगा की पृथ्वी से दूरी के मध्य का अनुपात हब्ब्ल स्थिरांक से मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि ब्रह्माण्ड का जन्म अब से लगभग 13.7 अरब वर्ष पहले हुआ था।

ओमेगा

हम जानते हैं कि ब्रह्माण्ड का जन्म कैसे हुआ था और उसकी आयु कितनी है। लेकिन हम नहीं जानते हैं कि उसका अंत कैसे होगा। ब्रह्माण्ड के अंत के निर्धारण के लिये कुछ उपाय हैं, लेकिन इसके लिए हमें एक स्थिरांक के मूल्य की गणना करनी होगी, यह स्थिरांक है ओमेगा। यदि आप किसी ग्रह से एक राकेट का प्रक्षेपण करें और आपको राकेट की गति ज्ञात हो तब उस राकेट के उसके गुरुत्वाकर्षण से मुक्त होने की संभावनाए ग्रह के द्रव्यमान पर निर्भर है। उदाहरण के लिये चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त होने के लिये आवश्यक गति(पलायन वेग–Escape Velocity) रखने वाला राकेट की गति पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त होने के लिये पर्याप्त ना हो। ब्रह्माण्ड का भविष्य का ज्ञान भी कुछ ऐसी ही गणनाओं पर आधारित है। यदि बिग बैंग ने आकाशगंगाओं को आवश्यक गति दे दी थी तब वे हमेशा एक दूसरे से दूर जाते रहेंगी। यदि उनके पास पर्याप्त गति नहीं हो तो उनका भविष्य भी पर्याप्त पलायन वेग ना होने वाले राकेट के जैसे होगा। सभी आकाशगंगाएँ वापस एक महासंकुचन की स्थिति में खिंचीं आयेंगी। यह सब ब्रह्माण्ड के कुल द्रव्यमान पर निर्भर करता है। हम जानते हैं कि यदि ब्रह्मांड का घनत्व 5 हायड्रोजन परमाणु प्रति वर्गमीटर हो तो वह सारी आकाशगंगाओं को वापस एक महासंकुचन की स्थिति में खीचने के लिये पर्याप्त होगा। इस शिरोबिंदु को ओमेगा कहा जाता है, यह ब्रह्माण्ड के कुल द्रव्यमान तथा महासंकुचन को रोकने के लिये आवश्यक न्यूनतम द्रव्यमान का अनुपात है। यदि ओमेगा का मूल्य 1 से कम है तो ब्रह्माण्ड का सतत विस्तार होते रहेगा। यदि यह 1 से ज्यादा है तब दूरस्थ भविष्य में कभी महासंकुचन प्रारंभ होगा। अब तक के हमारी गणना के अनुसार ओमेगा का मूल्य 0.98 तथा 1.1 के मध्य है । यानी ब्रह्माण्ड का भविष्य अभी भी अज्ञात है।

raviratlami@gmail.com

❑❑❑

अरबों वर्ष पुरानी है पृथ्वी!

डॉ.विजय कुमार उपाध्याय

हमारे पौराणिक ग्रंथों में पृथ्वी की आयु दो अरब वर्ष से साढ़े चार अरब वर्ष के बीच बतायी गयी है। इस अनुमान का आधार क्या था यह तो पता नहीं है, परन्तु पृथ्वी की आयु के बारे में उपर्युक्त अनुमान आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा अनुमानित आयु के बहुत निकट है। अथर्ववेद के भाग 8, अध्याय 1, ऋचा 21 में पृथ्वी की आयु चार अरब 32 करोड़ वर्ष बतायी गयी हैं विष्णु पुराण के अध्याय, 1, श्लोक 3 के अनुसार वर्तमान काल वर्तमान कल्प के सातवें मनवन्तर के 28 वें महायुग का कलियुग है। इस कथन के अनुसार पृथ्वी की आयु का मान एक अरब 97 करोड़ वर्ष से अधिक आता है। आर्यभट्ट द्वारा लिखित 'सूर्य सिद्धान्त' में बताया गया हैं कि पृथ्वी की आयु का मान एक अरब 97 करोड़ 27 लाख वर्ष से अधिक है। यूरोपीय धार्मिक विचारकों द्वारा पृथ्वी की आयु के संबंध में जो मान बताये गये हैं, वे बहुत ही कम है। बाइबिल के ओल्डटेटामेंट के आधार पर सन् 1654 में आयरलैंड के आर्कबिशौप अशर ने बताया कि पृथ्वी की उत्पत्ति 4004 वर्ष ईसा पूर्व में हुई थी। इसी प्रकार बाइबिल के मर्मज्ञ डॉ. जॉन लाइटफुट ने बताया कि पृथ्वी की सृष्टि 4004 वर्ष ईसा पूर्व 26 अक्टूबर की सुबह नौ बजे हुई। जैसे-जैसे विज्ञान का विकास होता गया, पृथ्वी की आयु का प्रश्न भी गहन चिन्तन एवं शोध का विषय बनता गया। सन् 1962 में लॉर्ड केल्विन ने कल्पना की कि आरम्भ में पृथ्वी द्रव अवस्था में थी तथा इसका तापमान लगभग 2500 डिग्री सेल्सियस था। पृथ्वी की गतिशीलता के कारण इसके ताप का विकिरण होता गया तथा पृथ्वी ठंडी होकर द्रव अवस्था से ठोस अवस्था में परिणत हो गयी। इस संकुचन सिद्धान्त के आधार पर लॉर्ड केल्विन ने अनुमान लगाया कि पृथ्वी की उत्पत्ति आज से लगभग दस करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी। वैज्ञानिक परीक्षणों के दौरान अनेक भूवैज्ञानिकों ने घाटियों की कटान, हिमनदों के आगे बढ़ने तथा पीछे हटने, एवं समुद्री किनारों के जल द्वारा कटने-छटने जैसी प्राकृतिक क्रियाओं पर गौर करते हुए अनुमान लगाया कि पृथ्वी पर इन कार्यों के संपन्न होने में काफी अधिक समय लगता है। इस दृष्टिकोण से लॉर्ड केल्विन द्वारा पृथ्वी की आयु के संबंध में लगाया गया अनुमान बहुत ही अपर्याप्त है। पृथ्वी की आयु अवश्य ही इससे बहुत अधिक होनी चाहिए। परन्तु इस कथन की पुष्टि के लिये संतोषप्रद प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी।

अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में पृथ्वी की कुल विशेषताओं के अध्ययन तथा उनके मूल्यांकन के लिये कुछ कदम उठाये गये जिनके आधार पर पृथ्वी की आयु की गणना की जा सकती थी। इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रकाश डालने में सक्षम कुछ प्राकृतिक घटक निम्नलिखित थे :- (1) समुद्री जल की लवणता (2) पृथ्वी के भीतर का ताप, तथा (3) विभिन्न प्रकार की द्रोणियों में अवसादन की दर। हालांकि इन घटकों के आधार पर पृथ्वी की आयु की गणना की विधि बहुत सरल थी, परन्तु उनसे पृथ्वी की आयु के संबंध में प्राप्त आँकड़ों में एकरूपता नहीं थी। यही कारण था कि उपर्युक्त विधियाँ विश्वसनीय नहीं मानी गयीं। इन विधियों द्वारा आयु की गणना करने में कई त्रुटियां रह जाती थीं। उदाहरण के लिये यह संभव है कि समुद्री जल की लवणता शुरू से उतनी ही रही हो जितनी कि आज है। यदि हम यह

रेडियोधर्मी तत्व जैसे ही निर्मित होते हैं, उनका विखंडन प्रारंभ हो जाता है। कई तत्व तो बहुत जल्द ही विखंडित हो जाते हैं, परन्तु कुछ तत्व करोड़ों वर्षों तक विखंडित होते रहते हैं। चूंकि किसी भी तत्व का पूर्ण जीवनकाल अनिश्चित रूप से लम्बा होता है, अतः अधिकांश तत्वों के पूर्ण जीवनकाल का अनुमान लगाना कठिन है। इसकी अपेक्षा रेडियोधर्मी तत्वों के उस काल का पता लगाना आसान है जिसमें उनका आधा भाग विखंडित होता है। उस काल को उस तत्व का अर्द्धजीवन काल कहा जाता है।

मान भी लें कि समुद्री जल की लवणता समय के साथ बढ़ती गयी तो फिर एक समस्या और खड़ी होती है। पृथ्वी के स्थलीय भागों में आज अनेक स्थानों पर नमक के पहाड़ दिखायी पड़ते हैं जो समुद्रों से निर्मित माने जाते है। अर्थात समुद्रों ने पृथ्वी से प्राप्त लवणों की भारी मात्रा पृथ्वी के स्थलीय भागों को नमक के पहाड़ों के रूप में लौटा दी। अतः समुद्रों की लवणता की गणना करते समय उपर्युक्त पहाड़ों में मौजूद लवण की मात्रा का भी हिसाब रखना पड़ेगा। यह काफी कठिन काम है। पृथ्वी के आन्तरिक ताप के आधार पर भी पृथ्वी की आयु की गणना करने में एक कठिनाई है। भूगर्भ में कुछ रेडियोधर्मी तत्व मौजूद हैं। इन तत्वों के विखंडन से ताप उत्पन्न होता है जिसके कारण पृथ्वी के आन्तरिक ताप की गणना करने में कठिनाई बढ़ जाती है। द्रोणियों (बेसिन) में अवसाद (सेडिमेंट) संग्रह के आधार पर भी पृथ्वी की आयु की गणना करने में कठिनाई है। उदाहरणार्थ समुद्र में चूना पत्थर (लाइम स्टोन) की १० सेंटीमीटर मोटी परत जमा होने में हजारों वर्ष लगते हैं। जबकि उतनी ही मोटाई की बलुआ पत्थर (सैंडस्टोन) की परत नदी की द्रोणी में सिर्फ चंद घंटों में ही जमा हो जाती है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में की गयी एक खोज के फलस्वरूप पृथ्वी की आयु के निर्धारण की समस्या अचानक ही सुलझ गयी। सन् 1869 में रेंटोनी बेकेरल नामक एक फ्रांसीसी भौतिकीविद ने पता लगाया कि कुछ खनिजों में मौजूद घटक एक प्रकार की अदृश्य किरणों को उत्पन्न करते हैं। ये किरणें फोटोग्राफिक प्लेट को प्रभावित करती हैं तथा उन पदार्थों से भी होकर गुजर सकती हैं जो प्रकाश किरणों के लिये अपारदर्शक है। अदृश्य किरणों को उत्पन्न करने वाले ऐसे तत्वों को रेडियोधर्मी कहा गया। शीघ्र ही यह बात प्रकाश में आयी कि रेडियोधर्मी तत्वों के नाभिक धीरे-धीरे विखंडित होते रहते हैं। विखंडन के फलस्वरूप नये तत्वों का निर्माण होता है। सभी रेडियोधर्मी तत्व वस्तुतः एक प्रकार के समय सूचक यंत्र हैं क्योंकि ये सभी तत्व किसी अन्य तत्व में एक निश्चित दर से परिवर्तित होते हैं। परिवर्तन की दर को अर्द्धजीवन काल की इकाई में मापा जाता हैं ऐसे तत्वों का अर्द्धजीवनकाल एक सेकंड के लाख वें भाग से कई करोड़ वर्षों तक हो सकता है।

अब प्रश्न उठता है कि अर्द्धजीवन काल क्या है? रेडियोधर्मी तत्व जैसे ही निर्मित होते हैं, उनका विखंडन प्रारंभ हो जाता है। कई तत्व तो बहुत जल्द ही विखंडित हो जाते हैं, परन्तु कुछ तत्व करोड़ों वर्षों तक विखंडित होते रहते हैं। चूंकि किसी भी तत्व का पूर्ण जीवनकाल अनिश्चित रूप से लम्बा होता है, अतः अधिकांश तत्वों के पूर्ण जीवनकाल का अनुमान लगाना कठिन है। इसकी अपेक्षा रेडियोधर्मी तत्वों के उस काल का पता लगाना आसान है जिसमें उनका आधा भाग विखंडित होता है। उस काल को उस तत्व का अर्द्धजीवन काल कहा जाता है। किसी भी रेडियोधर्मी तत्व के पूर्ण जीवनकाल का पता लगाना इस कारण से कठिन है, क्योंकि प्रारंभ में विखंडन की दर बहुत तीव्र रहती है। परन्तु धीरे-धीरे यह दर कम होती जाती है। अंत में विखंडन दर इतनी कम हो जाती है कि पता भी नहीं चलता कि विखंडन हो भी रहा है या नहीं। इन कइिनाईयों को देखते हुए अर्द्धजीवन काल का ही महत्व है न कि पूर्ण जीवन काल का। रेडियोधर्मी तत्वों के कुछ मौलिक गुण भूवैज्ञानिक अध्ययन हेतु वरदान साबित हुए हैं। सर्वप्रमुख गुण तो यह है कि विखंडन की दर-पार्थिव परिस्थितियों से किसी प्रकार प्रभावित नहीं होती। पृथ्वी के भीतर तापमान या दाब के बढ़ने या घटने से विंखडन दर प्रभावित नहीं होता। दूसरा प्रमुख गुण यह है कि रेडियोधर्मी तत्व ताप उत्पन्न करते हैं। यह ऊर्जा पृथ्वी में कई प्रकार की हलचलों को उत्पन्न करती है, जैसे ज्वालामुखी, भूकंप, इत्यादि। रेडियोधर्मी तत्वों के इन गुणों के कारण इनका उपयोग पृथ्वी तथा उसके विभिन्न घटकों (जैसे खनिज, शैल, जीवाश्म इत्यादि) की आयु में निर्धारण हेतु किया जाता है।

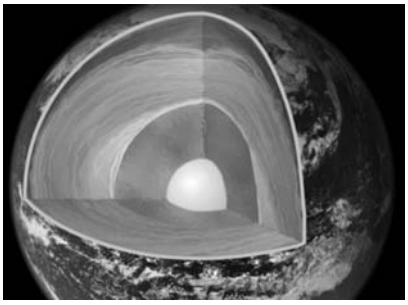

रेडियोधर्मी तत्वों द्वारा काल-निर्धारण कई बातों पर निर्भर करता है जिनमें प्रमुख है मूल पदार्थ, विखंडन से उत्पन्न पदार्थ, तथा इन दोनों का अनुपात। यदि परिवर्तन की दर मालूम हो तो किसी रेडियोधर्मी तत्व के परिवर्तित तथा अपरिवर्तित अंश को माप कर हम कह सकते हैं कि यह प्रक्रिया दाब से चल रही है। परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि उस पदार्थ से न तो कुछ हटाया गया हो और न बाहर से कुछ मिलाया गया हो। उदाहरणार्थ कुछ रेडियोधर्मी तत्वों के विखंडन से उत्पन्न पदार्थ गैसीय अवस्था में रहते हैं। ये गैसीय पदार्थ छिद्र या दरार मिलने पर निकल कर भाग सकते हैं। इस कारणवश आयु निर्धारण में अशुद्धि की संभावना रहती है। अतः यह सावधानी रखनी पड़ती है कि पत्थर का जो नमूना लिया जाए वह अपक्षय (वेदरिंग) से पूर्णतः अप्रभावित रहे तथा छिद्र एवं दरार से रहित हो।

रेडियोधर्मी तत्वों में सर्वप्रमुख है यूरेनियम। इसी कारण से इसके विखंडन एवं परिवर्तन के अध्ययनों पर अधिक ध्यान दिया गया है। यह रेडियम का जनक है तथा परमाणु बम के निर्माण में इसका सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। प्रकृति में इसके दो समस्थानिक पाये जाते हैं। जिनके नाम हैं यूरेनियम-235 तथा यूरेनियम-238। ये दोनों समस्थानिक प्रकृति में एक साथ पाये जाते है। परन्तु यूरेनियम 235 की तुलना में यूरेनियम-238 एक सौ चालीस गुना अधिक उपलब्ध है। यूरेनियम के साथ थोरियम भी प्रकृति में पाया जाता है। परन्तु इसका एक ही समस्थानिक थोरियम-232 उपलब्ध हैं ये तीनों समस्थानिक परिवर्तन की एक क्रमबद्ध श्रेणी से गुजरते हुए लेड में परिवर्तित हो जाते हैं यूरेनियम -235 विखंडित होकर लेड-207 में बदल जाता है तथा इसका अर्द्धजीवन काल लगभग 71.3 करोड़ वर्ष का है। यूरेनियम -238 विखंडित होकर लेड-206 में बदल जाता है। इसका अर्द्धजीवन काल लगभग साढ़े चार अरब वर्ष का है। योरियम -232 परिवर्तित होकर लेड-208 बनाता है तथा इसका अर्द्धजीवन काल 13.9 अरब वर्ष का है।

रेडियोधर्मी तत्वों में सर्वप्रमुख है यूरेनियम। इसी कारण से इसके विखंडन एवं परिवर्तन के अध्ययनों पर अधिक ध्यान दिया गया है। यह रेडियम का जनक है तथा परमाणु बम के निर्माण में इसका सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। प्रकृति में इसके दो समस्थनिक पाये जाते हैं। जिनके नाम हैं यूरेनियम-235 तथा यूरेनियम-238। ये दोनों समस्थानिक प्रकृति में एक साथ पाये जाते है। परन्तु यूरेनियम 235 की तुलना में यूरेनियम-238 एक सौ चालीस गुना अधिक उपलब्ध है।

उपर्युक्त सभी परिवर्तनों में हीलियम उप उत्पाद (बाईप्रोडक्ट) के रूप में उत्पन्न होता है। इस विधि में मान लिया जाता है कि प्रारंभ में लेड की मात्रा अनुपस्थित थी। प्रारंभ में कितना लेड उपस्थित था इसका संकेत लेड के एक समथानिक लेड-204 की उपस्थिति से मिलता, क्योंकि लेड-204 रेडियो धर्मिता के कारण उत्पन्न नहीं होता। काल-निर्धारण के लिये प्रायः जिरकन नामक खनिज का उपयोग किया जाता है। क्योंकि जिरकन में प्रायः थोड़ा यूरेनियम उपस्थित रहता है। यह यूरेनियम जिरकन के क्रिस्टल में प्रवेश कर जाता है तथा यूरेनियम के विखंडन के कारण उत्पन्न लेड जिरकन के रवों में फँसा रहता हैं दूसरी ओर साधारण लेड (लेड-204) जिरकन के रवों में प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि इसका आकार बड़ा है।

अब एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि रेडियो धर्मी पदार्थों के उपयोग द्वारा पृथ्वी की आयु कैसे निर्धारित की जाए? ऐसा माना जाता है कि उल्काओं का निर्माण उसी काल में हुआ जिस काल में पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। अतः उल्काओं के लिये निर्धारित आयु के मान से पृथ्वी की आयु के संबंध में उपयोगी सूत्र हाथ लग सकते हैं। अधिकांश उल्काओं से प्राप्त नमूनों में उपलब्ध रेडियोधर्मी तत्वों के विश्लेषण से पता चलता है कि उल्काओं का निर्माण लगभग साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व हुआ। चन्द्रमा से प्राप्त चट्टान के नमूनों के विश्लेषण से भी यही पता चलता है कि चन्द्रमा का निर्माण आज से लगभग साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व हुआ। चूंकि चन्द्रमा को पृथ्वी से ही उत्पन्न माना जाता है अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पृथ्वी की उत्पत्ति भी अवश्य ही साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व हुई होगी। पृथ्वी पर उपलब्ध हजारों चट्टानों के विश्लेषण से भी यही निष्कर्ष निकलता है।

❑❑❑

भू-पुरातत्त्वीय इतिहास की खोज में 'ऑप्टिकली स्टिमुलेटेड लुमनेसन्स' तकनीक

डॉ.कपूरमल जैन

भू-पुरातत्त्वीय इतिहास अपने में कई रहस्यों को समाहित किये हुए है जिसे पुरातत्त्वीय खुदाई के दौरान प्राप्त जीवाश्मों और पुरा-अवशेषों के अध्ययन से प्राप्त किया जाता है। यह इतिहास बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें मानव सभ्यता के विकास को जानने और अपनी साझी सांस्कृतिक धरोहर से रूबरू कराता है। वैज्ञानिकों ने इस अध्ययन से पृथ्वी पर जीवन-विकास के क्रमिक इतिहास को खोजा है एवं चार्ल्स डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की है। इसने वर्तमान में पाकिस्तान के सिंध क्षेत्र में मोहन जोदड़ो (Mohenjo-daro) और हड़प्पा (Harappa) जैसे व्यवस्थित शहरों की खोज के माध्यम से भारत की सिंधु घाटी की प्राचीन सभ्यता (Indus Valley Civilization) एवं सांस्कृतिक धरोहर को प्रकाश में ला कर हमें गौरवांवित होने का अवसर दिया है। इसके बाद गुजरात में लोथल (Lothal) और धोलावीरा (Dholavira), राजस्थान में कालीबंगन (Kalibangan), और हरियाणा में रखीगढ़ी (Rakhigarhi) जैसे और प्राचीन शहरों के अस्तित्व में होने की जानकारी भी मिली। वर्तमान भू-पुरातत्त्वीय खुदाई के दौरान मध्यप्रदेश के भोपाल, विदिशा, जबलपुर, धार आदि स्थानों के आसपास और नर्मदा व चम्बल घाटी के क्षेत्रों में एक के बाद एक कई पुरा-अवशेष मिलते जा रहे हैं जो हमारे समृद्ध भू-पुरातत्त्वीय इतिहास की ओर इशारा कर रहे हैं। भारतीय पुरातत्त्वविद वी.एस. वाकणकर द्वारा भीमबेटका में जिन 600 से अधिक गुफाओं की खोज की हैं, वे प्रागैतिहासिक काल यानि लगभग 13 हजार वर्ष पूर्व की हैं। इन गुफाओं में मिली पेंटिंगों में चीता, कुत्ता, हाथी, भैंस, छिपकली आदि के जो चित्र मिलते हैं, उनमें प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल हुआ है। आश्चर्य की बात है कि ये रंग आज भी फीके नहीं पड़े हैं। ये गुफाएँ 'विश्व धरोहर' में सम्मिलित हैं।

आज हो रही जबर्दस्त तकनीकी प्रगति के कारण पुरातत्त्वीय और भूगर्भीय महत्त्व की कई ऐसी विश्वसनीय जानकारियाँ मिल रही हैं जो भारत की सभ्यता को विश्व में 'सर्वाधिक प्राचीनतम' सिद्ध करती हैं। इस तरह भारत के अतीत के बारे में अब तक प्रचलित रही धारणाओं और समझ में नाटकीय और प्रभावी परिवर्तन आ रहा है जिसे विश्व समुदाय द्वारा नजरअंदाज करना मुश्किल हो रहा है।

पुरा-अवशेषों की प्राप्ति

पुरातत्त्वीय अवशेषों की खोज के लिए कुछ विशिष्ट संकेतों के आधार पर साइट (Site) का चयन कर अत्यंत सावधानीपूर्वक खुदाई की जाती है। साइट का पता लगाने के लिए विभिन्न तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। आज जी.आई.एस. (Geographic Information System) से 'पर्यावरणीय मॉडल' तैयार किये जाते हैं जिससे साइट के चयन में मदद मिलती है। जी.पी.आर. (Ground Penetrating Radar) की सहायता से भूमि में असंगति (Anomalies), भू-संरचना, पाये जाने वाले भू-पदार्थों की भिन्नता आदि के अध्ययन से साइट्स का पता लगाया जाता है। कीलों, गहनों, युद्धभूमि में प्रयोग में लाये गए हथियारों आदि जैसी वस्तुओं का पता लगाने के लिए धातुई संसूचकों (Metal Sensors) का इस्तेमाल भी किया जाता है। जलमग्न (Underwater) पुरा-अवशेषों का पता लगाने के लिए 'चुम्बकीय मापन तकनीक' (Magnetic measuring technique) और ध्वनि आधारित 'सोनार' (Sonar) विधि को प्रयुक्त किया जाता है।

काल निर्धारणके लिए 'कार्बन डेटिंग' तकनीक

चयनित साइट से जो पुरा-अवशेष प्राप्त होते हैं, उनका अध्ययन कर उनके अस्तित्व में आने के काल का पता लगाया जाता है। इसके लिए शोधकर्ता सामान्यतः 'कार्बन डेटिंग' तकनीक को अपनाते हैं। इस तकनीक में पुरा-अवशेषों में विद्यमान 'रेडियोकार्बन' (यह कार्बन का समस्थानिक है जिसकी परमाणु संहति 14 होती है) को मापा जाता है। अपने रेडियोधर्मी गुणों के कारण 'रेडियोकार्बन' इन अवशेषों में

प्रकृति की स्वचालित घड़ी के रूप में कार्य करता है। इस घड़ी की जानकारी 1940 की दशक में सर्वप्रथम विलार्ड लीबी (Willard Libby) नामक एक वैज्ञानिक ने दी थी। लीबी ने बताया कि जब 'अंतरिक्ष-किरणें' वायुमण्डल में प्रवेश करती हैं तो वे वहाँ उपस्थित नाइट्रोजन के कुछ परमाणुओं को कार्बन के भारी समस्थानिक (रेडियोकार्बन) में बदल देती है। यह 'रेडियोकार्बन' कार्बन डायआक्साइड में परिवर्तित होकर पेड़-पौधों में 'प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis) क्रिया' के जरिये प्रवेश करते हैं जो भोजन के माध्यम से अन्य जीव-जन्तुओं में भी प्रवेश कर जाते हैं। इस तरह हर जैविक पदार्थ में प्राकृतिक 'कार्बन घड़ियाँ' स्थापित हो जाती हैं। प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि एक ग्राम ताजे जैव-पदार्थ (जैसे- हरी लकड़ी) को जलाने पर मिलने वाले कोयले में करीब 50 अरब रेडियो-कार्बन के परमाणु होते हैं। जीवाश्म में उपस्थित रेडियो-कार्बन से रेडियोधर्मी विकिरणों का उत्सर्जन होता रहता है जिससे समय के साथ-साथ इसकी मात्रा लगातार घटती जाती है। प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि रेडियोधर्मी पदार्थ के एक किलोग्राम से आधा किलोग्राम होने में जो समय लगता है वही उसके एक ग्राम से आधा ग्राम होने में भी लगता है। वैज्ञानिक शब्दावली में इस अवधि को रेडियोधर्मी पदार्थों का 'अर्द्ध-आयुकाल' (आधा होने में लगने वाला समय) कहते हैं। 'रेडियोकार्बन' के लिए इसका मान 5700 वर्ष होता है। इस तरह पुरातत्त्वीय अवशेषों के नमूनों में रेडियोकार्बन की मात्रा को ज्ञात कर काल-गणना की जा सकती है। यह ठीक उसी तरह है जिस तरह हम रेत-घड़ियों में रेत अथवा जल-घड़ियों में जल की बह रही मात्रा से बीते हुए समय की गणना कर लेते हैं।

रेडियोधर्मी पदार्थ के एक किलोग्राम से आधा किलोग्राम होने में जो समय लगता है वही उसके एक ग्राम से आधा ग्राम होने में भी लगता है। वैज्ञानिक शब्दावली में इस अवधि को रेडियोधर्मी पदार्थों का अर्द्ध-आयुकाल कहते हैं।

'कार्बन डेटिंग' तकनीक की सीमाएँ

जब प्राप्त पुरातत्त्वीय अवशेषों में जैविक पदार्थ नहीं हो तब 'कार्बन डेटिंग' तकनीक काम नहीं आती है। ऐसे में प्रकृति में मिलने वाली अन्य घड़ियों पर ध्यान दिया जाता है। इनमें रेडियोधर्मी थोरियम, एक्टीनियम इत्यादि से बनने वाली घड़ियाँ प्रमुख हैं। प्रकृति की इन घड़ियों से विश्व की प्राचीनतम चट्टान की आयु 300 करोड़ वर्ष के लगभग मिली जबकि हिमालय की आयु मात्र 15 से 20 करोड़ वर्ष ही प्राप्त हुई। इससे पता चलता है कि पृथ्वी के अस्तित्व में आने के बहुत बाद में हिमालय पर्वत अस्तित्व में आया। यह भूगर्भीय गतिविधियों और समय-समय पर धरती पर होते रहने वाले 'आकृतिक परिवर्तनों' (Morphological changes) की ओर स्पष्ट संकेत करता है। रेडियोधर्मिता पर आधारित तकनीकों के अलावा अन्य विश्वसनीय तकनीक को खोजने के लिए वैज्ञानिकों का ध्यान भौतिकी के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों पर गया। इसका संबंध पुरा-अवशेषों में कैद 'प्रकाश' से है। यह 'प्रकाश' बालुई पत्थर या अन्य पुरातत्त्वीय महत्त्व की चट्टानों में बिखरे रेडियोधर्मी पदार्थों में उपस्थित 'क्वार्ट्ज़' (Quartz) या 'फेल्ड स्पार' (Feld spar) के क्रिस्टल कणों में ट्रेप रहता है। इस 'प्रकाश' का अध्ययन कर यह जाना जा सकता है कि उसपर आखिरी बार प्रकाश कब पड़ा था। इससे काल गणना की जा सकती है। आईये! इसे थोड़ा विस्तार से समझते हैं।

भौतिकी ने दिखाई राह

सन 1898 में 'इलेक्ट्रॉन' की खोज के बाद परमाणु की 'इलेक्ट्रॉनिक संरचना' की जानकारी मिली। यह स्पष्ट हुआ कि परमाणु में इलेक्ट्रॉन अलग-अलग असतत ऊर्जा अवस्थाओं (Descrete energy states) में अवस्थित होते हैं तथा इनमें चक्रिय (spin) गति होती है। लेकिन एक अवस्था में कितने इलेक्ट्रॉन हो सकते हैं, इसकी जानकारी 'पॉली के अपवर्जन नियम' की खोज के बाद मिली जिसके अनुसार एक अवस्था में अधिकतम दो इलेक्ट्रॉन ही रह सकते हैं, एक 'दक्षिणवर्तीय' (Clockwise) और दूसरा 'वामवर्तीय' (Anticlockwise) चक्रिय गति वाला। परमाणु की संरचना स्पष्ट होने के बाद वैज्ञानिकों ने अणु तथा ठोस की 'इलेक्ट्रॉनिक संरचना' को समझने की दिशा में कदम उठाये। इस समय तक सूक्ष्म यानि क्वांटम दुनिया को समझने के लिये गणितीय औजार (Mathematical tool) के रूप में 'क्वांटम यांत्रिकी' (Quantum Mechanics) जन्म ले चुकी थी। यह यांत्रिकी इस दिशा में आगे बढ़ रहे वैज्ञानिकों के लिए बहुत मददगार साबित हुई। द्वि तथा बहु परमाणवीय (di and poly atomic) अणु 'घूर्णन' (Rotation) तथा 'कम्पन' (Vibration) करने में भी सक्षम होते हैं। अतः इनमें प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा अवस्था के साथ घूर्णन तथा कम्पन गति के लिये भी पृथक से ऊर्जा अवस्थाएं संबद्ध होती हैं। इससे अणुओं की इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा अवस्थाएं 'ऊर्जा बैण्ड' (Energy bands) बन जाती हैं। इसकी जानकारी भौतिकी के सुप्रसिद्ध 'रमन प्रभाव' के अध्ययन से मिलती है। 'रमन प्रभाव' अणुओं द्वारा आपतित प्रकाश के प्रकीर्णन से जुड़ा हुआ है। इस अध्ययन के दौरान मिलने वाला 'स्पेक्ट्रम' वास्तव में अणुओं का 'फिंगर-प्रिंट' होता है। इस तरह यह प्रभाव पुरातत्त्वीय खोजों के दौरान मिलने वाले 'पिगमेंट' (वर्णक) आदि के अध्ययन में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है।

ठोस का अध्ययन करते हुए वैज्ञानिकों ने देखा कि 'क्रिस्टलीय संरचना' में विभिन्न परमाणु 'लेटिस' में सममित (Symmetric) तरीके से जमे रहते हैं। इससे क्रिस्टल की

'इलेक्ट्रॉनिक संरचना' अलग तरीके से व्यवहार करती है। ठोस क्रिस्टलों के लेटिस में कई-कई परमाणुओं की उपस्थिति के कारण स्वाभाविक ही इलेक्ट्रॉनों की ऊर्जा-अवस्थाएं 'ऊर्जा-बैण्ड' का रूप धारण कर लेती हैं। इन्हें समझने के लिए वैज्ञानिकों ने 'क्वांटम यांत्रिकी' (Quantum Mechanics) का अनुप्रयोग किया और देखा कि इनमें 'नाभिक' (Nucleus) से बंधे इलेक्ट्रानों के लिए 'वैलेंस बैण्ड' (Valance band) तथा मुक्त इलेक्ट्रॉनों के लिए 'कंडक्शन अथवा चालक बैण्ड' (Conduction band) होती हैं। 'वैलेंस बैण्ड' तथा 'कंडक्शन बैण्ड' के बीच एक गैप (या अंतराल) होता है जिसे 'ऊर्जा बैण्ड गैप' (Energy band gap) या सिर्फ 'बैण्ड गैप' कहते हैं। यह गैप ही ठोस पदार्थों के वर्गीकरण का आधार बनती है। कुचालकों में यह गैप बहुत अधिक होती है जबकि चालकों में यह अनुपस्थित रहती है। कुचालकों के आदर्श या परफेक्ट 'क्रिस्टल' (ब्तलेजंस) की वैलेंस बैण्ड इलेक्ट्रॉनों से भरी रहती है जबकि चालक बैण्ड पूर्णतः खाली रहती है। लेकिन उपयुक्त प्रकाशीय ऊर्जा (ऊर्जा बैण्ड गैप से अधिक)के फोटॉन से इलेक्ट्रॉनों को वैलेंस बैण्ड से चालक बैण्ड में पहुँचाया जा सकता है, जहाँ वे मुक्त अवस्था में आ जाते हैं और घूमने के लिए स्वतंत्र होते हैं। ऐसा होने पर वैलेंस बैण्ड में इलेक्ट्रॉनों की कमी हो जाती है जिन्हें 'विवर' (Hole) कहते हैं। 'विवर' यानि 'होल' धनात्मक आवेश की तरह व्यवहार करते हैं जो मुक्त इलेक्ट्रॉनों को अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखते हैं। चालक बैण्ड के इलेक्ट्रॉन मुक्त अवस्था में तब तक घूमते रहते हैं जब तक कि वे वेलेंस बैण्ड में स्थित किसी 'विवर' में गिर कर 'प्रकाश' के रूप में ऊर्जा को उत्सर्जित नहीं कर देते। लेकिन प्रकृति में मिलने वाले क्रिस्टल 'आदर्श या परफेक्ट' क्रिस्टल नहीं होते। इनमें कई 'दोष' (डिफेक्ट्स) होते हैं। ये 'डिफेक्ट' ऊर्जा-गैप (अंतराल) में कई ऐसी अवस्थाओं को पैदा कर देते हैं जिनमें इलेक्ट्रॉन जा कर ठहर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, ये अवस्थाएं इलेक्ट्रॉनों के लिये 'ट्रैप' साबित होती हैं। अध्ययन से पता चला कि ये ट्रैप 'शैलो' (उथले) और 'डिप' (गहरे) प्रकार के होते हैं। 'शैलो ट्रैप' में ट्रैप इलेक्ट्रॉन को मुक्त करने के लिये कम (ऊष्मीय परास में अवस्थित) जबकि 'डिप ट्रैप' से मुक्त करने के लिये अधिक (प्रकाशीय परास में अवस्थित) ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ट्रैप का अध्ययन करने के लिए 'थर्मोलुमिनेसन्स' (ताप संदीप्ति) तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है। इस अध्ययन में ट्रैप्ड इलेक्ट्रानों वाले नमूने को विभिन्न निश्चित तापों पर गरम करते हुए उत्सर्जित होने वाले प्रकाश को स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से मापा जाता है। अलग-अलग ताप पर उत्सर्जित प्रकाश की तीव्रता अलग-अलग होती है। इसके बाद ताप और उत्सर्जित प्रकाश की तीव्रता के बीच ग्राफ खींच कर दीप्ति वक्र ('ग्लो कर्व') प्राप्त कर ली जाती है। जिस ताप पर 'ग्लो कर्व' में सबसे अधिक प्रकाश की तीव्रता यानि पीक (शिखर मान) मिलती है, उसका संबंध प्रायोगिक नमूने में विद्यमान 'ट्रैप गहराई' (Trap depth) से होता है। 'ग्लो कर्व' में 'शिखर ताप' (Peak Temperature) जितना अधिक होता है, उतनी ही अधिक प्रायोगिक क्रिस्टल में 'ट्रैप' की गहराई (डेप्थ) होती है।

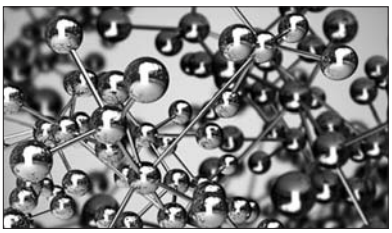

क्रिस्टल में अवस्थित इन ट्रैपों में इलेक्ट्रॉनों की संख्या उस ऊर्जा के समानुपातिक होती है जो क्रिस्टल के आसपास रेडियोधर्मी वातावरण के द्वारा उत्सर्जित की जाती है तथा क्रिस्टल के द्वारा अवशोषित की जाती है जो इन इलेक्ट्रॉनों के ट्रैप हो जाने के कारण बची रह जाती है। इसतरह काल-गणना संभव हो जाती है।

'नयी घड़ी' की खोज

यह भौतिकी के अध्ययन के दौरान पाया गया ऐसा ज्ञान साबित हुआ जिसने भूगर्भ विज्ञान और पुरातत्त्वीय इतिहास के अध्ययन और आयु-काल का निर्धारण करने के लिए एक सर्वथा नया रास्ता सुझा दिया। सच कहा जाये तो भौतिकी में हुई इन खोजों ने भू-वैज्ञानिकों और पुरातत्त्वीय वैज्ञानिकों को अब तक की प्रयुक्त प्राकृतिक घड़ियों के अलग एक सर्वथा 'नयी घड़ी' को खोजने का आधार उपलब्ध करा दिया।

भूगर्भीय और पुरा-तत्त्वीय शोध में 'तापित पदार्थ', बालुक डिपाजिट (जिनमें और सिरामिक और मिट्टी टूटे हुए नहर-नालों जैसे सांस्कृतिक महत्त्व के स्थान शामिल हैं) तथा मिट्टी से निर्मित पुरातत्त्वीय महत्त्व के अवशेष काफी महत्त्वपूर्ण साबित होते हैं। इनमें कई जानकारियाँ 'कोडित' होती हैं। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि इन पुरा-तत्त्वीय नमूनों में 'ट्रेस' (लेश) घटक के रूप में रेडियोधर्मी पोटेशियम, यूरेनियम, थोरियम, रूबिडियम आदि पाये जाते हैं जो लगातार रेडियोधर्मी विकिरणों को उत्सर्जित करते रहते हैं। अब अगर इन नमूनों में 'क्वार्ट्ज' और 'फेल्डस्पार' के क्रिस्टल उपस्थित है तो वे इन विकिरणों से प्रभावित होते हैं। विकिरणों के कारण इनकी वैलेंस बैण्ड में उपस्थित कुछ 'बंध-इलेक्ट्रॉन' 'मुक्त' होने लगते हैं और क्रिस्टल ग्रेन में उपस्थित इलेक्ट्रॉन ट्रेप्स में जा कर कैद हो जाते हैं। चूँकि पुरा-तत्त्वीय नमूनों में अवस्थित होने के कारण इन तक बाह्य ऊर्जा नहीं पहुँच पाती है अतः ये वहीं बने रहते हैं। फिर धीरे-धीरे समय के साथ इनकी संख्या बढ़ने लगती है। इस तरह लम्बी कालावधि में इन क्रिस्टल ग्रेन्स में क्वांटम स्तर

पर मापन योग्य परिवर्तन पैदा हो जाते हैं। क्रिस्टल में अवस्थित इन ट्रैपों में इलेक्ट्रॉनों की संख्या उस ऊर्जा के समानुपातिक होती है जो क्रिस्टल के आसपास रेडियोधर्मी वातावरण के द्वारा उत्सर्जित की जाती है तथा क्रिस्टल के द्वारा अवशोषित की जाती है जो इन इलेक्ट्रॉनों के ट्रैप हो जाने के कारण बची रह जाती है। इसतरह काल-गणना संभव हो जाती है। इस तकनीक में 'डेटिंग' के लिये वे 'ट्रैप' उपयोगी होते हैं जो 'क्रिस्टल-लैटिस' में अधिक गहराई में अवस्थित होते हैं क्योंकि उनका ऊष्मीय जीवनकाल (Thermal lifetime) अधिक होता है।

लुमनेसन्स डेटिंग तकनीक और नमूनों का संग्रहण

पुरातत्त्वीय एवं भूगर्भीय महत्त्व के नमूनों में उपस्थित 'क्रिस्टल-लैटिस' में आये परिवर्तनों को मापने के लिये इलेक्ट्रॉनों को 'ट्रैप' से मुक्त कराना तथा फिर इनके 'विवर' में गिरने के दौरान उत्पन्न होने वाले प्रकाश की तीव्रता को अत्यंत सुग्राही उपकरणों की सहायता से मापना पड़ता है। इन्हें मापने के लिए प्रयोगशालाओं में जिन तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है उन्हें 'लुमनेसन्स डेटिंग' (Lumunescence dating) तकनीक कहा जाता है। चूँकि लुमनेसन्स डेटिंग तकनीक में 'क्वार्ट्ज और फेल्डस्पार' के अशेष भाजक (सपुनवज) तथा एकल (सिंगल) ग्रेन प्रयुक्त होते हैं, अतः शोधकर्ताओं को नमूनों के संग्रहण में स्थानीय साइट फार्मेशन (aSite formation) की विधि की समझ तथा 'लुमनेसन्स डेटिंग' तकनीक के सिद्धांत को जानने की आवश्यकता होती है। इसके बाद शोधकर्ताओं को सेम्पल में से इन 'क्रिस्टल ग्रेन' को प्राप्त करना होता है। प्रयोग के लिए जिन 'ग्रेन' को चुना जाता है, वे 'फाइन' से 'मिडियम' साइज (90 से 250 माइक्रोमीटर) के 'क्रिस्टल कण' तथा 'फाइन सिल्ट' (4 से 11 माइक्रोमीटर) के रूप में होते हैं। चूँकि इन्हें भौतिक विधियों से अलग नहीं किया जा सकता है, अतः इन्हें प्राप्त करने के लिए विशिष्ट तकनीकों को अपनाना पड़ता है। इसीलिए इस तकनीक का प्रयोग करने और सही-सही काल निर्धारण के लिये पुरातत्त्वीय अवशेषों के नमूनों (सेम्पल) का संग्रहण (कलेक्शन) और उनके संग्रहण की विधि बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। हालांकि 'लुमनेसन्स डेटिंग' तकनीकें उच्च-स्तरीय तकनीकें हैं फिर भी इनसे काल निर्धारण में त्रुटियों की भी संभावना रहती है। इसका कारण नमूनों की गुणवत्ता है।

1965 में शेल्को प्लायस और मोरोझोव ने प्रथम बार उन पदार्थों को चुना जिन्हें गरम कर तैयार नहीं किया गया था। इसके बाद पिछली सदी की सत्तर और अस्सी की दशकों में लाइट सेंसीटिव ट्रेप्स को आधार बना कर टेरेस्ट्रियल और मैरिन भूगर्भिय सेडिमेंट्स का चयन किया और काल निर्धारण के लिये थर्मोलुमिनेसन्स तकनीक प्रयुक्त होती रही।

प्रयोग के लिए नमूनों का पुरातत्त्वीय अवशेषों में प्रवेश के पूर्व पूरी तरह से 'ब्लिच' होना जरूरी है। 'ब्लिच' होने से तात्पर्य यह है कि उनमें पहले से ही कोई इलेक्ट्रॉन ट्रैप न हो। 'सौरप्रकाश' (Sunlight) की उपस्थिति में ये 'ब्लिच' हो जाते हैं। अब हो सकता है कि जिस नमूने को प्रयोग हेतु चुना गया है, वह चट्टान या पुरातत्त्वीय अवशेष में प्रवेश के पूर्व पूरी तरह से 'ब्लिच' न हो। ऐसा स्थिति में काल का 'अधि-आकलन' (Over Estimation) हो सकता है। एक और संभावना है। प्रयोग हेतु चयनित सेम्पल चट्टान या पुरातत्त्वीय अवशेष में इतनी अधिक कालावधि बीता दे कि आज से बहुत पहले ही सारे ट्रैप भर जायें जिससे इलेक्ट्रॉनों को ट्रैप करने के लिए कोई अवस्था ही क्रिस्टल में न बचे। ऐसी स्थिति में काल के 'अव-आकलन' (Under estimation) की संभावना रहती है।

लुमनेसन्स डेटिंग तकनीक अपनाने का सुझाव सन् 1953 में वैज्ञानिक फेरंगटॅन डेनियल्स (Farrington Daniels), चार्ल्स बॉयड (Charles A. Boyd) और डोनाल्ड एफ. सौंडर्स (Donald F. Saunders) ने दिया। लेकिन इस विचार के प्रायोगिक सत्यापन हेतु प्रयोगों की शृंखला एन. ग्रोगलर और उनके साथियों (N.Grögler et al.) ने सन् 1960 से की। इन वैज्ञानिकों ने पॉटरी (मिट्टी के बर्तन), ईंटों, टाइल्स आदि में प्रयुक्त पदार्थों के 'थर्मोलुमिनेसन्स' अध्ययन से सफलतापूर्वक काल-निर्धारण कर एक नयी राह दिखा दी। इसके बाद 'थर्मोलुमिनेसन्स' शोध और अध्ययन के लिये पॉटरी (pottery) और सिरामिक्स (ceramics), दग्ध (बर्नट) फ्लिंट (burnt flints), बेक्ड हर्थ (आग में पकी हुई भट्टी) (baked hearth) के अवशेष, ओवन में प्रयुक्त पत्थर (oven stones) और आग में पकी हुई अन्य वस्तुएँ चुनी गई।

इसके बाद 1965 में शेल्को प्लायस और मोरोझोव (Shelkoplyas and Morozov) ने प्रथम बार उन पदार्थों को चुना जिन्हें गरम कर तैयार नहीं किया गया था। इसके बाद पिछली सदी की सत्तर और अस्सी की दशकों में लाइट सेंसीटिव ट्रेप्स (Light sensitive traps) को आधार बना कर टेरेस्ट्रियल (पार्थिव) और मैरिन (समुद्रक) भूगर्भीय सेडिमेंट्स का चयन किया और काल निर्धारण के लिये थर्मोलुमिनेसन्स तकनीक प्रयुक्त होती रही।

'ऑप्टीकली स्टिमुलेटेड लुमिनेसंस' तकनीक का विकास

इस बीच सन् 1963 में एटकन और साथियों (Aitken et al.) के संज्ञान में थर्मोलुमिनेसंट ट्रेप्स के संबंध में एक बात आई। उन्होंने पाया कि केल्साइट क्रिस्टल में ये सौरप्रकाश की उपस्थिति में अथवा गरम करने पर 'ब्लिच' हो जाते हैं। अतः सही-सही काल निर्धारण में समस्या आई। लेकिन वैज्ञानिकों का इस तकनीक पर बहुत गहरा विश्वास जम चुका था। अतः अब तक मिली सफलता ने वैज्ञानिकों को प्रेरित किया ताकि प्रकाश-आधारित काल निर्धारण तकनीक में नये आयाम जोड़े जा सकें। इसी के परिणाम-स्वरूप सन् 1984 में डेविड हंटले और उनके साथियों (David Huntley et.al.) ने 'प्रकाशतः उद्दीपन ज्योतिर्मयता' यानि 'ऑप्टीकली स्टिमुलेटेड लुमिनेसन्स (Optically Stimulated Luminescence)' यानि 'ओ. एस.एल.' तकनीक को विकसित करने की दिशा में कार्य किया और सफलता पाई। इस तकनीक में क्रिस्टल को उच्च तरंगदैर्ध्य के प्रकाश (नीले, हरे या नियर इंफ्रारेड) से उद्दीपित कर प्राप्त होने वाले निम्न तरंगदैर्ध्य के प्रकाश (बैंगनी) को माप लिया जाता है। इस तकनीक में उद्दीपन (Stimulation) और संसूचन (डिटेक्टशन) के विभिन्न मोड प्रचलन में हैं। इनमें 'कंटीन्यूअस वेव (संतत तरंग) ओ.एस.एल.' सबसे सरल और प्रचलन में लायी जाने वाली तकनीक है। इसमें उद्दीपन के लिए नियत तीव्रता के प्रकाश स्रोत का इस्तेमाल किया जाता है। इसके समान ही एक अन्य तकनीक लिनियरली माडुलेटेड (रेखिक माडुलक) ओ.एस. एल. है जिसमें उद्दीपन के लिए बढ़ते रेखीय क्रम वाले तीव्रता के प्रकाश स्रोत का उपयोग किया जाता है। एक अन्य तकनीक में उद्दीपन (स्टीमुलेशन) के पश्चात ओ.एस.एल. सिग्नल को मापा जाता है। एक तकनीक ऐसी भी है जिसमें उद्दीपन के लिए 'पल्स' (स्पंदन) का इस्तेमाल किया जाता है। 'पल्स' को प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त स्रोत को एक निश्चित अंतराल पर बंद व चालू किया जाता है तथा 'स्पंदनों' की बीच की अवधि में ओ.एस.एल. सिग्नल को लगातार मापते हुए जोड़ा जाता है जब तक कि एक संतुलन (इक्विलिब्रियम) मान नहीं मिल जाता।

गहराई में अवस्थित ट्रैप ज्यादा स्थिर होते हैं। अतः इनके द्वारा किया जाने वाला काल-निर्धारण अधिक विश्वसनीय होता है। इसके लिये 'फोटो ट्रान्स्फर्ड (फोटो अंन्तरण) ओ.एस. एल.' और कूल्ड (शीतल) ओ.एस.एल. तकनीकों को प्रयुक्त किया जाता है। इन तकनीकों में पहले नमूने में से 'शैलो ट्रैप' में अवस्थित इलेक्ट्रॉनों को गरम कर खाली कर लिया जाता है तथा फिर उचित ऊर्जा के फोटॉन से उद्यापित कर डीप ट्रैप (अधस्थ तल) से 'लुमनेसन्स सिगनल' प्राप्त किया जाता है। 'फोटो ट्रांस्फर्ड ओ.एस.एल.' और 'कूल्ड ओ.एस.एल.' तकनीकों में कोई विशेष अंतर नहीं है। कूल्ड ओ.एस.एल. तकनीक में नमूने को 'द्रव नाइट्रोजन' ताप से कमरे के ताप तक लाया जाता है ताकि 'शैलो ट्रैप' में अवस्थित अधिकतम इलेक्ट्रॉनों को मुक्त किया जा सके जिससे नमूने में काल-गणना के लिये 'डीप ट्रैप' से ही सिग्नल मिल सके। उपर्युक्त उल्लेखित तकनीकों के अनुप्रयोगों से नमूने द्वारा अवशोषित विकिरण की कुल मात्रा माप लेने के पश्चात अवशेषों के नमूने में उपस्थित रेडियोधर्मी तत्वों से होने वाले उत्सर्जन को मापने की भी जरूरत पड़ती है। इसे माप कर 'विकिरण डोज़' की दर ज्ञात कर ली जाती है। इन दोनों मान से प्रायोगिक पुरा-अवशेषों का आयु-काल ज्ञात कर लिया जाता है।

भविष्य की दिशा

आयोन्निस लिरिट्झिस (Ioannis Liritzis) ने ग्रेनाइट (granite), बेसाल्ट (basalt) और बलुआ पत्थर (sandstone) से बनी सतहों आदि के अध्ययन से प्राचीन भवनों आदि के काल निर्धारण हेतु इस विधि से सफलता प्राप्त की। इसके अलावा भूगर्भीय महत्त्व की यथा, एओलीअन (प्राचीन ग्रीस के बाशिंदों संबंधी जानकारी), तटीय और नदीय, समुद्रीय, सुनामीजेनिक (वे भूकम्प जो सुनामी को जन्म देते हैं), ग्लेशिओजेनिक (जो हिम नदियों या ग्लेशर को जन्म देते हैं), स्लोप डिपॉज़िट (ढलान जमा) आदि के संबंध में कई जानकारियाँ मिली हैं। इस तकनीक से ज्वालामुखीय स्थानों से प्राप्त पदार्थों का अध्ययन कर पृथ्वी के अतीत तथा वर्तमान संबंधी जानकारियों को भी वैज्ञानिकों ने प्राप्त किया है। इन जानकारियों से जो 'पैटर्न' मिले हैं उनसे भविष्य में होने वाले परिवर्तनों के बारे में भी जानना संभव हो पा रहा है। अब समूचे पृथ्वी तंत्र की गतिकी की बेहतर समझ विकसित हो रही है जिससे हमें पृथ्वी के अतीत, वर्तमान और भविष्य की कार्य-पद्धति के बारे में जानकारी मिल रही है। इसतरह यह अध्ययन प्राकृतिक और मानवीय कारणों से होने वाले पृथ्वी और उसकी जलवायु में परिवर्तन जैसे विषयों पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

आज 'ओ.एस.एल.' एक अनिवार्य 'टूल' के रूप में सामने आ रहा है जिससे मानव-जन्य गतिविधियों के कारण पृथ्वी पर समय-समय पर जो परिवर्तन हुए हैं उन्हें बारीकी से समझना संभव हो पा रहा है। वर्तमान संदर्भ में यह अध्ययन समूचे विश्व को चिंतित कर रहे 'जलवायु परिवर्तन' के संकट से निपटने के लिए कार्य-योजना बनाने में वैज्ञानिकों की मदद करेगा। प्रसन्नता की बात है कि 'मध्यप्रदेश विज्ञान एवं औद्योगिक परिषद' इस क्षेत्र में रूचि रखने वाले शोधकर्ताओं के लिए यह आधुनिक सुविधा उपलब्ध कराने जा रहा है।

kapurmaljain@gmail.com

❑❑❑

भारत निर्माण यात्रा में विज्ञान और परंपरा

रांग तेलंग

भारत में वैज्ञानिक अध्ययन एवं चिंतन की अत्यंत प्राचीन और गौरवशाली परंपरा रही है। विश्व को शून्य से हमने ही परिचित कराया। वैदिक काल से ही भारतीय मेधा ने सृष्टि और जीवन के हर विषय पर मूल अवधारणाओं और वैज्ञानिक परिकल्पनाओं पर विशद् काम किया और उसका शीर्षस्थ विकास किया जिन्हें पश्चिमी जगत 16-17वीं शताब्दी के बाद ही खोज पाया। सातवीं-आठवी शताब्दी का भारतीय विज्ञान अपने शीर्ष स्वरूप में था। बाद में मध्यकाल में बाहरी आक्रमणों और लंबी दासता के दौर में हमारी विज्ञान की विकास यात्रा ज़रूर अवरुद्ध हुई। लेकिन आज़ाद भारत की प्रगति और विकास को उसकी विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हुई तरक्की के आधार के साथ-साथ उसकी चिंतन और दर्शन की सुदीर्ध परम्परा को भी देखा जाना चाहिए।

पहले बात करें कि इतनी भौतिक तरक्की के बावजूद हमारा नज़रिया दिन-प्रतिदिन प्रतिगामी क्यों होता जा रहा है। रोज़ाना हम जिन चीज़ों और ख़बरों से दो-चार होते हैं वे अवैज्ञानिकता की चाशनी में लिपटी हुईं हमारे सामने आतीं हैं। उनका यही आकर्षण हमें दूसरे पक्ष की ओर से अनभिज्ञ रखता है। दरअसल अंधविश्वास से जकड़े हमारे समाज में अंधविश्वासों को बरकरार रखने के लिए अक्सर विज्ञान का सहारा लिया जाता रहा है और हम अपने दैनंदिन जीवन में इतने रहस्यवादी होते जा रहे हैं कि जानकारी बांटना तो दूर जानकारी पर रहस्य का ताला लगाने में हमें ज्यादा मजा आता है। हमारा मानस इतना वैयक्तिकतावादी है कि हमें रहस्यों के आवरण में लिपटी चीज़ें संभालकर रखने की आदत-सी पड़ी हुई है। इससे हमें लगता है कि हमारे व्यक्तित्व में चार चाँद लग जाएंगे और हम विशिष्ट हो जाएंगे। यह विशिष्टताबोध विज्ञान के लिए और विज्ञान प्रसार के लिए धातक है। आम जन और विज्ञान पसंद करने वालों से हम संकोच भरी नैतिक उम्मीद करते हैं कि विज्ञान को रहस्यलोक की ओर ले जाने वाला वाहन न मानकर रहस्यों से पर्दा उठाने वाला सेवक मान कर जीवन में आगे बढ़ें। दरअसरल सारे रहस्यों का रहस्य यह है कि कहीं कोई रहस्य नहीं है। चीजों- घटनाओं को हम ही बंद आंखों से, बंद दिमाग से, बंद दिल से देखते हैं। प्रकृति के साथ एकाकार हो जाने के बाद आप पाएंगे आपके भीतर से प्रकृति बोलने लगी है। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की रचना प्रक्रिया ऐसी ही रही है। देखा जाए तो दैनिक जीवन में हम जो गणित अपनाते हैं उसमें हमें यह ध्यान ही नहीं रह पाता कि हम अत्यल्प संभावना वाली चीज़ों और धटनाओं को बहुत अधिक तूल दे देते हैं और उसी तथ्य या घटना से जुड़ी अधिकाधिक संभावनाओं की उपेक्षा कर देते हैं। ज़रा सोचिये ऐसा क्यों है? हमारे मस्तिष्क की बनावट कहें या बुनावट कुछ ऐसी है कि यह नई चीजों के लिए एकदम से तैयार नहीं होता। प्रतिरोध करता है। यह हिचक निश्चित ही उसकी रिफ्लेक्स एक्शन/प्रतिरक्षा प्रणाली से जुड़ी हो सकती है लेकिन मनुष्य के विकास में इसे बाधक के रूप में भी दर्ज किया जा सकता है। आप गौर करें तो यह हिचक तोड़ने के कारण ही चकमक पत्थर से दुनिया चमकीली हुई, आग को काबू में करना सीखा गया, पहिए का आविष्कार हुआ, मशीनी पंख बने और

अंततः आज राकेट बनने तक की यात्रा पर हम आ पहुँचे। जिन्होंने हिचक-भय पर काबू पाया उन्होंने नायकों का दर्जा हासिल किया,इतिहास बनाया। ऐसा मानस जब एक बड़े समूह या समाज का हिस्सा बन जाता है तो निकृष्टतम परंपराओं,कर्मकांडों, रीतियों का पहिया उलट जाता है और नवोन्मेषी समाज की संरचना प्रारंभ होती है।

हम रेडियो-टीवी, स्मार्ट फोन, कंप्यूटर से चौबीसों घंटे घिरे हुए हैं। लेकिन अगर रेडियो तरंगों के आसमान पर विहंगम नज़र डालें तो साफ़ होगा कि संवाद के लिए ईजाद की गई तकनीकी ने अपने व्यावसायिक हितों की खातिर मनुष्य की जिज्ञासु प्रवृत्ति का दोहन करना शुरू कर दिया है और अपना एक विशाल बाज़ार निर्मित कर लिया है। आपने गौर किया होगा कि संसार के मीडिया के विशाल साम्राज्य पर पश्चिम का ज़बरदस्त नियंत्रण है, इसी का सहारा लेकर पश्चिम से सोच-समझकर अवैज्ञानिक कंटेंट की जो हवा बहाई जाती है जिसे आप आधुनिक अंधविश्वास की संक्रामक हवा भी कह सकते हैं, तीसरी दुनिया की मौलिक खोज और वैज्ञानिक सोच की प्रगति में सोची-समझी बाधाएं खड़ी करती है और यही उस हवा का एक उद्देश्य भी है जो पश्चिम की विज्ञान और तकनीक की तरक्की की रफ़्तार बढाती है।

प्राचीन भारत में ऋषियों,मुनियों, मनीषियों की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। वेद-पुराण उन्हीं की देन है, जिन्होंने ब्रह्मांड और प्रकृति का सूक्ष्म अध्ययन किया। तक्षशिला, नालंदा, पाटलीपुत्र, उज्ज्यनी, काशी आदि नगर प्राचीन भारत के विश्व प्रसिद्ध अध्ययन केंद्र रहे। जिसमें चरक, धन्वन्तरि, सुश्रुत, अग्निवेश, नागार्जुन जैसे वैज्ञानिक ऋषियों ने ग्रहों, नक्षत्रों,ज्योतिष, गणित से लेकर वनस्पति, चिकित्सा, शल्य, औषधि, रसायन, खगोल आदि विभिन्न विषयों में अनुसंधान की सुव्यवस्थित और सुदृढ़ वैज्ञानिक प्रणाली को जन्म दिया। मेधातिथि ने जहाँ अंक गणना को विकसित किया, वहीं बोधायन ने ज्यामिति के प्रमेयों की परिकल्पना दी, चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि भारतीय चिकित्सा एवं शल्य पद्धति के जन्मदाता थे वहीं भारद्वाज आत्रेय, पुनर्वसु आदि का विमानन ,वनस्पति शास्त्र, मेडीसिन में महत्वपूर्ण योगदान था। इसी तरह नागार्जुन और कणाद ने पदार्थों की रचना के संबंध में अपनी मौलिक अवधारणाएं दीं। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, महावीराचार्य, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, श्रीधराचार्य आदि ने गणित व खगोलशास्त्र के रहस्य खोले।

हमारी भारतीय मेधा परंपरा को हम ही उपेक्षा की नज़र से देखते हैं। इस पर चिंता के साथ सोचने की जरूरत है। एक वरिष्ठ लेखक ने कहीं एक रोचक टिप्पणी की कि हमारी परंपरा में बहुतेरे वैज्ञानिक ग्रंथ संस्कृत में हैं। इनको डिकोड करने वाले विद्वानों की आज कमी है। आज स्थिति यह है कि जिन्हें संस्कृत का ज्ञान है, वे विज्ञान नहीं जानते और जिन्हें विज्ञान का ज्ञान है वे संस्कृत नहीं जानते। महर्षि अरविंद ने कहा है- हमारे वेदों में अनेक मंत्र हैं, पूरे के पूरे ऐसे सूक्त हैं जो रहस्यवादी अर्थ लिए हैं ताकि उसे योग्य व सक्षम ही समझ सके, डिकोड कर सके। पश्चिमी विज्ञान जगत शुरू से ही भारतीय दर्शन का ऋणी रहा है। वहाँ के शीर्षस्थ वैज्ञानिक हाइजनबर्ग, बोहर, श्रोडिंगर जैसी हस्तियों ने अपने वैज्ञानिक सिद्धांतों को मूर्त रूप देने में भारतीय विज्ञान दर्शन के प्रभावों को स्वीकारा है। भारतीय विज्ञान के उज्ज्वल अतीत और परंपरा को हमें पुनर्जीवित-पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है। अन्तरिक्ष में सौ से अधिक उपग्रहों को स्थापित करना, मंगल पर सबसे कम खर्च पर यान योजना, नैनो सेटेलाईट स्थापित करना, संचार क्रांति के लाभ आम जन तक पहुँचना आदि क्या इस बात की गवाही नहीं देते कि भारतीय विज्ञान अब एक नई करवट ले चुका है और यह अब उसके पुनर्जागरण का दौर है। आईये हम सब एक विज्ञान अभिमुख समाज के निर्माण के संकल्प के साथ इस अभियान में शामिल हों।

raagtelang@gmail.com

❑❑❑

हमारी भारतीय मेधा परंपरा को हम ही उपेक्षा की नज़र से देखते हैं। इस पर चिंता के साथ सोचने की जरूरत है। एक वरिष्ठ लेखक ने कहीं एक रोचक टिप्पणी की कि हमारी परंपरा में बहुतेरे वैज्ञानिक ग्रंथ संस्कृत में हैं। इनको डिकोड करने वाले विद्वानों की आज कमी है। आज स्थिति यह है कि जिन्हें संस्कृत का ज्ञान है, वे विज्ञान नहीं जानते और जिन्हें विज्ञान का ज्ञान है वे संस्कृत नहीं जानते। महर्षि अरविंद ने कहा है- हमारे वेदों में अनेक मंत्र हैं, पूरे के पूरे ऐसे सूक्त हैं जो रहस्यवादी अर्थ लिए हैं ताकि उसे योग्य व सक्षम ही समझ सके, डिकोड कर सके। पश्चिमी विज्ञान जगत शुरू से ही भारतीय दर्शन का ऋणी रहा है।

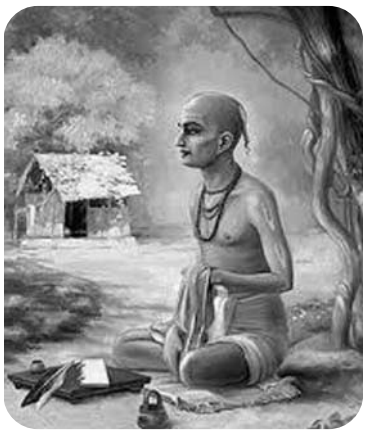

भारतीय यांत्रिकी संरचनाएँ

संजीव वर्मा 'सलिल'

भारतीय परिवेश में अभियांत्रिकी संरचनाओं को 'वास्तु' कहा गया है। छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी प्रत्येक संरचना को अपने आपमें स्वतंत्र और पूर्ण व्यक्ति के रूप में 'वास्तु पुरुष' कहा गया है। भारतीय परंपरा प्रति को मातृवत पूज्य मानकर उपयोग करती है, पाश्चात्य पद्धति प्रकृति को निष्प्राण पदार्थ मानकर उसका उपभोग (दोहन-शोषण) कर और फेंक देती हैं। भारतीय यांत्रिक संरचनाओं के दो वर्ग वैदिक-पौराणिक काल की संरचनाओं और आधुनिक संरचनाओं के रूप में किये जा सकते हैं और तब उनको वैश्विक गुणवत्ता, उपयोगिता और दीर्घता के मानकों पर परखा जा सकता है।

शिव की कालजयी अभियांत्रिकी

पौराणिक साहित्य में सबसे अधिक समर्थ अभियंता शिव हैं। शिव नागरिक यांत्रिकी (सिविल इंजीनियरिग), पर्यावरण यांत्रिकी, शल्य यांत्रिकी, शस्त्र यांत्रिकी, चिकित्सा यांत्रिकी, के साथ परमाण्विक यांत्रिकी में भी निष्णात हैं। वे इतने समर्थ यंत्री है कि पदार्थ और प्रकृति के मूल स्वभाव को भी परिवर्तित कर सके, प्रातिक परिवर्तनों के कारण जनगण की सुनिश्चित मृत्यु को भी टाल सके। उन्हें मृत्युंजय और महाकाल विशेषण प्राप्त हुए।

शिव की अभियांत्रिकी का प्रथम ज्ञात नमूना 6 करोड़ से अधिक वर्ष पूर्व का है जब उन्होंने टैथीज़ महासागर के सूखने से निकली धरा पर मानव सभ्यता के प्रसार हेतु अपरिहार्य मीठे पेय जल प्राप्ति हेतु सर्वोच्च अमरकंटक पर्वत पर दुर्लभ आयुर्वेदिक औषधियों के सघन वन के बीच में अपने निवास स्थान के समीप बांस-कुञ्ज से घिरे सरोवर से प्रबल जलधार निकालकर गुजरात समुद्र तट तक प्रवाहित की जिसे आज सनातन सलिला नर्मदा के नाम से जाना जाता है। यह नर्मदा करोड़ों वर्षों से लेकर अब तक तक मानव सभ्यता केंद्र रही है। नागलोक और गोंडवाना के नाम से यह अंचल पुरातत्व और इतिहास में विख्यात रहा है। नर्मदा को शिवात्मजा, शिवतनया, शिवसुता, शिवप्रिया, शिव स्वेदोद्भवा, शिवंगिनी आदि नाम इसी सन्दर्भ में दिये गये हैं। अमरकंटक में बांस-वन से निर्गमित होने के कारण वंशलोचनी, तीव्र जलप्रवाह से उत्पन्न कलकल ध्वनि के कारण रेवा, शिलाओं को चूर्ण कर रेत बनाने-बहाने के कारण बालुकावाहिनी, सुंदरता तथा आनंद देने के कारण नर्मदा, अकाल से रक्षा करने के कारण वर्मदा, तीव्र गति से बहने के कारण क्षिप्रा, मैदान में मंथर गति के कारन मंदाकिनी, काल से बचने के कारण कालिंदी, स्वास्थ्य प्रदान कर हृष्ट-पुष्ट करने के कारण जगजननी जैसे विशेषण नर्मदा को मिले।

जीवनदायी नर्मदा पर अधिकार के लिए भीषण युद्ध हुए। नाग, ऋक्ष, देव, किन्नर, गन्धर्व, वानर, उलूक दनुज, असुर आदि अनेक सभ्यताएं सदियों तक लड़ती रहीं। अन्य कुशल परमाणुयांत्रिकीविद दैत्यराज त्रिपुर ने परमाण्विक ऊर्जा संपन्न 3 नगर 'त्रिपुरी' बनाकर नर्मदा पर कब्जा किया तो शिव ने परमाण्विक विस्फोट कर उसे नष्ट कर दिया जिससे निःसृत ऊर्जा ने ज्वालामुखी को जन्म दिया। लावा के जमने से बनी चट्टानें लौह तत्व की अधिकता के कारण जाना हो गयी। यह स्थल लम्हेटाघाट के नाम से ख्यात है। कालांतर में चट्टानों पर धूल-मिट्टी जमने से पर्वत-पहाड़ियाँ और उनके बीच में तालाब बने। जबलपुर से 32 किलोमीटर दूर ऐसी ही एक पहाड़ी पर ज्वालादेवी मंदिर मूलतः ऐसी ही चट्टान को पूजने से बना। जबलपुर के 52 तालाब इसी समय बने थे जो अब नष्टप्राय हैं। टेथीज़ महासागर के पूरी तरह सूख्नने और वर्तमान भूगोल के बेबी माउंटेन कहे जानेवाले हिमालय पर्वत के बनने पर शिव ने मानसरोवर को अपना आवास बनाकर भगीरथ के माध्यम से नयी जलधारा प्रवाहित की जिसे गंगा कहा गया।

महर्षि अगस्त्य के अभियांत्रिकी कार्य

महर्षि अगस्त्य अपने समय के कुशल परमाणु शक्ति विशेषज्ञ थे। विंध्याचल पर्वत की ऊँचाई और दुर्गमता उत्तर से दक्षिण जाने के मार्ग में बाधक हुई तो महर्षि ने परमाणु शक्ति का प्रयोग कर पर्वत को ध्वस्त कर मार्ग बनाया। साहित्यिक भाषा में इसे मानवीकरण कर पौराणिक गाथा में लिखा गया कि अपनी ऊंचाई पर गर्व कर विंध्याचल सूर्य का पथ अवरुद्ध करने लगा तो सृष्टि में अंधकार छाने लगा। देवताओं ने

महर्षि अगस्त्य से समाधान हेतु प्रार्थना की। महर्षि को देखकर विंध्याचल प्रणाम करने झुका तो महर्षि ने आदेश दिया कि दक्षिण से मेरे लौटने तक ऐसे ही झुके रहना और वह आज तक झुका है।

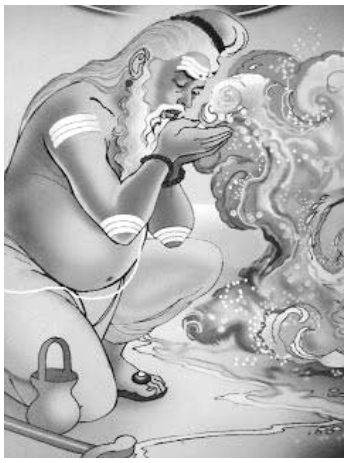

दस्युओं द्वारा आतंक फैलाकर समुद्र में छिप जाने की घटनाएँ बढ़ने पर अगस्त्य ने परमाणु शक्ति का प्रयोग कर समुद्र का जल सुखाया और राक्षसों का संहार किया। पौराणिक कथा में कहा गया की अगस्त्य ने चुल्लू में समुद्र का जल पी लिया। राक्षसों से आर्य ऋषियों की रक्षा के लिए अगस्त्य ने नर्मदा के दक्षिण में अपना आश्रम (परमाणु अस्त्रागार तथा शोधकेन्द्र) स्थापित किया। किसी समय नर्मदा घाटी के एकछत्र सम्राट रहे डायनासौर राजसौरस नर्मदेंसिस खोज लिए जाने के बाद इस क्षेत्र की प्राचीनता और उक्त कथाएँ अंतर्संबन्धित और प्रामाणिकता होना असंदिग्ध है।

रामकालीन अभियांत्रिकी

रावण द्वारा परमाण्विक शस्त्र विकसित कर देवों तथा मानवों पर अत्याचार किये जाने को सुढ़ दुर्ग के रूप में बनाना यांत्रिकी का अद्भुत नमूना था। रावण की सैन्य यांत्रिकी विद्या और कला अद्वितीय थी। स्वयंवर के समय राम ने शिव का एक परमाण्वास्त्र जो जनक के पास था पास था, रावण हस्तगत करना चाहता था नष्ट किया। सीताहरण में प्रयुक्त रथ जो भूमार्ग और नभमार्ग पर चल सकता था वाहन यांत्रिकी की मिसाल था। राम-रावण परमाण्विक युद्ध के समय शस्त्रों से निकले यूरेनियम-थोरियम के कारण सहस्त्रों वर्षों तक लंका दुर्दशा रही जो हिरोशिमा नागासाकी की हुई थी। श्री राम के लिये नल-नील द्वारा लगभग १३ लाख वर्ष पूर्व निर्मित रामेश्वरम सेतु अभियांत्रिकी की अनोखी मिसाल है। सुषेण वैद्य द्वारा बायोमेडिकल इंजीनियरिंग का प्रयोग युद्ध अवधि में प्रतिदिन घायलों का इस तरह उपचार किया गया की वे अगले दिन पुनः युद्ध कर सके।

राम सेतु

लंका पर चढ़ाई हेतु श्री राम ने अत्यल्प काल में सेतु निर्माण कर चमत्कार ही कर दिया था। भारत के दक्षिणी-पूर्वी तट पर रामेश्वरम् और श्रीलंका के तलाई-मन्नार के मध्य राम सेतु समुद्री सतह से न्यूनतम 3 फुट एवं अधिकतम 30 फीट नीचे स्थित है। अमेरिकी अन्तरिक्ष अनुसंधान एजेन्सी नासा के उपग्रह जेमिनी-द्वितीय ने सन् 1966 में इस लुप्त सेतु की प्रथम तस्वीरें पृथ्वी पर भेजी थी। नासा ने इसका नाम 'एडम्स-ब्रिज' या 'आदम-पुल' रखा। भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन (इसरो) ने 26 अक्टूबर 2003 को इसके चित्रों को सार्वजनिक किया। रामनाथपुरम् जिला गजेटियर 1972 के अनुसार 'यह सेतु बालू और चूने के पत्थर (लाइमस्टेन) से बना है।' नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ ओशियन टैक्नालॉजी द्वारा इस सेतु के कुछ स्थलों पर की गयी बोरिंग बतलाती है कि सेतु के 6 मीटर के हिस्से में समुद्री रेतु, कोरल्स; मूंगा आदि केलकेरियस सैण्ड स्टोन और पत्थर आदि निर्माण सामग्री मिले हैं। जिओलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के पूर्व निदेशक डा। बद्रीनारायण का मत है कि रामसेतु में मिले पत्थर समुद्री नहीं, अन्यत्र से लाए गए हैं। एक सौ योजन के सेतु का निर्माण पाँच दिन में क्रमशः 14, 20, 21, 22, 23 योजन किया गया। रामनाथपुरम् जिला गजेटियर 1972 के अनुसार ''कुरंगुपडई, वानर सेना द्वारा निर्मित यह सेतु १४८० ई. तक भारत और श्रीलंका का भूस्थलीय सम्पर्क मार्ग था। इसके बाद समुद्र में आये एक भीषण चक्रवात ने इसमें दरारें डाल दीं, पानी पुल के ऊपर से बहने लगा।'

पाक जलडमरू मध्य व मन्नार की खाड़ी के बीच सीधा रास्ता बनाने के लिए धनुषकोटि के पास राम सेतु की लगभग 12 मीटर ऊपरी सतह को छाँटकर गहराई बढ़ाना व 300 मीटर लंबी नहर प्रस्तावित है जिसकी लागत 2427 करोड़ रूपए अनुमानित है। इससे 36 घण्टों और 450 कि.मी. की बचत तथा प्रतिदिन 9 जहाजों निकलने पर एक वर्ष में लगभग 3285 जहाज निकलने से 2100 हजार करोड़ वार्षिक आय होगी। करोड़ों लोगों की आस्था, पुरातात्विक महत्त्व, पर्यावरण को क्षति आदि पहलुओं को देखते हुए इस संरचना को मूल रूप में लाकर रक्षित किया जाना चाहिए।

कृष्णकालीन अभियांत्रिकी

लाक्षाग्रह, इंद्रप्रस्थ तथा द्वारिका ष्णकाल की अद्वितीय अभियांत्रिकी संरचनाएँ हैं। सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शंख, गांडीव धनुष आदि शस्त्र निर्माण कला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। महाभारत पश्चात अश्वत्थामा द्वारा उत्तरा के गर्भस्थ शिशु पर प्रहार, श्रीष्ण द्वारा सुरक्षापूर्वक शिशु जन्म कराना बायो मेडिकल इंजीनियरिंग का अद्भुत उदाहरण है। गुजरात में समुद्रतट पर ष्ण द्वारा बसाई गयी द्वारिका नगरी उनकी मृत्यु पश्चात जलमग्न हो गयी। २००५ से भारतीय नौसेना के सहयोग से इसके अन्वेषण का कार्य प्रगति पर है। वैज्ञानिक स्कूबा डाइविंग से इसके रहस्य जानने में लगे हैं।

श्रेष्ठ अभियांत्रिकी के ऐतिहासिक उदाहरण

श्रेष्ठ भारतीय संरचनाओं में से कुछ इतनी प्रसिद्ध हुईं कि उनका रूपांतरण कर निर्माण का श्रेय सुनियोजित प्रयास शासकों द्वारा किया गया। उनमें से कुछ निम्न निम्न हैं:

तेजोमहालय (ताजमहल) आगरा

हिन्दू राजा परमार देव द्वारा 1196 में बनवाया गया तेजोमहालय (शिव के पाँचवे रूप अग्रेश्वर महादेव नाग नाथेश्वर का उपासना गृह तथा राजा का आवास) भवन यांत्रिकी कला का अद्भुत उदाहरण है जिसे विश्व के सात आश्चर्यों में गिना जाता है।

तेजो महालय के रेखांकन

108 कमल पुष्पों तथा 108 कलशों से सज्जित संगमरमरी जालियों से सज्जित यह भवन 400 से अधिक कक्ष तथा तहखाने हैं। इसके गुम्बद निर्माण के समय यह व्यवस्था भी की गयी है कि बूँद-बूँद वर्षा टपकने से शिवलिंग का जलाभिषेक अपने आप होता रहे।

विष्णु स्तम्भ (कुतुब मीनार) दिल्ली

युनेस्को द्वारा विश्व घोषित, दक्षिण दिल्ली के विष्णुपद गिरि में राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक प्रख्यात ज्योतिर्विद आचार्य मिहिर की शोध तथा निवासस्थली मिहिरा अवली (महरौली) में दिन-रात के प्रतीक 12 त्रिभुजाकारों-12 कमल पत्रों और 27 नक्षत्रों के प्रतीक 27 पैवेलियनों सहित निर्मित 7 मंज़िली विश्व की सबसे ऊँची मीनार 72.7 मीटर, आधार व्यास 14.3 मीटर, शिखर व्यास 2.75 मीटर, 379 सीढियाँ, निर्माण काल 1193 ई। पूर्व) विष्णु ध्वज/स्तंभ (कुतुब मीनार) भारतीय अभियांत्रिकी संरचनाओं के श्रेष्ठता का उदाहरण है। इस पर सनातन धर्म के देवों, मांगलिक प्रतीकों तथा संस्त उद्धरणों का अंकन है। इन पर मुग़लकाल में समीपस्थ जैन मंदिर तोड़कर उस सामग्री से पत्थर लगाकर आयतें लिखाकर मुग़ल इमारत का रूप देने का प्रयास कुतुबुद्दीन ऐबक व् इलततमिश द्वारा 1199-1368 में किया गया । निकट ही चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा विष्णुपद गिरि पर स्थापित और विष्णु भगवान को समर्पित गिरि पर स्थापित और विष्णु भगवान को समर्पित 7 मीटर ऊंचा 6 टन वज़न का ध्रुव/गरुड़स्तंभ (लौह स्तंभ) स्तम्भ चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने बाल्हिक युद्ध में विजय पश्चात बनवाया। इस पर अंकित लेख में सन 1052 के राजा अंनगपाल द्वितीय का उल्लेख है। तोमर नरेश विग्रह ने इसे खड़ा करवाया जिस पर सैकड़ों वर्षों बाद भी जंग नहीं लगी। फॉस्फोरस मिश्रित लोहे से निर्मित यह स्तंभ भारतीय धात्विक यांत्रिकी की श्रेष्ठता का अनुपम उदाहरण है। आई.आई.टी. कानपुर के प्रो. बालासुब्रमण्यम के अनुसार हाइड्रोजन फॉस्फेट हाइड्रेट जंगनिरोधी सतह है का निर्माण करता है।

जंतर मंतर

सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा 1724 में दिल्ली जयपुर, उज्जैन, मथुरा और वाराणसी में निर्मित जंतर मंतर प्राचीन भारत की वैज्ञानिक उन्नति की मिसाल है। यहाँ सम्राट यंत्र सूर्य की सहायता से समय और ग्रहों की स्थिति, मिस्र यंत्र वर्ष से सबसे छोटे ओर सबसे बड़े दिन, राम यंत्र और जय प्रकाश यंत्र से खगोलीय पिंडों की गति जानी जा सकती है। इनके अतिरिक्त दिल्ली, आगरा, ग्वालियर, जयपुर, चित्तौरगढ़, गोलकुंडा आदि के किले अपनी मजबूती, उपयोगिता और श्रेष्ठता की मिसाल हैं।

आधुनिक अभियांत्रिकी संरचनाएँ

भारतीय अभियांत्रिकी संरचनाओं को शकों-हूणों और मुगलों के आक्रमणों के कारण पडी। मुगलों ने पुराने निर्माणों को बेरहमी से तोडा और किये। अंग्रेजों ने भारत को एक इकाई बनाने के साथ अपनी प्रशासनिक पकड़ बनाने के लिये किये। स्वतंत्रता के पश्चात सर मोक्षगुंडम विश्वेस्वरैया, डह्। चन्द्रशेखर वेंकट रमण, डॉ. मेघनाद साहा आदि ने विविध परियोजनाओं को मूर्त किया। भाखरानागल, हीराकुड, नागार्जुन सागर, बरगी, सरदार सरोवर, टिहरी आदि जल परियोजनाओं ने कृषि उत्पादन से भारतीय अभियांत्रिकी को गति दी।

जबलपुर, कानपुर, तिरुचिरापल्ली, शाहजहाँपुर, इटारसी आदि में सीमा सुरक्षा बल हेतु अस्त्र-शास्त्र और सैन्य वाहन गुणवत्ता और मितव्ययिता के साथ बनाने में भारतीय संयंत्र किसी विदेशी संस्थान से पीछे नहीं हैं।

परमाणु ऊर्जा संयंत्र निर्माण, परिचालन और दुर्घटना नियंत्रण में भारत के प्रतिष्ठानों ने विदेशी प्रतिष्ठानों की तुलना में बेहतर काम किया है। कम सञ्चालन व्यय, अधिक रोजगार और उत्पादन के साथ कम दुर्घटनाओं ने परमाणु वैज्ञानिकों को प्रतिशत दिलाई है जिसका श्रेय डॉ. होमी जहांगीर भाभा को जाता है।

भारत की अंतरिक्ष परियोजनाएं और उपग्रह टेक्नॉलॉजी दुनिया में श्रेष्ठता, मितव्ययिता और सटीकता के लिए ख्यात हैं। सीमित संसाधनों के बावजूद भारत ने कीर्तिमान स्थापित किये हैं और खुद को प्रमाणित किया है। डॉ. विक्रम साराभाई का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता।

भारत के अभियंता पूरी दुनिया में अपनी लगन, परिश्रम और योग्यता के लिए जाने जाते हैं । देश में प्रशासनिक सेवाओं की तुलना में वेतन, पदोन्नति, सुविधाएँ और सामाजिक प्रतिष्ठा अत्यल्प होने के बावजूद भारतीय अभियांत्रिकी परियोजनाओं ने कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

अग्निपुरुष डॉ. कलाम के नेतृत्व में भारतीय मिसाइल अभियांत्रिकी ने विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त की है। चंद्र, मंगल तथा सूर्य तक शोध हेतु यान प्रक्षेपित करने में भारतीय वैज्ञानिकों व अभियंताओं ने अपनी दक्षता का परिचय दिया है। मेट्रो ट्रैन, दक्षिण रेल, वैष्णव देवी रेल परियोजना हो या बुलेट ट्रैन की भावी योजना, राष्ट्रीय राजमार्ग चतुर्भुज हो या नदियों को जोड़ने की योजना भारतीय अभियंताओं ने हर चुनौती को स्वीकारा है। विश्व के किसी भी देश की तुलना में भारतीय संरचनाएँ और परियोजनाएं श्रेष्ठ सिद्ध हुई हैं।

salil-sanjiv@gmail-com

❑❑❑

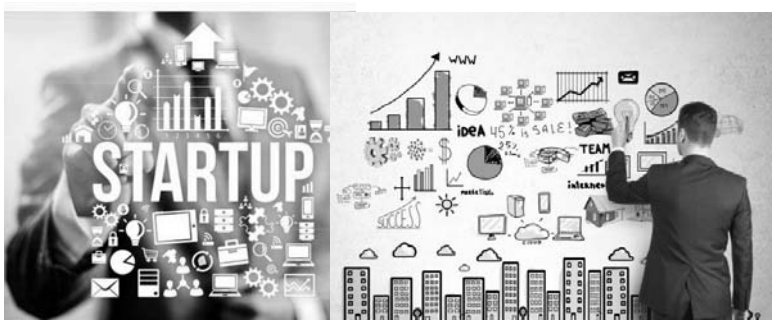

उद्यमशीलता और नवोन्मेष

लक्ष्मण प्रसाद

जमीनी स्तर पर युवाओं में उद्यमशीलता और विद्यार्थियों में नवोन्मेष अर्थात इन्नोवेशन की भावना विकसित करने और उसके जरिये बड़ी संख्या में रोजगार सृजन करने के इरादे से प्रधानमंत्री ने हाल ही में महत्वकांक्षी 'स्टार्ट-अप इंडिया' अभियान का श्रीगणेश किया है। नौकरी पाने की आकांक्षाओं के बजाय आत्मविश्वास से लवरेज़ उद्यमी एवं इन्नोवेटर बनकर राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देना इसका मकसद है। दूसरे शब्दों में, इस कार्यक्रम ने देश के युवाओं में खुद को आगे बढ़ने के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। अभी तक पढ़े-लिखे नौजवान सरकारी नौकरियों और बड़ी-बड़ी कम्पनियों में नौकरियों के लिए लालयित रहते हैं क्योंकि उद्यम स्थापित करने का वातावरण अनुकूल नहीं है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत वातावरण में यदि तेजी से बदलाव आता है तो अवश्य ही हमारे नौजवान छोटे-बड़े उद्यम स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे। इस अभियान को सफल बनाने के लिए सरकार ने अनेक कार्यक्रमों की घोषणा की है जिसके अन्तर्गत 3 वर्ष तक आयकर में छूट और श्रम एवं पर्यावरण सहित विभिन्न तरह की सरकार की जांच से पूरी छूट दिये जाने आदि कई उपाय शामिल हैं। इसके अलावा पेटेंट शीघ्र दिलाने के लिए मुफ्त कानूनी मदद आदि का भी प्रावधान है। इन्नोवेशन आधारित कारोबार के विकास के लिए सरकार फंडिंग भी करेगी जिसके लिए प्रत्येक वर्ष 2.5 हजार करोड़ की दर से 4 वर्ष में 10 हजार करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। अगर सरकार अपनी योजनाओं को प्रचारित-प्रसारित करने के साथ-साथ इन पर शत-प्रतिशत व्यावहारिक रूप से अमल करे और समय-समय पर ''स्टार्ट-अप'' शुरू करने वाले युवाओं की चिन्ताओं को समझकर उन्हें दूर करने का प्रयास करे तो निश्चित रूप से उन एक्सपर्ट्स की बात सही साबित हो सकती है जो मानते हैं कि अगले कुछ सालों में अमेरिका और ब्रिटेन को पीछे छोड़ते हुए ''स्टार्ट-अप'' के मामले में भारत दुनिया का नंबर-एक देश बन सकता है। इसके लिए विकास का नारा लगाने वाली सभी राज्य सरकारों को भी गंभीरता एवं निष्ठा से आगे बढाने के साथ-साथ सच्चाई से योगदान करना होगा।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत देश में पहली बार इन्नोवेशन को गंभीरता से बढ़ावे के लिए चार प्रमुख योजनाओं की घोषणा की गई है जिसके अन्तर्गत (अ) 'अटल इन्नोवेशन मिशन' के जरिये इन्नोवेशन हब को बढ़ावा दिया जायेगा; (ब) बच्चों में इन्नोवेशन बढ़ाने के लिए इन्नोवेशन कोर प्रोग्राम आरम्भ किया जायेगा, (स) 5 लाख स्कूलों से 10 लाख बच्चे चुने जायेंगे जो इन्नोवेशन को बढ़ायेंगे एवं (द) 10 इनक्यूबेटर विश्व स्तरीय बनाये जायेंगे और हर एक को 10 करोड़ रुपये की मदद दी जायेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रधानमंत्री इस कार्यक्रम के द्वारा देश में इन्नोवेशन (नवाचार) आंदोलन को बहुत ही सक्रियता के साथ तेजी से आगे बढ़ाना चाहते हैं। जिससे देश के 5 लाख विद्यालयों में इन्नोवेटिव कार्यकलापों को बढ़ावा देकर 10 लाख छात्र व छात्राओं को सफल इन्नोवेटर बनाकर उनके द्वारा देश में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के उद्यम स्थापित करके आर्थिक प्रगति के साथ-साथ लाखों लोगों को रोजगार प्राप्त होगा। वास्तव में यह एक सराहनीय प्रयास है। एक छोटा सा सफल इन्नोवेटर होने के नाते मैं अपने अनुभवों के आधार पर कह सकता हूँ कि इतने बड़े लक्ष्य को प्राप्त करना एक आसान काम नहीं है। इसके लिए 5 लाख विद्यालयों में ऐसा वातावरण विकसित करना होगा जहाँ छात्र व छात्राओं को इन्नोवेशन करने के लिए अनेक प्रकार के यंत्र, नवाचार से संबंधित साहित्य एवं अनेक प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हों। ऐसे छात्रों के लिए कुछ शिक्षकों को मार्गदर्शक की भूमिका भी निभानी होगी तथा बाहर से भी सफल इन्नोवेटर्स की सहायता लेनी होगी जो अपने अनुभवों के आधार पर इन्नोवेशन की राह में आने वाली परेशानियों को दूर करने में उनका मार्गदर्शन करें।

सौभाग्यवश, लेखक एक साधारणसा सफल इन्नोवेटर होने के नाते पिछले 30 सालों से अनेक प्रतिष्ठित स्कूलों, कॉलेजों आदि में इन्नोवेशन

से संबंधित अनेक संगोष्ठियाँ एवं समारोह में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जा रहा है। वहाँ पर इन्नोवेशन से संबंधित अपने अनुभवों और विचारों को शिक्षकों एवं छात्रों के साथ साझा किया और पाया कि अनेक छात्र व छात्राओं में इन्नोवेशन के प्रति ललक ही नहीं है बल्कि इस दिशा में कुछ नया कार्य करना भी चाहते हैं। परन्तु स्कूल एवं कॉलेजों में उस तरह का वातावरण विकसित नहीं हुआ है। इसलिए शिक्षण संस्थाओं के छात्र व छात्राओं में नवाचार मनोवृत्ति एवं संस्कृति को विकसित करने के उद्देश्य से, लेखक अपने कुछ विचार एवं अनुभव विद्वान पाठकों के साथ साझा करना चाहते हैं।

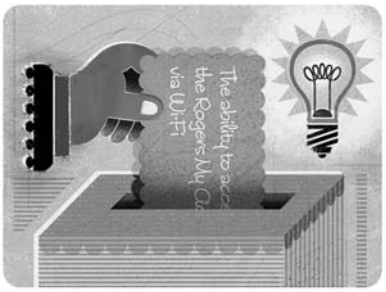

कुछ व्यावहारिक योजनाएँ

इन्नोवेशन को बढ़ावा देने के लिए भी इन्नोवेटिव सोच की आवश्यकता होगी। इन्नोवेटिव सोच का अर्थ है कि नूतन, नवीन, एवं नए तरीके से सोच में बदलाव लाना और यह सर्वविदित है कि नयी दृष्टि से ही परिवर्तन संभव हो सकेगा। इसलिए समाज एवं देश की प्रगति के लिए प्रत्येक वर्ग को लीक से हटकर सोचना होगा तभी हम देश को एक इन्नोवेटिव राष्ट्र के रूप में परिवर्तित करके वांछित दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

इन्नोवेशन एवं शिक्षा

यदि देश को एक इन्नोवेटिव राष्ट्र में परिवर्तित करना चाहते हैं तो हमको इन्नोवेटिव कार्यक्रमों को देश के सभी विद्यालय, कॉलेज, विश्वविद्यालय, तकनीकी संस्थानों में विकसित करना होगा। प्रारंभ में, इन्नोवेशन विषय को जूनियर हाई-स्कूल के पाठ्यक्रम में शामिल करना होगा जो आगे चलकर विश्वविद्यालय स्तर तक, प्रत्येक कोर्स का एक प्रमुख अंग बन जाएगा। प्रत्येक शिक्षण-संस्थान में एक 'इन्नोवेशन क्लब' को स्थापित करने की आवश्यकता है जिसमें विद्यार्थी अपने इन्नोवेटिव विचारों को इन्नोवेटिव उत्पाद में परिवर्तित करने का प्रयत्न कर सकें। इसके अलावा प्रत्येक शिक्षण-संस्थान में एक 'रचनात्मक विचारों के संग्रह' करने के लिए एक 'आइडिया बॉक्स' का प्रावधान भी करना होगा जिसमें विद्यार्थी, शिक्षक, अभिभावक आदि अपने रचनात्मक विचारों को बगैर किसी रोक-टोक के बॉक्स में डाल सकें।

मातृभाषा में शिक्षा की आवश्यकता

हम अपने विचारों को जिस आसानी से अपनी मातृभाषा में प्रदर्शित कर सकते हैं उतनी सहजता से विदेशी भाषा में प्रदर्शित करना संभव नहीं है। इसीलिए दुनिया के सभी प्रमुख देशों में शिक्षा मातृभाषा में दी जाती है। जैसे-जर्मनी में जर्मन भाषा में, फ्रांस में फ्रेंच भाषा में, इज़रायल में हिब्रू, स्पेन में स्पेनिश, चीन में चाइनीज़ भाषा आदि में पढ़ायी जाती है। परन्तु हमारे देश में मातृभाषा और प्रादेशिक भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी भाषा का बोल-बाला बहुत तेजी से बढ़ रहा है जो नये (इन्नोवेटिव) विचारों के लिये बाधक है। हमेशा अनेक तरह के विचार अपनी मातृभाषा में आते हैं न कि किसी विदेशी भाषा में। इसीलिए यह आवश्यक है कि देश के सभी प्रदेशों में शिक्षा मातृभाषा में दी जाये तभी हम नये-नये एवं नवीन विचारों का एक भंडार स्थापित करने में सफल हो सकेंगे।

इन्नोवेशन लैब की आवश्यकता

सभी माध्यमिक शिक्षण संस्थानों आदि में एक इन्नोवेशन लैब को स्थापित करना होगा। जहाँ छात्र/छात्राएँ अपने नये-नये विचारों को इन्नोवेशन में परिवर्तित करने का प्रयत्न कर सकते हैं। इन प्रयोगशालाओं में सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध करानी होंगी। इन्नोवेशन लैब्स को स्थापित करने के लिए धन की भी आवश्यकता होगी। भारत सरकार के अलावा सभी राज्य सरकारों एवं बड़ी-बड़ी औद्योगिक ईकाईयों को इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए समय-समय पर धन देकर इस प्रकार की प्रयोगशालाओं की मदद करनी होगी।

साइंस एवं इन्नोवेशन म्यूजियम की स्थापना

अभी तक भारत सरकार एवं राज्य सरकारों ने साइंस एवं इन्नोवेशन म्यूजियम की उपयोगिता पर ध्यान नहीं दिया। इसीलिए हमारे देश में साइंस म्यूजियम कुछ ही गिने-चुने महानगरों में स्थापित किये गये हैं, उनका लाभ थोड़े से जनमानस तक सीमित रह जाता है और छोटे शहरों के विद्यार्थी उनसे लाभ नहीं उठा पाते। अभी तक ऐसे म्यूजियम में इन्नोवेशन से संबंधित पदार्थ, नमूने आदि उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इस साइंस म्यूजियम में इन्नोवेशन से संबंधित सभी प्रकार की आवश्यक सामग्री उपलब्ध करानी होगी। सुझाव है कि प्रत्येक प्रदेश की राजधानी और 10 लाख से अधिक आबादी वाले नगरों में साइंस एवं इन्नोवेशन म्यूजियम की स्थापना करने पर भारत सरकार एवं राज्य सरकारों को ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे संबंधित क्षेत्रों के छात्र व छात्राएँ उचित लाभ उठा सकें।

इण्डस्ट्रीयल यूनिट्स में विभाग की आवश्यकता

आज के घोर अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा के युग में इन्नोवेशन के बिना कोई भी बड़ी औद्योगिक ईकाई जिंदा नहीं रह सकती। इसलिए इन्नोवेशन की दिशा में कर्मचारियों को थोड़ा-बहुत योगदान करना होगा तथा ऐसा वातावरण विकसित करना होगा कि अधिक से अधिक कर्मचारी इन्नोवेशन के महत्व के बारे में जानें तभी ये संभव हो सकेगा कि वे इन्नोवेशन के क्षेत्र में अपना कुछ सहयोग प्रदान कर सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रति-स्पर्धा का मुकाबला करने

के लिए विशेषरूप से सभी बड़ी-बड़ी इण्डस्ट्रीयल यूनिट्स में भी ''इन्नोवेशन विभाग एवं इन्नोवेशन लैब'' स्थापित करने की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। कर्मचारियों के रचनात्मक विचारों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रत्येक बड़ी औद्योगिक इकाई में इन्नोवेशन मैनेजर/ऑफीसर की नियुक्ति की भी आवश्यकता होगी जो कर्मचारियों का मार्गदर्शन कर सकें।

वैंचर कैपिटल फंड की स्थापना

किसी भी इन्नोवेटिव प्रोडक्ट का यदि व्यवसायीकरण नहीं हो पाता तो उस इन्नोवेशन से समाज को कोई लाभ नहीं मिलता। दूसरे शब्दों में, उस इन्नोवेशन का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए सभी प्रकार के कारगर इन्नोवेशन का व्यवसायीकरण होना आवश्यक है। इन्नोवेशन को उत्पाद में परिवर्तित करने के लिए अनेक प्रकार के साधनों की आवश्यकता होती है। सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता धन की होती है। बिना धन के ये काम संभव नहीं है। बड़ी-बड़ी औद्योगिक ईकाईयों में कार्य करने वाले इन्नोवेटर्स को धन और अन्य साधनों का अभाव खलता नहीं है परन्तु छोटे-छोटे इन्नोवेटर्स को अनेक प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है जिनमें से धन की कमी प्रमुख है। इसलिए यह आवश्यक है कि इन्नोवेटर्स को अपने स्वप्न को साकार करने के लिए धन आसानी से उपलब्ध कराना होगा। सार्वजनिक एवं निजी बैंकों को आगे आकर वैंचर कैपिटल फंड का प्रावधान करना चाहिए। इसके अलावा भारत सरकार को भी वैंचर कैपिटल फंड की अलग से स्थापना करनी चाहिए जिससे इन्नोवेटर्स को धन आसानी से उपलब्ध हो सके।

पेटेंट प्रक्रिया का सरलीकरण

देश में पेटेंट प्रक्रिया की जटिलता के कारण पेटेंट फाइल करने का दायरा बहुत ही सीमित है। इसलिए पेटेंट प्रक्रिया को बहुत अधिक सरल एवं लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है। इन्नोवेटर्स यहाँ आविष्कार/इन्नोवेशन तो कर लेते हैं परन्तु पेटेंट से संबंधित औपचारिकताओं को पूरा करने में सफल नहीं हो पाते, इसलिए आविष्कार/इन्नोवेशन का पूरा लाभ उनको नहीं मिल पाता। यह एक गंभीर समस्या है इसलिए इस स्थिति में काफी सुधार की गुंजाइश है। एक तरीका तो यह है कि जिस प्रकार इंजीनियरिंग छात्रों को मानविकी ह्यूमेनिटीज के कई विषय पढ़ाये जाते हैं, वैसे ही एक विषय पेटेंट प्रक्रिया का भी पढ़ाया जाए ताकि भावी इंजीनियर को पेटेंट प्रक्रिया की जानकारी हो सके। आम तौर पर वकीलों को सिर्फ नियमों की जानकारी होती है और उन्हें तकनीकी ज्ञान देना कठिन काम होता है। अतः इंजीनियरों को नियमों का ज्ञान करा देना चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे स्वयं उसका उपयोग करके लाभ उठा सकें।

इन्नोवेशन लिट्रेचर की आवश्यकता

देश में अभी तक इन्नोवेशन विषय पर साहित्य उपलब्ध नहीं है इसलिए भिन्न-भिन्न स्तर के लिए इन्नोवेशन लिटरेचर की आवश्यकता है इस दिशा में लेखकों को इन्नोवेशन लिट्रेचर लिखने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना होगा। इस प्रकार का साहित्य अंग्रेजी, हिन्दी एवं सभी प्रादेशिक भाषाओं में उपलब्ध कराना होगा। देश के सफल आविष्कार/इन्नोवेशन तथा आविष्कारक एवं इन्नोवेटर्स के विषय में लिखी गई पुस्तकों की संख्या उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसे इन्नोवेशन एवं इन्नोवेटर्स की सफलता की कहानी एवं आत्मकथा के प्रकाशन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। तभी ऐसी पुस्तकों से प्रेरित होकर देश के छात्र व छात्राएँ इन्नोवेशन के प्रति आकर्षित होंगे। इसके अलावा संबंधित लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रत्येक वर्ष अच्छे लेखकों को राष्ट्रीय एवं राजकीय स्तर पर सम्मानित करने की योजना बनाने पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

समाचार पत्रों एवं टी.वी. चैनल्स का सहयोग

देश में इन्नोवेशन प्रोजेक्टस और इन्नोवेशन प्रोग्राम्स की सफलता की कहानी आम जनता तक पहुंचाने के लिए समाचार पत्रों एवं टी. वी. चैनलों की प्रमुख भूमिका हो जाती है इसलिए इस विषय में उनके सक्रिय योगदान की आवश्यकता है। सभी समाचार पत्रों में सप्ताह में कम से कम एक दिन देश, प्रदेशों के अलावा विदेशों में चल रहे इन्नोवेशन कार्यक्रमों के बारे में प्रमुखता से समाचार प्रकाशित करने की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। इसके अलावा देश के सफल इन्नोवेटर्स की उपलब्धियों एवं उनके खट्टे-मीठे अनुभवों के साथ-साथ इन्नोवेशन्स की उपयोगिता के विषय में भी जानकारी दें। वास्तव में टी.वी. चैनल भिन्न-भिन्न प्रकार के इन्नोवेटिव कार्यक्रमों को सक्रिय रूप से प्रसारित करके इस क्षेत्र में अपना विशिष्ट योगदान दे सकते हैं।

उचित मान-सम्मान एवं पुरस्कार

छोटे-छोटे इन्नोवेटर्स को सम्मान एवं पुरस्कार द्वारा प्रोत्साहित करने के लिए अभी तक भारत सरकार के किसी भी मंत्रालय ने कोई योजना नहीं बनाई है। उनका सामान्य योजनाओं के अन्तर्गत ही चयन होता है जो एक स्वस्थ परम्परा नहीं है। नेशनल इन्नोवेशन फाउन्डेशन पिछले कुछ वर्षों से छोटे-छोटे इन्नोवेटर्स के अच्छे कार्यों के लिए प्रोत्साहित करती है और पुरस्कार भी देती है। हाल ही में

नेशनल इन्नोवेशन काउन्सिल ने ग्रामीण क्षेत्रों में इन्नोवेटर्स को प्रोत्साहित करने के लिए एम.पी. फंड से पुरस्कार देने की योजना बनाई है। देखना है कि वास्तव में ग्रामीण क्षेत्र के इन्नोवेटर्स को उनके उत्कृष्ट नवीन कार्य के लिए सम्मान मिलता है या राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण अयोग्य सिफारिशों को मिलता है। वास्तव में, इन्नोवेशन का सही समय पर उचित मूल्यांकन होना चाहिए जिससे सम्मान समय पर मिले और उचित मिले। सम्मान के साथ उचित नगद पुरस्कार राशि भी होनी चाहिए तभी समाज के अन्य लोग विशेषरूप से युवा वर्ग जो आज विज्ञान से दूर भाग रहा है, उसकी ओर आकर्षित होगा। सम्मानों एवं पुरस्कारों की शृंखला जिले स्तर से आरम्भ होकर राष्ट्रीय स्तर तक होनी चाहिए तभी छात्र एवं सामान्य जन इन्नोवेशन की प्रक्रिया से जुड़ पाएँगे।

इन्नोवेटिव आइडियाज़ की आवश्यकता

पूरे राष्ट्र में इन्नोवेशन मूवमेंट को तेजी से बढ़ाने की जरूरत है। विशेष रूप से विद्यार्थियों को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है जिससे उनके सृजनात्मक विचारों को आसानी से पहचान प्राप्त हो। ऐसी प्रतिभाओं को तेजी से हौसला अफजाई करने की आवश्यकता है। कोई भी आविष्कार या इन्नोवेशन सृजनात्मक विचारों के बगैर संभव नहीं है। सृजनात्मक एवं रचनात्मक विचार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान के विकास और उत्पादों के सुधार के लिए आवश्यक हैं। आरंभ से सृजनात्मक विचारों ने मानव समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज तक मानव सभ्यता और संस्कृति का जो विकास हुआ है, वह सृजनात्मक विचारों के कारण ही संभव हो सका है। ''सृजनात्मक विचार कई परमाणु बम से ज्यादा शक्तिशाली हैं। उनकी क्षमता कई सुपर कंप्यूटरों से ज्यादा है और गति अनेक सुपर-सोनिक हवाई जहाजों से भी अधिक हैं'' संक्षेप में कहा जा सकता है कि सृजनात्मक विचार ही वह शक्ति है जो हमें आविष्कारों और नवीनीकरण की ओर ले जाती है। यह सृजनात्मक शक्ति मनुष्य के अंदर से आती है और समाज के विकास के लिए आगे बढ़ती है। सृजनात्मक व मूल विचार आसानी से नहीं आते हैं। इनके आगमन में समय लगता है। वास्तव में केवल रचनात्मक विचार ही हमें आविष्कार/इन्नोवेशन करने या हमारी जीवन स्थितियों को अधिक सहज एवं सुविधाजनक बनाने की ओर अग्रसर कर सकता है।

आईडिया एवं इन्नोवेशन बैंक की स्थापना

तीव्रता से देश के आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में सकारात्मक/रचनात्मक विचारों की भूमिका के महत्व को ध्यान में रखते हुए श्री मोदी जी ने प्रधानमंत्री पद ग्रहण करने के उपरान्त इस दिशा में कुछ ठोस कार्यक्रम को बनाई है। जिसके अन्तर्गत उनके एक वरिष्ठ मंत्री ने जुलाई 2014 को देश में 'आईडिया एवं इन्नोवेशन बैंक' शीघ्र स्थापित करने की घोषणा की थी। सौभाग्यवश, जिसका विधिवत् उद्घाटन पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के कर-कमलों द्वारा 14 अगस्त 2014 को सम्पन्न हुआ। वास्तव में ये घोषणा स्वागत योग्य है।

इन्नोवेशन दिवस मनाने की पहल

देश में वैज्ञानिक सोच, वैज्ञानिक जागरूकता एवं वैज्ञानिक मनोवृत्ति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से लगभग 16 वर्ष पूर्व सन् 2000 से ''इन्नोवेशन दिवस'' मनाने की पहल हुई थी। जो प्रत्येक वर्ष अनेक शिक्षण संस्थानों आदि में पिछले 16 सालों से उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है। नवाचार दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यक्रमों एवं वैज्ञानिक गतिविधियों द्वारा समाज में वैज्ञानिक जागरूकता उत्पन्न हुई और साथ ही साथ बच्चों, छात्र व छात्राओं में वैज्ञानिक एवं नवाचारी सोच में वृद्धि हुई। इससे इन्नोवेशन आंदोलन को सही दिशा के साथ-साथ लाखों बच्चों, किशोरों एवं युवा छात्रों के मस्तिष्कों को तेजस्वी बनाने में लगातार सहायता मिल रही है। इसके अलावा विश्व की एक प्रख्यात् शिक्षण संस्थान सी.एम.एस., लखनऊ पिछले 10 सालों से 15 अक्टूबर को प्रत्येक वर्ष ''अन्तर्राष्ट्रीय नवाचार दिवस'' के रूप में लगातार सफलतापूर्वक मना रहा है। प्रत्येक वर्ष जिसमें देश-विदेश के अनेक शिक्षण संस्थान बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। इस दिवस को प्रत्येक वर्ष 15 अक्टूबर को चयन करने के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण था। 15 अक्टूबर लब्धप्रतिष्ठित वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकविद् एवं नवाचारविद्भारत रत्न डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जी का जन्म दिवस है। नवप्रवर्तन/ नवाचार की चेतना संचारित करने के लिए इससे अधिक महत्वपूर्ण कोई अन्य दिवस नहीं हो सकता। देश के सभी महान राजनेताओं, वैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों आदि ने आरंभ से प्रत्येक वर्ष ''नवाचार दिवस'' मनाने का स्वागत ही नहीं किया बल्कि उसकी उपयोगिता की भी सराहना की। यदि भारत सरकार प्रत्येक वर्ष 15 अक्टूबर को ''नेशनल इन्नोवेशन डे' के रूप में मनाने की घोषणा करे तो कृतज्ञ राष्ट्र की यही डॉ. कलाम के प्रति सच्ची एवं भावभीनी श्रद्धांजलि होगी। आशा है कि भारत सरकार इस विषय पर शीघ्र ही सकारात्मक निर्णय लेगी।

lakshmanratna@yahoo.co.in
❑❑❑

जैवविविधता : संरक्षण और जैव प्रौद्योगिकी

विनीता सिंघल

संयुक्त राष्ट्र की पहल पर वर्ष 2010 से हर वर्ष 22 मई का दिन अंतरराष्ट्रीय जैव विविधता दिवस के रूप में मनाया जाता है। सच तो यह है कि जैवविविधता का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके बिना पृथ्वी पर जीवन असंभव है। जैवविविधता पारिस्थितिक तंत्र को स्थिरता प्रदान कर पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखती है। पौधे तथा जन्तु एक दूसरे से खाद्य शृंखला द्वारा जुड़े होते हैं। यही कारण है कि एक प्रजाति की विलुप्ति दूसरे के जीवन को प्रभावित करती है। इस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र कमजोर हो जाता है। आज जो स्थिति उत्पन्न हुई है और जिसके फलस्वरूप जैवविविधता पर जो खतरा मंडरा रहा है उसके लिए मुख्य रूप से मानव ही उत्तरदायी है। मानव ने न केवल धरती पर अपना अधिकार जमा लिया बल्कि धरती पर मौजूद सभी प्रकार के संसाधनों का भी अंधाधुंध प्रयोग करने लगा। इसका सबसे अधिक नुकसान जिसे उठाना पड़ा, वह था पर्यावरण।

धरती पर उपस्थित जैवविविधता का अध्ययन तीन स्तरों पर किया जाता है। पहला स्तर है पारिस्थितिक तंत्र जिसमें जीवित और निर्जीव दोनों तत्व उपस्थित होते हैं और जो वहाँ पाए जाने वाले संसाधनों के बल पर चलता है। इस तंत्र में तीन प्रकार के घटकों का होना आवश्यक होता है। पहला घटक है पेड़ पौधे जिन्हें उत्पादक का नाम दिया गया है। दूसरा घटक है जीव जंतु जिन्हें उपभोक्ता कहा जाता है। तीसरा घटक ऐसे जीव होते हैं जो अपघटन कर पौष्टिक तत्वों को वापस ला सकें। पारिस्थितिक तंत्र कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे कोई नदी, तालाब या वन। दूसरे स्तर या जाति स्तर पर जैवविविधता किसी स्थान पर जीवों की विभिन्न जातियों को दर्शाती है। यदि एक क्षेत्र की तुलना दूसरे क्षेत्र से या एक पारिस्थितिक तंत्र की तुलना दूसरे पारिस्थितिक तंत्र से की जाए तो जाति स्तर पर इनमें विभिन्नता पाई जाती है। तीसरे स्तर की जैव विविधता होती है आनुवंशिकी के स्तर पर अर्थात एक ही जाति के विभिन्न जीवों में पाई जाने वाली विविधता। किसी भी जीव में पाए जाने वाले गुण उसकी आनुवंशिकी पर निर्भर करते हैं।

जहाँ वानस्पतिक जैवविविधता भोजन, कपड़ा, लकड़ी, ईंधन तथा चारे की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, वहीं औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। विभिन्न प्रकार की फसलें जैसे गेहूँ, धान, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, रागी, अरहर, चना, तोरिया, आदि से हमारी भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जबकि कपास जैसी फसल हमारी कपड़ों की जरूरत को पूरा करती है। सागौन, शाखू, शीशम आदि जैसे वृक्षों की प्रजातियाँ निर्माण कार्यों के लिए लकड़ी उपलब्ध कराती हैं। काष्ठीय प्रजाति के पौधों की लकड़ी ईंधन की जरूरत को पूरा करती है। पौधे शाकभक्षी जानवरों के भोजन के स्रोत होते हैं जबकि जानवरों का मांस मनुष्य के लिए प्रोटीन का महत्वपूर्ण स्रोत होता है। समुद्र के किनारे खड़े मैनग्रोव वन प्राकृतिक आपदाओं जैसे सुनामी जैसे समुद्री तूफानों के खिलाफ ढाल का काम करते हैं।

अंधाधुंध शिकार के कारण जानवरों की बहुत सी प्रजातियाँ विलुप्ति की कगार पर पहुँच चुकी हैं। जानवरों का शिकार आमतौर से दाँत, सींग, खाल, हड्डी, कस्तूरी आदि के लिए किया जाता है। भारत के असम राज्य में शिकार के कारण एक सींग वाले गैंडों की संख्या में अभूतपूर्व गिरावट दर्ज की गयी है। इसी प्रकार पूर्वोत्तर राज्यों, विशेषकर मणिपुर में चीरू नामक जानवर का शिकार उसकी खाल के लिए किया जाता है जिसका उपयोग शाहतूस शाल के निर्माण में होता है। इसके अतिरिक्त, बाघ, तेंदुआ, मगरमच्छ, चिंकारा जैसे जन्तुओं का शिकार खाल के लिए किया जाता है जिससे ये प्रजातियाँ संकटग्रस्त श्रेणी में पहुँच गई हैं। दाँत के लिए हाथियों के शिकार ने उन्हें भारत सहित अन्य देशों में विलुप्ति की कगार पर पहुँचा दिया है।

फसलों तथा पशुओं को नाशकजीवों तथा परभक्षियों से सुरक्षा ने भी बहुत सी प्रजातियों को विलुप्ति की कगार पर पहुँचा दिया है।

विष के इस्तेमाल से एक विशेष प्रजाति को नष्ट करने के प्रयास में कभी-कभी उस प्रजाति के परभक्षी भी विष के शिकार हो जाते हैं जिससे पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य शृंखला अव्यवस्थित हो जाती है और नियंत्रित प्रजाति नाशीजीव का रूप धारण कर जैवविविधता को क्षति पहुँचाती है। कभी-कभी जानबूझ कर प्रवेश कराई गयी कोई प्रजाति, दूसरी प्रजातियों को उनके शिकार, भोजन के लिए प्रतियोगिता, आवास को नष्ट कर अथवा पारिस्थितिक संतुलन को अव्यवस्थित कर उन्हें प्रभावित कर सकती है। उदाहरण स्वरूप हवाई द्वीप में 1883 में गन्ने की फसल को बर्बाद कर रहे चूहों के नियंत्रण हेतु नेवलों को जान-बूझकर प्रवेश कराया गया था जिसके फलस्वरूप बहुत सी अन्य स्थानीय प्रजातियाँ भी प्रभावित हुई थीं।

विश्व की एक तिहाई पशु आबादी तेजी से लुप्तप्रायः स्थिति में पहुँच रही है, अतः जैवविविधता का संरक्षण विशेष तौर पर महत्वपूर्ण है। जैवविविधता के महत्व को स्पष्ट करते हुए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं सांसद डॉ.एम.एस.स्वामीनाथन ने एक बार एक संगोष्ठी में बोलते हुए कहा था कि 'जैवविविधता एक तरह से टिकाऊ खाद्य व्यवस्था, स्वास्थ्य और जीवन से जुड़ी संपूर्ण सुरक्षा पद्धतियों का आधार है।' यही कारण है कि आज जैवविविधता के संरक्षण के लिए जैवप्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

कई बार पौधे के ऊतकों में प्राकृतिक रूप से सूक्ष्मजीव मौजूद होते हैं। इनके कारण माध्यम में फैलने वाले संक्रमण को रोकने के लिए इन्हें नष्ट करना जरूरी होता है। इसके लिए ऑटोक्लेव का उपयोग न करके एंटीबायोटिक या अन्य विसंक्रमण रसायनों का प्रयोग किया जाता है।

अब होंगे परखनली वन

किसी ने ठीक ही कहा है 'वृक्ष हमें अमृत भी देते हैं और विष भी, वृक्ष हमें भोजन भी देते हैं और औषधियां भी, पुष्पों की सुगंध भी देते हैं और कांटों की चुभन भी, हमारी वैज्ञानिक पद्धतियां हमें इस विष को अमृत में परिवर्तित करना सिखाती हैं'। वन किसी भी क्षेत्र के पर्यावरण का एक प्रमुख अंग होता है जिस पर न केवल हमारा पर्यावरण निर्भर है, बल्कि इससे विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चा माल एवं अनेक संसाधन भी उपलब्ध होते हैं। वन जलवायु रक्षक भी होते हैं। इसके बावजूद भी कभी अज्ञानतावश तो कभी जानबूझ कर अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए मानव द्वारा वनों का विनाश किया जाता रहा है। प्रारंभ में जहाँ पृथ्वी के 70 प्रतिशत भूभाग पर वन थे वहीं आज मात्र 16 प्रतिशत क्षेत्र पर ही वनों का विस्तार है। वन विनाश के प्रमुख कारण सरकार की दोषपूर्ण वन नीति, अनियंत्रित पशु चारण, वनों में आग लगना, बढ़ता शहरीकरण, बांध एवं सड़क निर्माण, वनों की अंधाधुंध कटाई, औद्योगिक उत्पादन, कीटों और बीमारियों का प्रकोप आदि हैं।

वन विनाश के अनेक दुष्परिणाम हमारे सामने हैं, जिनमें इमारती एवं जलाने वाली लकड़ी का अभाव, अनेक वृक्ष जातियों का विनाश, भूमि अपरदन में वृद्धि, बाढ़ में वृद्धि, सूखा एवं मरूस्थलीकरण में वृद्धि, भू-स्वखलन एवं जलवायु परिवर्तन प्रमुख हैं। जहाँ तक वन विनाश से जलवायु परिवर्तन की बात है तो इस तथ्य से सभी परिचित हैं कि वन पारिस्थितिक तंत्रों को संचालित करने वाले जैव भू-रसायन चक्रों के नियामक होते हैं। इनमें जलचक्र और कार्बन चक्र मुख्य हैं। वन विनाश के कारण कार्बन चक्र में गड़बड़ी पैदा हो जाती है और यही जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण है। वायुमंडल में तापमान वृद्धि से जल चक्र प्रभावित होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वनों के नष्ट होने से जल नष्ट होता है, जल के न रहने से जीव जगत प्रभावित होता है, भूमि की उर्वरता नष्ट होती है, फलस्वरूप फसलों का उत्पादन कम होता है। जिस देश की संस्कृति ही वनों से जानी जाती थी वहीं पर वनों की दुर्दशा को सुधारने के लिए भरसक प्रयास करने के बावजूद भी कुछ खास नहीं हो पा रहा है। इस विडंबना को जैवप्रौद्योगिकी द्वारा अवश्य दूर करने के प्रयास किए जा सकते हैं। वनों के वृक्षों की जो भी जातियाँ हमारे यहाँ पाई जाती हैं, आमतौर से उनकी बढ़त धीमी गति से होती है। इतना ही नहीं कुछ वन प्रजातियां तो ऐसी हैं जो या तो विलुप्त हो चुकी हैं या फिर विलुप्त होने की कगार पर हैं। अब ऊतक संवर्धन और सूक्ष्मप्रवर्धन जैसी तकनीकों के जरिए कई लाख पौधे वन विभाग को उपलब्ध कराए जा सकते हैं। ऊतक संवर्धित पौधों की बढ़त बहुत तेजी से होती है। इतना ही नहीं बीमारियों से अपनी रक्षा करने की क्षमता भी इनमें होती है। ये पौधे वनों के पुनर्जन्म के लिए वरदान सिद्ध हो रहे हैं। विलुप्त होती पादप प्रजातियों को अब जैवप्रौद्योगिक तकनीकों से बचाना और उगाना संभव होगा।

ऊतक संवर्धन

एक अत्यंत उपयोगी और क्रांतिकारी तकनीक होने के बावजूद ऊतक संवर्धन एक बेहद सरल तकनीक है। इसके लिए बहुत कम उपकरणों की जरूरत होती है। संवर्ध माध्यम में पनप रहे ऊतकों का भविष्य माध्यम पर निर्भर करता है। विभिन्न पौधों के ऊतकों को अलग-अलग प्रकृति के माध्यमों की जरूरत पड़ती है। यह पोषक माध्यम प्रयोगशाला में ऑटोक्लेव में तैयार किया जाता है। ऑटोक्लेव में उच्च दाब पर

कोशिकीय एवं आणविक जीवविज्ञान केन्द्र, हैदराबाद, ने सहायक प्रजनन तकनीक पर कार्य करते हुए कृत्रिम शुक्राणु सेचन द्वारा लुप्तप्राय जीवों के गर्भधारण में सफलता पाई है। भारत में बिना शल्यक्रिया के कृत्रिम गर्भधारण पद्धति द्वारा हिरण के बच्चे का जन्म कराया जाना, इस प्रकार का पहला मामला था।

बनने वाली वाष्प से बनाए जा रहे माध्यम में मौजूद सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं। संवर्ध में मौजूद पौधे के ऊतकों को संतुलित मात्रा और उचित अनुपात में पोषक तत्व भी उपलब्ध कराए जाते हैं। इसके अलावा आवश्यक पादप हार्मोन जैसे कि विटामिन, कार्बोहाइड्रेट आदि भी उपलब्ध कराए जाते हैं क्योंकि प्रारंभिक अवस्था में कोशिकाओं में न तो जड़ होती है और न पत्तियों के ऊतक जो वे अपना भोजन स्वयं बना लें। वैज्ञानिकों ने इसीलिए कुछ खास पौधों के लिए विशेष माध्यम तैयार किए हैं। संवर्ध माध्यम को विटामिन प्रदान करने के लिए यीस्ट की गोलियां डाली जाती हैं। इसके अलावा शर्करा और पादप हार्मोन भी डाले जाते हैं। साइटोकाइनिन वर्ग के सभी हार्मोन कोशिका विभाजन और वृद्धि को तेज करते हैं। माध्यम को समृद्ध करने के लिए हार्मोनों के अलावा कई अन्य रसायन और लवण भी मिलाए जाते हैं।

संवर्धन माध्यम में पानी की मात्रा ही सबसे अधिक होती है इसलिए इसकी गुणवत्ता और शुद्धता पर ध्यान देना भी जरूरी होता है। इसलिए इसमें घुलनशील अशुद्धियों से मुक्त आसुत जल ही मिलाया जाता है। संवर्धित किए जाने वाले पौधे के ऊतक को भी सूक्ष्म जीव रहित करना जरूरी होता है। कई बार पौधे के ऊतकों में प्राकृतिक रूप से सूक्ष्मजीव मौजूद होते हैं। इनके कारण माध्यम में फैलने वाले संक्रमण को रोकने के लिए इन्हें नष्ट करना जरूरी होता है। इसके लिए ऑटोक्लेव का उपयोग न करके एंटीबायोटिक या अन्य विसंक्रमण रसायनों का प्रयोग किया जाता है। पौधे के ऊतकों को संवर्धन माध्यम में डालने के बाद, परखनलियों को एक विशेष प्रकार के कक्ष में रखा जाता है। मनुष्य की तरह पौधों को भी बढ़ने के लिए सही तापमान और उपयुक्त पर्यावरण की जरूरत होती है। इसलिए इस कक्ष का तापमान 25 डिग्री सेल्सियस के आस पास रखा जाता है और यहां प्राकृतिक प्रकाश जैसी रोशनी की व्यवस्था भी रखी जाती है। संवर्ध की वृद्धि को कई रूपों में देखा जा सकता है जैसे कि विभाजित होती कोशिकाओं का समूह जिसे कैलस कहते हैं या फिर जड़, तना और पूरा पौधा।

सूक्ष्म प्रवर्धन

यह एक अन्य प्रमुख तकनीक है। मूल रूप से सूक्ष्म प्रवर्धन और कलम की रोपाई एक जैसी तकनीकें हैं। इसमें प्रत्येक पौधे के लिए अलग रासायनिक संघटन वाले माध्यम की आवश्यकता होती है। वानिकी के विकास के लिए सूक्ष्म प्रवर्धन की तकनीक का व्यापक उपयोग किया जाता है। यह तकनीक प्रयोगशाला में विकसित जैव प्रौद्योगिकी तकनीकों के व्यावहारिक उपयोग का अच्छा उदाहरण है। यूकेलिप्टस के प्रवर्धन में सूक्ष्म प्रवर्धन की तकनीक विशेष रूप से सफल सिद्ध हुई है। इस तकनीक की सभी प्रक्रियाएं सरल और आसान हैं, इसलिए इसे आसानी से अपनाया जा सकता है।

अगार माध्यम में पोषित पौधे के ऊतकों में कोशिकाओं का एक समूह विकसित हो जाता है जिसे कैलस कहते हैं। शुरू में कैलस में एक जैसी अनेक छोटी कोशिकाएं होती हैं जिन्हें वृक्ष के अलग अलग भागों जैसे जड़, पत्ती और तना आदि की कोशिकाओं के रूप में नहीं पहचाना जा सकता। कोशिकाओं को विभाजन के लिए प्रेरित करने के लिए माध्यम में पादप वृद्धि हार्मोन या ऑक्सिन और साइटोकाइनिन जैसे हार्मोन मिलाए जाते हैं। जड़ बनने की प्रक्रिया ऑक्सिन और तना बनने की प्रक्रिया साइटोकाइनिन हार्मोनों द्वारा प्रेरित होती है। धीरे-धीरे माध्यम में रखे पौधे के टुकड़े में वृद्धि होने लगती है। साधारण पौधों में आमतौर से शीर्षस्थ कलिका के जरिए शीर्ष से वृद्धि होती है या पत्तियों के कक्ष में मौजूद कलिकाओं के जरिए वृद्धि होती है।

वृक्षों की बढ़ती मांग को पूरा करने के प्रयासों के फलस्वरूप ट्रापिकल वन अनुसंधान संस्थान तथा टिश्यू कल्चर पायलट प्रोजेक्ट के वैज्ञानिकों द्वारा यूकेलिप्टस टेरेटिकार्निस और पाप्युलस डेल्टायडिस के 9 लाख से अधिक पौधे उत्पन्न किए गए हैं। ऊतक संवर्धन से उगाई गई जातियों का प्रायोगिक क्षेत्रों में परीक्षण किया गया जिसमें 90% से अधिक पौधे जीवित रहे। परखनली वनों में काष्ठीय एवं बांस जैसे वृक्षों को भी उगाए जाने की कही गई है। इन्हें भी ऊतक संवर्धन द्वारा बहुगुणित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पुणे में कार्यरत वैज्ञानिकों ने बांस की सुधरी किस्मों के विकास कार्य को तेजी से बढ़ाने के लिए बांस की दो प्रजातियों डेन्ड्रोकैलेमस ब्रैन्डिसाई और बैम्बूसा अरून्डिनेसिया को चुना और अब बांस में शीघ्र पुष्पन प्रक्रिया एक वास्तविकता बन गई है जिससे बांस के व्यवसाय के रास्ते खुल गए हैं। इस खोज के कारण बांस की मांग और आर्थिक महत्व दोनों ही बढ़ गए हैं।

हिमालय जैवसम्पदा प्रौद्योगिकी संस्थान (आईएचबीटी), पालमपुर, के वैज्ञानिकों ने बांस के ऊतक संवर्धन की तकनीक का मानकीकरण किया है। इसके आलावा, डे.हेमिल्टोनी, डे. एस्पर, डे.गिगैन्टीअस, बैम्बूसा बैम्बूस और बै.न्यूटैन्स के बड़े पैमाने पर जर्महीन संवर्ध उगाए हैं। ऊतक संवर्धित वृक्ष मोटाई और ऊँचाई दोनों में ही बीजों से उत्पन्न वृक्षों की तुलना में अच्छे परिणाम दे रहे हैं जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति भी सुधर रही है। इस प्रौद्योगिकी का आशातीत परिणाम सजावटी पौधों के क्षेत्र में सारे विश्व को चमत्कृत कर रहा है। हमारे देश से भी ऊतक संवर्धित गुलाब, गुलदाउदी, ग्लेडिओलस आदि को आयात किया जा रहा है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसके द्वारा वृक्षों की विलुप्त होती प्रजातियों को बचा कर और पुनः वन रोपण करके पर्यावरण को बचाने की मुहिम को तेज किया जा सकेगा।

लैकोन्सः जीवों के संरक्षण के लिए

वनों के लगातार हो रहे विनाश के कारण अनेक वन्य जीवों जैसे सिंह, बाघ एवं तेंदुआ आदि के लिए प्राकृतिक आवास की विकट समस्या उत्पन्न हो गई है तथा वे अपनी जाति के सदस्यों से अलग-थलग पड़ते जा रहे हैं। स्वयं को बनाए रखने के लिए इन्हें सहज एवं बड़े क्षेत्रफल वाले वनों की आवश्यकता होती है। इन वन्य जीवों के बिखराव से इनमें प्रजनन की समस्या उत्पन्न हो गई है जिसके कारण इनमें पाई जाने वाली आनुवंशिक विविधता की क्षति होती जा रही है और ये बंध्य एवं लुप्त होने की कगार पर पहुँच चुके हैं। इस समस्या से निपटने के लिए सभी विकल्पों पर विचार करते हुए, जैवप्रौद्योगिकी का उपयोग कर एक अनुसंधान परियोजना प्रारंभ करने पर विचार किया गया।

आनुवंशिक विविधता के राष्ट्रीय महत्व को पहचानते हुए सीसीएमबी ने वर्ष 1998 में भारत सरकार के जैवप्रौद्योगिकी विभाग तथा केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण, नई दिल्ली के सम्मुख जैवप्रौद्योगिकी के उपयोग द्वारा लुप्तप्राय प्रजातियों (जैसे शेर व बाघ आदि) को संरक्षित करने से संबंधित एक परियोजना, लुप्तप्राय प्रजाति संरक्षण प्रयोगशाला यानी लैबोरेट्री फॉर द कन्जरवेशन ऑफ एन्डेंजर्ड स्पीशीज (लैकोन्स), का प्रस्ताव रखा। जिसके लिए अंततः मंजूरी मिल गयी। लैकोन्स नामक इस लुप्तप्राय प्रजाति संरक्षण प्रयोगशाला को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम डॉ.ए.पी.जे अब्दुल कलाम ने 1 फरवरी 2007 को देश के नाम समर्पित किया। लुप्तप्राय प्रजातियों के संरक्षण के कार्य में उपयुक्त तकनीकों का विकास करने के लिए निम्न रूप से प्रस्तावित लक्ष्यों की प्राप्ति के उद्देश्य को लेकर लैकोन्स का कार्य आरंभ हुआ।

- डीएनए फिंगर प्रिंटिंग जैसी आधुनिक तकनीकों की मदद से आनुवंशिक परिवर्तन को मॉनिटर करना।
- जीन बैंक की स्थापना से लुप्तप्राय प्रजातियों का वीर्य, अंडे तथा भ्रूणों का हिमीभूत संरक्षण।
- वीर्य विश्लेषण प्रजनन के लिए चयन करने के आशय से वीर्य की गुणवत्ता का अध्ययन।
- डिम्बोत्सर्ग का समय निर्धारण, ताकि गर्भाशय में डिम्ब सफलतापूर्वक प्रवेश कर सके।
- कृत्रिम वीर्य सेचन : पालतू पशुओं के संदर्भ में कृत्रिम वीर्य सेचन तकनीक को पहले से ही सफलतापूर्वक अपनाया जा चुका है, लेकिन वन्य प्राणियों के संदर्भ में इस तकनीक के मानकीकरण के प्रयास अपेक्षित हैं।
- अंतः पात्रे निषेचन तथा भ्रूण स्थानांतरण शुक्राणु के साथ डिम्ब का इन विट्रो संलयन करना तथा इस तरह उत्पन्न भ्रूण को वास्तविक या 'सेरोगेट मां' में प्रतिरोपित करना।
- कोशिका बैंक की स्थापना क्लोनिंग जैसे अनेक भावी प्रयोजनों के लिए अनुकूल परिस्थितियों को उपयोग में लाने के लिए कोशिकाओं को संरक्षित करना।
- क्लोनिंग इस तकनीक को मात्र अत्यंत दुर्लभ प्रजातियों के संदर्भ में उपयोग करने के लिए विकसित करना।

क्लोनिंग प्रौद्योगिकी का उन्हीं प्रजातियों के मामलों में उपयोग किया जाएगा जिनकी जीवित संख्या अपेक्षाकृत काफी कम हो। इस तरह वैज्ञानिक रूप से जन्मे जानवरों को, उनके वन्य प्राणी लक्षणों को बनाए रखने के उद्देश्य से वन सीमांत क्षेत्रों में रखा जा सकता है जहाँ मानव का कम से कम हस्तक्षेप हो। जब भी इन प्रजातियों की संख्या अपेक्षित संख्या से कम हो जाएगी, तब इन जानवरों को जंगलों में छोड़ा जा सकेगा। इसी तरह वीर्य, डिम्ब तथा कोशिका बैंकों की मदद से आवश्यकता के अनुसार जानवर विशेष को पैदा किया जा सकता है। लुप्तप्राय जानवरों की प्रजातियों को इस दुनिया से मिटने से रोकने के लिए यह अंतिम प्रयास होगा। यदि इन प्रजातियों का नाश हो गया तो भावी पीढ़ियां प्रकृति की अद्‌भुत देन माने जाने वाले इन जानवरों को जीवित रूप में देखने से वंचित रह जाएंगी।

vineeta_niscom@yahoo.com

❑❑❑

भविष्य जैविक खेती का

दिनेश मणि

फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के जिए जहाँ एक ओर हमने उन्नत किस्मों और कृषि के आधुनिक तरीकों को अपनाया वहीं दूसरी ओर रासायनिक उर्वरकों एवं नाशीजीव रसायनों का भी अत्यधिक इस्तेमाल किया क्योंकि फसलों में नाशीजीवों से होने वाली हानि भी बहुत अधिक है। इन रसायनों के अत्यधिक इस्तेमाल के कारण गंभीर पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। कीटों में कीटनाशी रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता पैदा होने से बहुत से कीट रसायन की साधारण तीव्रता से मरते नहीं हैं अतः किसान अधिक से अधिक रसायन की तीव्रता का उपयोग करते हैं। वर्तमान में अनेक कीटों की प्रजातियों में विभिन्न रासायनिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो गई है। अधिक तीव्रता के रसायन उपयोग करने से अन्य दूसरे जीवों एवं लाभकारी कीटों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। परजीवी एवं परभक्षी कीट हानिकारक कीटों पर अपना जीवन-चक्र पूरा करते हैं तथा हानिकारक कीटों की रोकथाम करने में कारगर सिद्ध हुए हैं, लेकिन कीटनाशी रसायनों की अधिक मात्रा इस्तेमाल करने से उन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

रशेल कार्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'साइलेण्ट स्प्रिंग' में कीटनाशकों के बिना सोचे-समझे अंधा-धुंध प्रयोग के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने बताया कि कीटनाशकों का इतनी लापरवाही से प्रयोग किया गया है कि वास्तविक हानिकारक कीटों के अतिरिक्त अन्य जीवों को भी नष्ट कर दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि कीटों का जैविक नियंत्रण प्रभावित हुआ और कीटों में रासायनिक कीटनाशकों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न हो गया। कीट पुनः बड़ी संख्या में उत्पन्न हुए और द्वितीयक हानिकारक कीट उत्पन्न हो गए और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गई।

मृदा, पानी और संसाधनों की उपलब्धता से जुड़े पर्यावरणीय एवं परिस्थितिकीय प्रभाव के कारण आधुनिक औद्योगिक कृषि प्रणालियाँ अब इस दुनिया की भूख शांत नहीं कर पायेंगी। सन 2009 के खाद्य संकट ने वैश्विक खाद्य प्रणाली में परिवर्तन की ओर इशारा कर किया है। सन् 1950 के दशक में प्रचलन में आई आधुनिक कृषि संसाधनों एवं जीवाश्म ईंधन पर पूर्णतया निर्भर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने वाली और अत्यधिक उत्पादन के लक्ष्य पर आधारित हैं। यह नीति बदलनी होगी। हम चुनौतियों की शृंखला का सामना कर रहे हैं। संसाधनों की कमी, पानी की बढ़ती कमी और भूमि के क्षरण में हमें इस बात पर पुनर्विचार हेतु बाध्य कर दिया है कि भविष्य की पीढ़ी के मद्देनजर हम किस प्रकार अपने संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ उपयोग कर सकते हैं।

दुनिया के कई देशों के उपभोक्ता अब जैव (आर्गेनिक) खाद्य पदार्थों को प्राथमिकता दे रहे हैं। हमारे देश में अन्य कई देशों की तुलना में अभी भी बहुत कम कीटनाशकों का इस्तेमाल हो रहा है। ऐसे में भारत के कृषि उत्पादों को जैव खाद्य पदार्थों के रूप में लोकप्रिय बनाया जा सकता है। इससे भारत बाकी दुनिया के लोगों के लिए महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। साथ ही जैविक खेती को बढ़ावा देने से कृषि उपादानों पर खर्चा कम हो सकेगा।

सर्वप्रथम 5 नवम्बर 1972 को फ्रांस में इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ आर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट शुरू हुआ। सम्प्रति विश्व के 100 देशों में 650 ऐसे संगठन है। जर्मनी में कुल बाजारू खाद्य का 3-5 प्रतिशत कार्बनिक या जैविक खेती से उत्पन्न किया जाता है, आस्ट्रेलिया में 10 प्रतिशत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में केवल 1-2 प्रतिशत खाद्य जैविक खेती से उत्पन्न किया जाता है। जापान में 1970 से ही 'आर्गेनिक फार्मर्स' ने सहकारी समितियाँ बना ली थीं और 1991 तथा ऐसी 100 समितियाँ थीं। कोरिया में 1978 से जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा हैं चीन में 1990 में कृषि मंत्रालय ने 'हरित खाद्य' की योजना प्रारम्भ की। इस प्रकार सरकार ने इस खाद्य के लिए मानदण्ड निर्धारित कर दिए हैं जिसमें सीमित मात्रा में ही पेस्टीसाइडों का प्रयोग करना होता है। हमारे देश में भी 1996 में कार्बनिक कृषि में मानदण्ड निर्धारित करके कार्य प्रारंभ हुआ है, जिसके अन्तर्गत प्रमाणीकरण तथा विपणन कार्य चालू है।

विश्व के अनेक विकसित राष्ट्रों में कार्बनिक खेती को एक नया आयाम मिला है। पर्यावरण प्रदूषण से त्रस्त एवं भयभीत विकसित राष्ट्रों के नागरिकों द्वारा ऐसे उत्पादों के उपयोग पर बल दिया जा रहा है जो कार्बनिक खेती द्वारा उत्पन्न किए गए हैं। ऐसे उत्पादों को वे कार्बनिक खाद्य कहते हैं।

विश्व के अनेक विकसित राष्ट्रों में कार्बनिक खेती को एक नया आयाम मिला है। पर्यावरण प्रदूषण से त्रस्त एवं भयभीत विकसित राष्ट्रों के नागरिकों द्वारा ऐसे उत्पादों के उपयोग पर बल दिया जा रहा है जो कार्बनिक खेती द्वारा उत्पन्न किए गए हैं। ऐसे उत्पादों को वे कार्बनिक खाद्य कहते हैं। यह किसी अंधविश्वास का सूचक नहीं है अपितु उर्वरकों तथा कीटनाशियों के अत्यधिक प्रयोग से जिस तरह खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता में गिरावट आई है, जिसके कारण समाज में नाना प्रकार के रोगों का प्रसार हुआ है, उससे प्रबुद्ध नागरिक आतंकित हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वस्तुतः रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशियों के अंधाधुंध प्रयोग से फसलों में तमाम विषैले पदार्थ संचित हो रहे हैं। अतः जब इनसे प्राप्त उत्पादों का उपयोग मनुष्यों द्वारा या पशुओं द्वारा होगा तो ये विषैले पदार्थ उनके शरीर में संचित होंगे और उनमें तरह-तरह के रोग उत्पन्न होंगे।

इससे बचने के लिए फसलों को कीटाणुओं व जीवाणुओं का मुकाबला करने के लिए प्रतिरोधी और ज्यादा पोषक तत्वों से परिपूर्ण बनाया जा सकता है। जैविक खेती फसल प्रबंधन में ज्यादा लचीलापन उपलब्ध करा देती हैं। पारंपरिक कीटनाशकों व शाकनाशियों पर निर्भरता कम करती हैं, पैदावार बढ़ा देती है और उत्पादों के स्वच्छ व उच्चतर दर्जे का उत्पादन करती हैं। कम से कम आठ देश पहले ही जैविक फसलों को अपना चुके हैं। पिछले साल दुनिया भर में इन फसलों के तहत आने वाला क्षेत्रफल 2.78 करोड़ हैक्टेयर से भी ज्यादा था। जैव-प्रौद्योगिकी का व्यवसायीकरण करने वाला पहला देश चीन था। लेकिन जल्दी ही अमेरिका ने चीन को पीछे छोड़ दिया। अब जैविक फसलों के तहत आने वाले क्षेत्रफल का 74 प्रतिशत हिस्सा अमेरिका में है। महत्व के क्रम में अन्य देश हैं- अर्जेंटीना, कनाडा, आस्ट्रेलिया, मैक्सिको, स्पेन, फ्रांस, और दक्षिण अफ्रीका। अब तक जो जैविक फसलें व्यावसायिक स्तर पर विकसित की जा चुकी है उनमें सोयाबीन, मक्का, कपास, रैपसीड और आलू शामिल हैं। इनमें से पहली दो फसलों का ही जैविक फसलों के तहत आने वाले कुल क्षेत्रफल में से 82 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा है। दुनिया भर में जैविक फसलों का कुल बाजार मूल्य लगभग 1.5 अरब डॉलर है और इसमें निरंतर वृद्धि ही हो रही है।

जैविक खेती वस्तुतः नए सिरे से नए मानदण्डों के अन्तर्गत कृषि की नवीन विधा को अपनाने का आह्वान है। विशेषतया सब्जी उत्पादों के बढ़ते निर्यात का दृष्टि से जैविक खेती महत्वपूर्ण है। सब्जियों के उत्पादन में न केवल अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग होता है अपितु, अनेक प्रकार के कीटनाशियों का प्रयोग आवश्यक है किन्तु अधिक कीटनाशियों के लगातार प्रयोग से कीटों में इन रसायनों के प्रति सहनशीलता या प्रतिरोधकता बढ़ती जा रही है। अधिक कीटनाशी कीटों को मारने में नहीं अपितु फसलों (विशेषकर सब्जियों) पर अपना पर्याप्त अवशेष छोड़ने में योगदान करते हैं। ये अवशेष सब्जियों के द्वारा मनुष्यों के शरीर में पहुँचकर विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। अतएव जैविक खेती के द्वारा इन उर्वरकों के प्रयोग को घटाना होगा और जैविक नियंत्रण द्वारा कीटों को नियंत्रित करना होगा। उदाहरणार्थ, टमाटर, भिण्डी में छेद करने वाले कीटों का नियंत्रण, ट्राइकोग्रेमा द्वारा, भिंडी, मिर्च तथा लोबिया के माहू कीट का नियंत्रण क्राइसोपेरला कोर्निया द्वारा सम्भव हैं। टमाटर में छेद करने वाले कीट के नियंत्रण हेतु एक विषाणु (एच.ए.एन.पी.वी.) बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इस तरह कीटनाशियों का प्रयोग धीरे-धीरे घटाया जा सकता है। वैसे जैविक खेती से अधिकांश खाद्यान्नों की गुणवत्ता में सुधार सम्भव है किन्तु सब्जियों की गुणवत्ता सुधारने के लिए नए-नए आयाम ढूँढ़े जा रहे हैं। उदाहरणार्थ टमाटर, गाजर और कद्दू (काशीफल) में बीटा कैरोटीन (विटामिन ए का स्रोत) भी मात्रा बढ़ाने वाले जनन-द्रव्य की खोज की जा चुकी है। इसी तरह मिर्च, टमाटर में ऐस्कर्बिक अम्ल (विटामिन सी) की मात्रा बढ़ाने वाला जनन-द्रव्य भी खोजा जा चुका है। सब्जियों में प्रोटीन की मात्रा तथा गुणवत्ता के सुधार की भी आवश्यकता है। जनन-द्रव्यों से पत्तीदार सब्जियों में आयरन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। सब्जियों में पाये जाने वाले कुछ विपरीत कारकों यथा- आलू में सोलेनीन, टमाटर में ट्रोमैटीन, पत्तीदार सब्जियों में ऑक्सैलेट की मात्रा कम करने की आवश्यकता है।

वानस्पतिक कीटनाशी

वानस्पतिक कीट विष पौधे के सभी भागों जैसे- जड़, पत्ती, तना, फूल एवं बीजों से प्राप्त होते हैं, वर्तमान में समेकित कीट प्रबंधन में वानस्पतिक कीटविषों के प्रयोग पर विशेष बल दिया जा रहा है। इनमें तम्बाकू से प्राप्त निकोटीन, क्राइसेन्थमम में फूलों से प्राप्त पाइरेथ्रम, नीम से प्राप्त ऐजेडीरेक्टिन प्रमुख हैं।

प्राकृतिक रूप से उपस्थित पौधों के रसायन कीटों के व्यवहार तथा कार्यिकी को प्रभावित करते हैं, इसलिए कीटों मे इन रसायनों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न होना आसान नहीं होता। पौधों से प्राप्त कीटनाशक बिना किसी को क्षति पहुँचाते आसानी से अपने अवयवों में टूट जाते हैं। कीटों की संख्या को बढ़ने से रोकने वाले सक्रिय रसायन (वानस्पतिक कीटनाशक) बहुत सारे पौधों में भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। ये पौध-उत्पाद वो द्वितीय उपावयव है जो कीटों की मौलिक, क्रियात्मक व जैव रासायनिक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं एवं ये आसानी से क्षरित होते हैं। पौधों की 2121 प्रजातियों में कीट नियंत्रण पौध-उत्पाद गुण पाये गये है, इनमें से 1005 में कीटनाशी, 384 में भोजनरोधी, 297 में प्रतिकर्षक, 31 में कीट वृद्धि निरोधी एवं 27 में कीट आकर्षण गुण पाये गये हैं। देश में लगभग 8 करोड़ नीम के पेड़ हैं जिनसे 0.7 करोड़ टन नीम के फलों का उत्पादन हो सकता है। आज 71 व्यावसायिक नीम आधारित कीट रसायन घोल फसलों पर इस्तेमाल करने के लिए उपलब्ध हैं। इनको समेकित प्रबन्ध कार्यक्रम में प्रयोग करके वातावरण पर विषैले कीटनाशकों के प्रभाव को कम किया जा सकता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि व्यावसायिक नीम आधारित कीट रसायनों के उपयोग की मात्रा लगभग 500 मि. लीटर प्रति हैक्टेयर से 5 लीटर प्रति हैक्टेयर तक है। इसमें सुधार लाने की आवश्यकता है। बाजार में उपलब्ध नीम आधारित कीट रसायनों की गुणवत्ता पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। वानस्पतिक कीटनाशियों का प्रयोग हानिकारक कीटों तथा व्याधियों की रोकथाम के साथ-साथ मृदा की उर्वरता को बढ़ाने में भी सहायक है।

प्राकृतिक रूप से उपस्थित पौधों के रसायन कीटों के व्यवहार तथा कार्यिकी को प्रभावित करते हैं, इसलिए कीटों मे इन रसायनों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न होना आसान नहीं होता। पौधों से प्राप्त कीटनाशक बिना किसी को क्षति पहुँचाते आसानी से अपने अवयवों में टूट जाते हैं।

जैविक नियंत्रण

प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रणाली में नाशीजीवों पर नियंत्रण उनके प्राकृतिक शत्रुओं के द्वारा स्वतः ही बना रहता है, लेकिन विकृत पारिस्थितिक प्रणाली में नाशीजीवों की संख्या बढ़ जाने पर अधिक संख्या में परजीवी एवं परभक्षी कीड़ों का इस्तेमाल करना पड़ता है। जैविक नियंत्रण कार्यक्रम में इन प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण ओर उनके संवर्द्धन को पहली प्राथमिकता दी जानी चाहिए। समेकित प्रबंधन कार्यक्रमों में परजीवी पर परभक्षी कीटों के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए ट्राइकोग्रामा, क्राइसोपरला, लेडीबर्ड भ्रंग आदि कीटों का प्रयोगशालाओं में कृत्रिम आहार पर उत्पादन कर व उनकी संख्या बढ़ाकर उन्हें प्रयोग में लाया जा रहा है। इससे कीटनाशी दवाओं के छिड़काव में कटौती करके, फसल पर आने वाली लागत में कमी होती है तथा प्राकृतिक संतुलन की रक्षा होती है। हमें परजीवी एवं परभक्षी कीटों की ऐसी प्रजातियाँ विकसित करनी चाहिए जो विपरीत परिस्थितियों में भी जयादा कारगर सिद्ध हों। इन परजीवी कीटों में रासायनिक कीटनाशी दवाओं के प्रति प्रतिरोधी क्षमता को विकसित करना भी आवश्यक है।

सूक्ष्मजीवों का प्रयोग कर हानिकारक कीटों, विभिन्न रोगों व खरपतवारों को नियंत्रण करने की विधि जैविक नियंत्रण कहलाती है। इस विधि में प्रयोग आने वाले सूक्ष्म-जीव 'जैव नियंत्रक कारक' कहलाते हैं

हानिकारक कीटों या रोगों के नियंत्रण के लिए उपयोग में लाये जाने वाले सूक्ष्म-जीवों को क्रमशः जैव कीटनाशी या जैव रोगनाशी कहते हैं। जैव कीटनाशी जीवाणु, विषाणु, फफूँद, प्रोटोजोआ आदि हो सकते हैं। इनके प्रयोग से कीटों में इनके प्रति प्रतिरोधी क्षमता विकसित होने की संभावना भी नहीं रहती है। इनको कीटा नाशी रसायनों के साथ प्रयोग करने पर काफी प्रभावी पाया गया है। ये कीटों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित कर उनको निष्क्रिय कर मार देते हैं। जैव कीटनाशी का मुख्य जीवाणु बैसिलस थूरिजेन्सिस है। इस समय भारतवर्ष में बी.टी. पर आधारित जैव कीटनाशी का विपणन किया जा रहा है। जैव कीटनाशकों का वर्णन इस प्रकार है-

• बी.टी. जीवाणु-आजकल नाशीकीट के नियंत्रण हेतु बैसिलस थूरिन्जियेन्सिस नामक जीवाणु का प्रयोग बहुतायत से किया जा रहा है। निजी कम्पनियाँ भी इस कीटनाशी के उत्पादन में सहयोग कर रही हैं। यह जीवाणु डेल्टा एण्डोटॉक्सिन नामक विषैला द्रव्य कीटों के पेट के अन्दर छोड़ता है। फलस्वरूप कीट रोग ग्रस्त होकर मर जाता है। रोग ग्रस्त सूड़ियां सुस्त हो जाती हैं, मुँह से द्रव्य निकालती हैं, बाद में मर जाती हैं। ऐसे रोगग्रस्त सूंड़ियों से एकत्रित स्पोर का चूर्ण बनाया जाता है जिनका जीवन 6-12 माह का होता है। भारतीय बाजारों में बायोलेप, हाल्ट एवं डेलफिन जैसे नामों से बी.टी. कीटनाशी लोकप्रिय है बी.टी. जीवाणु अल्ट्रा वॉयलेट प्रकाश से प्रभावित होता है। अतः दोपहर बाद ही इस जीवाणु का कीट नियंत्रण में प्रयोग किया जाना लाभप्रद है। इस जीवाणु से गण डिप्टेरा की सूँड़िया ही अधिक प्रभावित होती हैं, बी.टी. जीवाणु का एक ग्राम का एक लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है। खेत में इसका प्रयोग एक समान होना

बी.टी. जीवाणु अल्ट्रा वॉयलेट प्रकाश से प्रभावित होता है। अतः दोपहर बाद ही इस जीवाणु का कीट नियंत्रण में प्रयोग किया जाना लाभप्रद है।

चाहिए। ऐसे क्षेत्र में जहाँ रेशम कीट पाले जा रहे हों, बी.टी. जीवाणु का प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा रेशम कीट की सूँड़ियाँ मर सकती हैं।

• ट्राइकोकार्ड-यह ट्राइकोग्रामा फेसिएटम जाति की छोटी ततैया जो अंड परजीवी है, पर आधारित है। ये लेपिडोप्टेरा वर्ग के लगभग 200 प्रकार के हानिकारक कीटों के अंडों को खाकर जीवित रहती है। मादा ट्राइकोग्रामा अपने अण्डे हानि पहुँचाने वाले कीटों के अण्डों के बीच देती है। ट्राइकोग्रामा का जीवन-चक्र हानिकारक कीटों के अण्डों के बीच चलता है। ट्राइकोकार्ड की पूर्ति पोस्टकार्ड के रूप में होती है, इसमें एक कार्ड पर लगभग 20,000 अण्डे होते हैं। खेतों में जैसे हानिकारक कीट दिखाई दें, इन कार्ड के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर खेत में अलग-अलग स्थान पर पत्तियों के जोड़ पर धागे से बाँध देना चाहिए। ट्राइकोकार्ड का प्रयोग करने से पहले फ्रिज में या बर्फ के डिब्बे में रखें। इसका प्रयोग शाम के समय करना चाहिए। प्रयोग के पहले या बाद में रसायन का छिड़काव नहीं करना चाहिए। इसका प्रयोग सभी फलों, सब्जियों, गन्ना, कपास, सूर्यमुखी व दलहनी फसलों में प्रभावशाली है। बड़ी फसलों में 7 कार्ड/हेक्टेअर व छोटी फसलों में 5 कार्ड/हेक्टेयर का प्रयोग 10-15 दिन के अन्तराल पर 3-4 बार लाभदायक होता है।

• क्राइसोपर्ला-क्राइसोपर्ला हरे रंग के कीट हैं। इन कीटों के लार्वा सफेद मक्खी, माहू, जैसिड, व थ्रिप्स आदि के अण्डों और लार्वा को खाते हैं। इनका प्रयोग इन हानिकारक कीटों से प्रभावित खेतों व फसलों हेतु लाभदायक हैं। क्राइसोपर्ला के अण्डों को कोरसियरा के अण्डों के साथ लकड़ी के बक्से में बुरादे के साथ दिया जाता है। इनके लार्वा कोरसियरा के अंडों को खाकर व्यस्क बनते हैं। इनका प्रयोग 50,000-1,00,000 लार्वा या 500-1000 व्यस्क प्रति हेक्टेअर एक हफ्ते में दो बार करना चाहिए।

• लेडीबर्ड बीटल-यह काले रंग का आस्ट्रेलियन बीटल है। इनका प्रयोग अंगूर, शरीफा, गन्ना की फसल में मिलीबग क्रिप्टोलीमस और स्केल कीट हेतु लाभदायक पाया गया है। इसे लगभग 600 वयस्क प्रति एकड़ की दर से फसलों में छोड़ना चाहिए। इसके शिशु व प्रौढ़ दोनों ही कीटों को खाते हैं।

• ब्यूवेरिया बैसियाना-यह फफूँदी से बना जैव उत्पाद है। यह विभिन्न प्रकार के फुदके, फली छेदक, दीमक, बाल वाले कैटरपिलर, आदि को नियंत्रित करता है। यह फलों, फूलों, सब्जियों के लिए लाभदायक है। इसकी 1 किग्रा. मात्रा को 30-40 किग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ मिलाकर लगभग 7-15 दिनों तक नम करके रखने के बाद अन्तिम जुलाई से पहले 1 हेक्टेयर खेत में फैलाते है या इसके 1 किग्रा. पाउडर को 300-400 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव 12-15 दिन के अन्तर पर शाम के समय करना चाहिए। इसके प्रयोग से कीटों के अंडे, लार्वा प्यूपे व वयस्क सभी अवस्थाएँ पंगु व निष्क्रिय होकर मर जाती हैं।

• न्यूक्लियर पॉलिहेड्रोसिस वायरस (एन.पी.वी.)-एनपीवी विषाणु केवल इंगित कीट को रोगग्रस्त कर नियंत्रित करते हैं। कीटों की सूंड़ी जैसे ही विषाणु से संक्रमित फल, फूल, पत्ती या फल खाती है, ये विषाणु सूंड़ी के आहारनाल की कोशिकाओं से होती हुई न्यूक्लियस में पहुँचकर अधिक मात्रा में वृद्धि कर जाती हैं फलस्वरूप संक्रमित सूँड़ी पौधे के ऊपरी भाग पर चढ़कर लटक जाती है। सूंड़ी का शरीर गलने लगता है, सूँड़ी सुस्त हो जाती है, काली पड़ जाती है। पूरी तरह से संक्रमित सूँड़ी का शरीर फट जाता है एवं सफेद रंग का विषाणु मिश्रित तरल पदार्थ बाहर आने लगता है एवं सूँड़ी मर जाती है। विषाणु की संख्या सूक्ष्मदर्शी के देखकर इनकी सान्द्रता का पता करते हैं। हमारे देश में संवर्धित एवं विकसित एन.पी.वी. को चना, अरहर, टमाटर, सूरजमुखी, कपास मूँगफली इत्यादि फसलों में प्रयोग किया जा रहा है।

• परजीवी ब्रेकान-इस परजीवी के शिशु की तरह-तरह के बेधक कीटों की सूँड़ी पर आश्रित होकर उन्हें खा जाते हैं। कपास, सब्जियों, नारियल जैसी फसलों में प्रति एकड़ 500-1000 वयस्क डालने से ये लाभ मिलता है।

• पार्थीनियम बीटल-पार्थीनियम खरपतवार को नष्ट करने हेतु 'जाइग्रोगामा' नामक कीट को प्रयोग किया जा रहा है। यह कीट इस खरपतवार को खाकर समाप्त कर देता है। पार्थीनियम (गाजर घास) फसलों में उगने के साथ ही कुछ मनुष्यों और पालतू पशुओं में खुजली तथा अन्य बीमारियाँ फैलाते हैं। इसके अतिरिक्त नींबू के स्केल कीट का वैलेडिया भृंग द्वारा, नारियल के कीट का ब्रेकान द्वारा चना फली बेधक का कैमपोलेटिस क्लोरीडी से नियंत्रण किया जा रहा है।

• ट्राइकोडर्मा-यह एक मित्र कवक है, जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी में पाया जाता है। इसकी अनेक प्रजातियाँ हैं जिसमें से 'ट्राइकोडर्मा विरिडी' प्रजाति प्रमुख रूप से प्रभावी कवकनाशी के रूप में उत्पादकों द्वारा बाजार में विपणन किया जा रहा है। ट्राइकोडर्मा अनेक प्रकार से कार्य करता है। यह रोगकारक कवक के तंतुओं को लपेटकर उनमें भोजन प्राप्त करता है और अन्त में शत्रु कवक को नष्ट कर देता है। यह एक आवरण बनाकर रोगजनित शत्रु कवक से पौधों की रक्षा करता है। इसका विकास शीघ्र होने के कारण अपने कवक

तन्तुओं और पौधों की जड़ों के आस-पास फैला देता है जिससे शत्रु कवक पौधे के पास नहीं आ पाते हैं और रोग उत्पन्न नहीं कर पाते हैं।

ट्राइकोडर्मा जैव रोगनाशक, जैव कीटनाशी व जैव उर्वरक है। ट्राइकोडर्मा फसलों में जड़ तथा तना गलन/सड़न, उक्ठा (फफूँदी जनक रोग) और सूत्रकृमि व्याधि को नियंत्रित करने हेतु प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग दलहनों, धान, गेहूँ, गन्ना, कपास, सब्जियों, फलों, फलवृक्षों पर करना लाभप्रद है। ट्राइकोडर्मा का प्रयोग कन्द, कार्प, राइजोम, नर्सरी पौधों को उपचार 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा को एक लीटर पानी में घोल बनाकर डुबोकर करें एवं इसके बाद बुआई या रोपाई करें। बीजशोधन के लिए 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा एक किला बीज में मिलाकर उपचारित कर बोये। इसके द्वारा बीजों का उपचार छायादार स्थान में करें। मृदा शोधन के लिए एक किलो ट्राइकोडर्मा को 25 किग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर, हल्के पानी को मिलाकर, छाया में रखें इसके बाद बुआई के पहले प्रयोग करें। यह मात्रा एक एकड़ के लिए पर्याप्त है। ट्राइकोडर्मा के प्रयोग के पहले या बाद में किसी रासायनिक फफूँदीनाशक व अन्य रसायनों का प्रयोग न करें। पादप सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिए ट्राइकोडर्मा के साथ नीम की खली का प्रयोग लाभप्रद होता है। इसके अलावा ट्राइकोडर्मा हारजीएनम और ग्लियोक्लेडियम वायरेन्स से काली मिर्च में लगने वाले 'फाइटोफ्थोरा कैपसिसी' का संक्रमण रोका जा सकता है। यह बाजार में सभी जगह तरल पदार्थ एवं चूर्ण के रूप में उपलब्ध हैं। इसके एक ग्राम में एक करोड़ कालोनी बनाने वाली इकाइयाँ होती है। इसको अन्य बहुत से वाहक के साथ भी बनाया जाता है। इसका अच्छा परिणाम पाने के लिए खेत में गोबर की खाद, हरी खाद व उपर्युक्त नमी भी होनी आवश्यक है। इसका प्रयोग करते समय हाथों को आँख व मुँह में न लगायें। उपचार करने के बाद हाथों को साबुन लगाकर अच्छे से धो लें। ट्राइकोडर्मा का भण्डारण धूप में या गर्म स्थानों पर नहीं करना चाहिए। यह निपटाट, अनमोलडर्मा, एकेडर्मा, संजीवनी, बायोडर्मा, इकोडर्मा आदि नामों से बाजार में बिक रहा है।

ब्यूवेरिया बैसियाना फफूँदी से बना जैव उत्पाद है। यह विभिन्न प्रकार के फुदके, फली छेदक, दीमक, बाल वाले कैटरपिलर, आदि को नियंत्रित करता है। यह फलों, फूलों, सब्जियों के लिए लाभदायक है।

पराजीनी पौधे

आजकल विभिन्न फसलों में बेसिलस थूरिजिएन्सिस नामक जीवाणु के जीन को प्रवेश कराकर ऐसे पौधे तैयार किये जा रहे हैं जिससे जीवाणु की उपस्थिति के कारण कीटों के विरूद्ध कीटनाशक गुण आ जाते हैं। इस प्रकार के पौधों का विकास हीलियोथिस कीट पर नियंत्रण हेतु किया जा रहा है। भारत सरकार ने जैव उर्वरकों प्रोत्साहित करने के लिए देश के सात राज्यों में राष्ट्रीय परियोजनायें शुरू की हैं। देश के शीर्ष संस्था के रूप में राष्ट्रीय जैव उर्वरक केन्द्र की स्थापना गाजियाबाद में की गयी है। इसके अलावा देश में 6 क्षेत्रीय जैव उर्वरक विकास केन्द्र क्रमशः जबलपुर, नागपुर, हिसार, बैंग्लुरू, इम्फाल व भुवनेश्वर में स्थापित किया गया है। ट्राइकोडर्मा, ट्राइकोग्रामा तथा एन.पी.वी. का उत्पादन उत्तर प्रदेश में 6 आई.पी.एम. प्रयोगशालाओं हरदोई, आजमगढ़, वाराणसी, जालौन, बरेली तथा मथुरा के साथ कानपुर, फैजाबाद व मोदीपुरम (मेरठ) कृषि विश्वविद्यालयों तथा भारत सरकार की दो प्रयोगशालाओं, गोरखपुर व लखनऊ में एवं क्राइसोपर्ला का उत्पादन, मेरठ विश्वविद्यालय में तथा सभी जैव कारकों व जैव कीटनाशी का उत्पादन अनेक निजी कम्पनियों में भी किया जा रहा है।आठ नये जैव कीटनाशकों को तथा दो पायलट जैव नियंत्रक प्रायोगिक संयंत्रों का विकास किया गया है। आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण फसलों के लिए जैव नियंत्रकों जैसे-बैकुलोवायरस एंटागोनिस्टिक्स, पैरासाइट प्रीडेटर्स बैक्टीरिया तथा फफूँदी के बड़े स्तर पर उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी को उद्योगों को स्थानान्तरित किया गया है।

कृषिगत अथवा पारिस्थितिकीय नियंत्रण

हमारी प्राचीन कृषि पद्धति बहुत ही उपयुक्त एवं पर्यावरण के अनुकूल थी। मौसम में परिवर्तन भी कम देखे जाते थे लेकिन आज की वैज्ञानिक कृषि प्रणाली में कीटों के संवर्धन में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई है अतः सभी कृषिगत क्रियाएं फसल हेतु उपयुक्त पारिस्थितिकी को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए। यदि फसल के वातावरण को परिवर्तित किया जाता है तो वह पारिस्थितिकीय नियंत्रण कहलाता है जबकि कृषिगत प्रबन्ध में वातावरण में सोद्देश्य हेरफेर करते हैं जिससे कीटों की संख्या में कमी आती है। कृषिगत उपायों में के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाता है-

- समय से जुताई, गुड़ाई, बुआई, निराई, सिंचाई करना चाहिए साथ ही रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग करना चाहिए।
- फसलों में पौध से पौध एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी, फसल के अन्दर एवं पड़ोस में उगाई गई फसलें, फसल चक्र, एवं फसल के बाद

ट्राइकोडर्मा–यह एक मित्र कवक है, जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी में पाया जाता है। इसकी अनेक प्रजातियाँ हैं जिसमें से 'ट्राइकोडर्मा विरिडी' प्रजाति प्रमुख रूप से प्रभावी कवकनाशी के रूप में उत्पादकों द्वारा बाजार में विपणन किया जा रहा है।

दूसरी फसल का अंतराल, बुवाई अथवा रोपाई के समय को ध्यान में रखकर कीटों की गतिविधियों में कमी की जा सकती है।

- मिश्रित खेती, पट्टीदार खेती तथा प्रपंच फसलें उगाकर कीटों के प्रकोप में कमी लाई जा सकती है।
- पोटैशियम उर्वरकों के संतुलित उपयोग से कीटों की संख्या में कमी आती है।

इस प्रकार किसानों द्वारा किये जाने वाले कृषि कार्यों जैसे भूमि की जुताई, स्वच्छ बीज का प्रयोग, सिंचाई का नियमन, बुआई व कटाई के समय का सुनियोजन, ट्रेप फसलों का प्रयोग, सुनियोजित फसल-चक्र व फसल अवशेषों के विघटन इत्यादि द्वारा नाशीजीवों का नियंत्रण किया जाता है। इन्हें ठीक तरीके से अपनाने में काई अतिरिक्त लागत भी नहीं आती है। जिस कीट विशेष को नष्ट किया जाना है अगर उसके जीवन वृतान्त, व्यवहार, आवास व पारिस्थितिकी को पूरी तरह समझ लिया जाए तो खेती विषयक पद्धतियों को परिष्कृत किया जा सकता है। इन तरीकों अपनाने में अतिरिक्त लागत नहीं आती है लेकिन किसानों को नाशीजीवों के प्रबन्ध में इनसे होने वाले लाभों के बारे में पर्याप्त जानकारी देना आवश्यक है। सही समय पर विभिन्न क्रियायें अपनाने से नाशीजीवों एवं व्याधियों की समस्याओं को काफी हद तक रोका जा सकता है।

प्रतिरोधी पोषक पौधों को उगाना

प्रायः किसी फसल का जहाँ एक पौधा कीटों के प्रति अति संवेदनशील होता है तो वहीं पड़ोसी पौधा कीट प्रतिरोधी हो सकता है। प्रतिरोधी पौधे या तो कीटों द्वारा पसन्द नहीं किये जाते हैं या सहिष्णु होते हैं अथवा कीटों को पोषक आहार नहीं प्राप्त होता हैं अथवा कीटों को पोषक आहार नहीं प्राप्त होता है फलस्वरूप उनका आकार एवं विकास प्रभावित होता है। वे सभी पौधे जिनमें कीटों के प्रति कोई भी प्रतिरोधी लक्षण पाया जाय, प्रतिरोधी पोषक पौधा या प्रजाति कहलाती है। प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिरोधी प्रजातियों को खेती में उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए अन्यथा प्रतियोगी प्रजातियाँ टूट जाती हैं, ऐसा कीटों के बायोटाइप विकसित होने से होता है भारतवर्ष में भी नाशीकीट प्रतिरोधी प्रजातियाँ विकसित की गई हैं। धान की प्रतिरोधी प्रजातियां अधिकतर प्रदेशों में विकसित की गई है।

यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण

जब कीटों को किसी यंत्र की सहायता या किसी भौतिक विधि से भरा जाता है तो वह यांत्रिक या भौतिक नियंत्रण कहलाता है, इसके द्वारा तुरन्त परिणाम प्राप्त होते हैं, इसीलिए किसानों में यह विधि काफी रोचक और लोकप्रिय है। यांत्रिक उपायों में प्रकाश प्रपंच तकनीक अधिक प्रयोग में लाई जाती है। प्रकाश प्रपंच में पेट्रोमेक्स/लालटेन को एक चिपचिपे मोबिल ऑयल से भरे टब में रखकर खेत में रख देते हैं, तो रात में निकालने वाले नर व मादा कीट प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं और टब में गिरकर मर जाते हैं। कीट नियंत्रण के भौतिक उपायों में भौतिक साधनों जैसे ताप, प्रकाश, ध्वनि, बिजली आदि का प्रयोग करके कीटों की संख्या में कमी लाई जाती है।

फैरोमोन का प्रयोग

प्रत्येक कीट जाति का अपना अलग फैरोमोन रसायन होता है, प्रायः मादा कीट एक प्रकार का हार्मोन निकालकर नरकीट को मैथुन हेतु आकर्षित करते हैं। वैज्ञानिकों ने अनेक कीटों के इस व्यवहार को ही केवल नहीं पहचाना बल्कि हार्मोन के रसायन को भी पहचाना है। उन्हीं रसायनों को कृत्रिम रूप से संश्लेषित कर इनके प्रयोग हेतु कई प्रकार के सेप्टा एवं प्रपंच को भी विकसित किया है। इनका प्रयोग अब नर कीटों को एकत्रित कर क्षेत्र में उनकी उपस्थिति एवं घनत्व को जानने के लिए कर रहे हैं। फैरोमोन रसायन प्रकृति के अनुरूप होते हैं। कीट नियंत्रण की अन्य विधियों से सहिष्णु भी होते हैं, कपास की गुलाबी सूंडी, गन्ने का बेधक कीट, चने की फली का बेधक कीट, तम्बाकू की सूंडी एवं भिण्डी का चितकबरा सूंडी के फेरोमोन का प्रयोग इनकी संख्या ऑकलन एवं मैथुन में अवरोध हेतु किया जा रहा है। जैविक खेती का एक उद्देश्य जीवंत तथा टिकाऊ खेती का विकास है। इसके अन्तर्गत फार्म प्रबंधन की ऐसी प्रणाली अपनाई जाती है जिससे पारिस्थितिकी सुरक्षित रहे, खरपतवार तथा नाशीजीवों पर नियंत्रण हो, वानस्पतिक तथा जन्तु अवशेषों का पुनर्चक्रण हो, फसल चक्र अपनाया जाय, सिंचाई, निराई, आदि की सही व्यवस्था हो।

dineshmanidsc@gmail.com

❑❑❑

104 उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण

कालीशंकर

भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने 15 फरवरी 2017 को सुबह एक ही राकेट के द्वारा रिकार्ड 104 उपग्रहों का प्रक्षेपण करके एक महान इतिहास का सृजन कर दिया। इनमें भारत के तीन उपग्रह-कार्टोसैट-2 डी एवं दो नैनो उपग्रह आईएनएस-1ए और आईएनएस-1बी शामिल हैं। इसके साथ ही इसरो ने रूस के द्वारा 37 उपग्रहों को एक साथ छोड़ने के रिकार्ड को भी तोड़ दिया। पीएसएलवी-सी37 राकेट ने सबसे पहले कार्टोसैट-2डी भारतीय उपग्रह (भार 714 कि.ग्रा.) को अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित कराया। प्रमोचन के बाद 77 उपग्रहों ने तुरंत काम करना भी प्रारंभ कर दिया। इसरो के इस सफल प्रमोचन पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा, ''इसरो की यह अहम उपलब्धि हमारे अंतरिक्ष वैज्ञानिक समुदाय और देश के लिए गौरवपूर्ण क्षण है। भारत अपने वैज्ञानिकों को सलाम करता है।'' इस अवसर पर भारत के महामहिम राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने कहा, ''मैं इसरो के वैज्ञानिकों और उनकी टीम को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ देता हूँ। आज का दिन अंतरिक्ष कार्यक्रम के इतिहास में युगांतकारी दिन के तौर पर जाना जायेगा।'' उपराष्ट्रपति हामिद अन्सारी ने कहा, ''एक ही साथ 104 उपग्रह छोड़कर इसरो ने इतिहास रच दिया है। इस प्रक्षेपण ने फिर से अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में भारत की क्षमताएँ प्रदर्शित की हैं।''

इसरो की सफलता की गूँज केवल देश में ही नही बल्कि विदेश में भी पहुँची। एक साथ 104 उपग्रहों के सफल प्रक्षेपण का रिकार्ड बनाने पर इसरो वैज्ञानिकों की क्षमता को विश्व मीडिया में भी खूब सराहना मिली। वाशिंग्टन पोस्ट के अनुसार इसरो का यह कदम भारतीय अनुसंधान संगठन के लिए एक और बड़ी सफलता है। न्यूयार्क टाइम्स के अनुसार एक दिन में उपग्रह प्रक्षेपण के पिछले रिकार्ड की तुलना में लगभग तीन गुना अधिक-104 उपग्रहों को प्रक्षेपण के बाद उनकी कक्षाओं में सफलतापूर्वक स्थापित किया गया है। इस कदम ने अंतरिक्ष आधारित सर्विलांस और संचार के बढ़ते व्यवसायिक बाजार में भारत को महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में स्थापित कर दिया है। इस सफल प्रमोचन के बाद इसरो के द्वारा प्रमोचित उपग्रहों (कस्टमर सैटेलाइट) की संख्या 180 पहुँच गई है जिसे भारत के पीएसएलवी राकेट ने प्रमोचित किया है। वर्तमान में भारत के 226 उपग्रह अन्तरिक्ष में हैं जिनमें 180 विदेशी उपग्रह भी शामिल हैं। प्रमोचित किये गये उपग्रहों का विवरण-

स्वदेशी उपग्रह

- पीएसएलवी-सी37 द्वारा भेजा गया कार्टोसैट-2 डी उपग्रह : यह मिशन का प्रायमरी उपग्रह है। उपग्रह कार्टोसैट-2 शृंखला के पहले चार उपग्रहों के समान हैं। पीएसएलवी-सी 37 से 505 कि.मी. ध्रुवीय सूर्य समकालिक कक्षा में इसके प्रमोचन के बाद उपग्रह परिचालन विन्यास लाया गया तथा उसके बाद इसने नियमित रूप से पैनक्रोमिक और मल्टी स्पेक्ट्रल कैमरे की मदद से सुदूर संवेदन सेवाएँ प्रारंभ की। कार्टोसैट उपग्रह से लिए प्रतिबिम्बों का उपयोग मानचित्रण अनुप्रयोगों, शहरी और ग्रामीण अनुप्रयोगों, तटीय भूमि के उपयोग और विनियमन, उपयोगिता प्रबंधना कार्य जैसे सड़क नेटवर्क मॉनीटरिंग, जल वितरण, भूमि उपयोग के नक्शों का निर्माण, भौगोलिक और मानव निर्मित विशिष्टता में परिवर्तन का पता लगाने और विभिन्न अन्य भूमि प्रणाली (एल.आई.एस.) और भौगोलिक सूचना प्रणाली के अनुपयोगों के लिए किया जायेगा। इस उपग्रह के विभिन्न तकनीकी गणक निम्न हैं-
- कार्टोसैट-2 डी उपग्रह के तकनीकी गणक - भार : 714 कि.ग्रा., प्रमोचन यान : पीएसएलवी-सी37, उपग्रह का प्रकार : भू प्रेक्षण, स्वामित्व : इसरो, कक्षा : सूर्य

डव (फ्लाक–3 पी) अमरीकी उपग्रह है। इन नैनो उपग्रहों की संख्या 88 है तथा ये सुदूर संवदेन उपग्रह हैं जो व्यवसायिक, पर्यावरणीय और मानवीय उद्देश्य के लिए प्रत्येक दिन सम्पूर्ण पृथ्वी का प्रतिबिम्बन करेंगे।

समकालिक ध्रुवीय कक्षा, जीवन काल : 5 वर्ष, पावर : सौर एरे के द्वारा जनित 986 वाट् 2, लीथियम आयन बैटरी, अभिवृत्ति नियंत्रण : प्रतिक्रिया चक्र, चुम्बकीय टार्कर और हाइड्राजीन प्रणोदक, कक्षीय काल : 94.72 मि., कक्षीय झुकाव : 97.46 डिग्री.

पीएसएलवी-सी37 राकेट के द्वारा दो नैनो उपग्रह-आईएनएस-1ए और आईएनएस-1बी भेजे गये हैं। इसरो नैनो उपग्रह (आई.एन.एस.) एक विशिष्ट एवं माडुलर नैनो उपग्रह बस तंत्र है जिसका निर्माण भावी विज्ञान और प्रायोगिक नीतभारों के लिए किया गया है। आईएनएस तंत्र का विकास एक सहयात्री उपग्रह के रूप में किया गया है जो पीएसएलवी मिशन में बड़े उपग्रहों के साथ भेजा जा सकता है। आईएनएस तंत्र के निम्न उद्देश्य हैः-

- 10 कि.ग्रा. भार सीमा के निम्न कीमत वाले माडुलर नैनो उपग्रह का निर्माण जो 5 कि. ग्रा. नीतभार अंतरिक्ष में ले जा सके।
- इसरो तकनीकी प्रदर्शन नीतभारों के लिए अवसर प्रदान करना।
- माँग सेवा प्रमोचन के लिए मानक बस प्रदान करना।
- विश्वविद्यालयों एवं अनुसंधान तथा विकास प्रयोगशालाओं के लिए विशिष्ट और ज्ञान वर्द्धक नीतभारों को अंतरिक्ष में ले जाने के अवसर प्रदान करना।

प्रथम नैनो उपग्रह आई.एन.एस.-1ए का उत्थापन भार 8.4 कि.ग्रा. तथा कुल आयतन 304 × 670 × 364.3 घन मि.मी. (प्रस्तरित अवस्था में) है। इसमें दो नीतभार सतही द्विदैशिक परावर्तक वितरण फंक्शन रेडियोमीटर (एसबीआर) और एकल दशा अपसेट मानीटर (एसईयूएम) लगे हैं। इस नैनो उपग्रह का जीवन काल छह महीने है।

दूसरे नैनो उपग्रह आई एनएस-1बी का उत्थापन भार 9.7 कि.ग्रा. तथा कुल आयतन 304 × 670 × 510 घन मि.मी. (प्रस्तरित अवस्था में) है। इसमें भी दो नीतभार- भू बाह्य मण्डल लाइमन अल्फा विश्लेषक (ईईएलए) और ओरिगैमी कैमरा लगे हैं। इसका जीवन काल भी छह महीने है। उपर्युक्त उपग्रहों के नीत भारों का निर्माण इसरो के केन्द्र अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र और इलेक्ट्रो प्रकाशिकी तंत्र प्रयोगशाला में किया गया। इन उपग्रहों का उपयोग विभिन्न अनुसन्धानों में किया जायेगा।

विदेशी नैनो उपग्रह

101 विदेशी नैनो उपग्रहों में 96 अमरीका से है तथा अन्य 5 इज़राइल, कज़ाकिस्तान, नीदरलैन्ड, स्विटजरलैन्ड और संयुक्त अरब एमीरात से हैं। इनका विवरण निम्न है-

- डव (फ्लाक-3 पी) : ये अमरीकी उपग्रह है। इन नैनो उपग्रहों की संख्या 88 है तथा ये सुदूर संवदेन उपग्रह है जो व्यवसायिक, पर्यावरणीय और मानवीय उद्देश्य के लिए प्रत्येक दिन सम्पूर्ण पृथ्वी का प्रतिबिम्बन करेंगे। डव उपग्रहों का डिजाइन, निर्माण और प्रचालन प्लैनेट इनकार्पोरेशन कम्पनी के द्वारा किया जा रहा है जिसका मुख्यालय सॉन फ्रॉन्सिस्को में है।
- लेम्यूर : ये उपग्रह भी अमरीकी है तथा इनका निर्माण स्पायर ग्लोबल इनकार्पोरेशन (सैन फ्रान्सिस्को स्थित) के द्वारा किया गया है। इनका प्रमुख उद्देश्य स्वचालित पहचान तंत्र के प्रयोग से वेसेल अनुवर्तन करना है। इसके अलावा ये उपग्रह जीपीएस रेडियो अकूल्टेशन के प्रयोग से मौसम विज्ञानी मापन भी करेंगे। इनकी संख्या 8 है।
- उपर्युक्त के अलावा 5 उपग्रह इज़राइल, नीदरलैण्ड, स्विटजरलैन्ड, कज़ाकस्तान और संयुक्त अरब, एमीरात के हैं। नीदरलैन्ड के उपग्रह का नाम 'पीईएएसएसएस' है जिसका भार, 3 कि.ग्रा. है तथा यह एक सूक्ष्म गुरूत्व अनुसंधान नैनो उपग्रह है। बेगूसैट (4.3 कि.ग्रा.) इज़राइल का उपग्रह है तथा यह भी वैमानिकी तंत्रो के लिए एक तकनीकी प्रदर्शन नैनो उपग्रह है। अल-फराबी-1 कज़ाकिस्तान का उपग्रह है तथा इसका भार 1.7 कि.ग्रा. है। यह भी एक तकनीकी प्रदर्शन उपग्रह है। संयुक्त अरब एमीरात का उपग्रह 'नेइफ-1' (1.1 कि.ग्रा.) है तथा मोहम्मद बिन राशिद अंतरिक्ष केन्द्र, दुबई के द्वारा निर्मित यह एक तकनीकी प्रदर्शन नैनो उपग्रह है।

पीएसएलवी-सी 37 राकेट

ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचन यान या पीएसएलवी भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा संचालित एक उपभोजित प्रक्षेपण प्रणाली है। भारत ने इसे अपने सुदूर संवेदी उपग्रहों को सूर्य समकालिक कक्षा में प्रक्षेपित करने के लिए विकसित किया हैं। पीएसएलवी छोटे आकार के उपग्रहों को भूस्थिर कक्षा में भी भेजने में सक्षम है। पीएसएलवी-सी37 पीएसएलवी का 39वाँ तथा इसके एक्सएल स्वरूप का 16वाँ मिशन था। इस

प्रमोचन यान ने सफलतापूर्वक 15 फरवरी 2017 को 104 उपग्रह सूर्य समकालिक कक्षा में प्रस्तरित किये। इस प्रमोचन की कीमत 15 मिलियन अमरीकी डालर थी। इसरो के अनुसार 101 अन्तर्राष्ट्रीय उपग्रहों का प्रमोचन इन देशों तथा इसरो की व्यवसायिक शाखा ऐन्ट्रिक्स कापोरेशन लि. के एक समझौते के अन्तर्गत किया गया। इस उड़ान के विभिन्न तकनीकी गणक निम्न हैं-

उत्थापन भार : 320,000 कि.ग्रा., नीत भार का भार : 1378 कि.ग्रा., प्रमोचन राकेट ऊँचाई : 44.4 मीटर, ईंधन : स्टेज 1 - ठोस HTPB आधारित, स्टेज 2 : द्रव UH 25 + N_2O_4, स्टेज 3 : ठोस HTPB आधारित, स्टेज 4 : द्रव MMH + MON-3, कक्षीय ऊँचाई : 505 कि.मी., कक्षीय झुकाव : 97.46 डिग्री, कक्षीय काल : 28 मि.42 सेकन्ड, कक्षीय गति :7809.52 मीटर प्रति से., प्रमोचन स्थल : सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र

104 उपग्रहों के एक साथ प्रमोचन पर प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी ने इसरो को बधाई दी।

अन्तरिक्ष में एक साथ इष्टतम उपग्रह भेजने के रिकार्ड

अब से पहले अन्तरिक्ष में एक साथ सबसे ज्यादा उपग्रह प्रमोचित करने का रिकार्ड रूस के नाम था। उसने साल 2014 में 37 उपग्रह एक साथ प्रमोचित किये थे। अमरीकी अन्तरिक्ष संस्था नासा ने 2013 में 29 उपग्रह एक साथ भेजे थे। इसके पहले 28 अप्रैल 2008 को पीएसएलवी-सी9 उड़ान के द्वारा एक साथ 10 उपग्रह प्रमोचित किए गये थे जिसमें भारत के दो उपग्रह कार्टोसैट-2ए एवं आईएमएस-1 थे तथा बाकी 8 विदेशी उपग्रह थे। इसके बाद 22 जून 2016 को पीएसएलवी-सी34 उड़ान के द्वारा इसरो ने एक साथ 20 उपग्रह अंतरिक्ष में भेजे जिसमें भारत के दो उपग्रह कार्टोसैट-2 सी, सथ्यबामासैट एवं स्वयम तथा बाकी 17 उपग्रह अन्य देशों के थे। 15 फरवरी 2017 को इसरो ने रूस के 37 उपग्रहों की तुलना में 3 गुना अधिक उपग्रह अन्तरिक्ष में भेजे।

मिशन की तकनीकी चुनौतियाँ

एक साथ इतने सारे उपग्रहों को छोड़े जाने पर उनको आपस में टकराने से बचाना बड़ी चुनौती थी। इसके लिए पीएसएलवी राकेट की गति को 27000 कि.मी. प्रति घं. रखा गया। जिस तरह स्कूल बस बच्चों को घर छोड़ती है, इसरो के इस अभियान में शामिल उपग्रहों में भी सबसे पहले भारतीय उपग्रहों को छोड़ा गया और फिर अमरीका, इज़राइल, कज़ाकिस्तान, नीदरलैन्ड, स्विटज़रलैन्ड और संयुक्त अरब एमीरात के उपग्रहों को मात्र आधे घण्टे के अन्दर कक्षा में स्थापित किया गया।

इसरो की दो विशेषताएँ उसे विश्व में सबसे अलग और महत्वपूर्ण अन्तरिक्ष संस्था बनाती है। एक तो उसने बहुत ही कम खर्च में कोई भी अभियान पूरा करने में सफलता हासिल कर ली है। जिस मंगल अभियान को अमरीकी अंतरिक्ष संस्था नासा ने 671 अरब डालर में पूरा किया उसी प्रकार के अभियान को इसरो ने मात्र 73 अरब डालर में पूरा कर लिया। दूसरी बात यह है कि इसरो की असफलता की दर अन्य सभी अन्तरिक्ष संस्थाओं से काफी कम हैं। असफलता की दर कम होना अन्तरिक्ष बाजार में साख का सबसे बड़ा आधार होता है। अनुमान है कि अंतरिक्ष में उपग्रह स्थापित करने का विश्व बाजार इस समय 500 अरब डालर सालाना से अधिक हो चुका है क्योंकि विश्व का सारा व्यापार उपग्रहों पर आश्रित हो चुका है। इसीलिए आज विश्व का छोटे से छोटा देश भी यही चाहत रखता है कि उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अन्तरिक्ष में उसका अपना उपग्रह अवश्य हो। उपग्रह स्थापित करने के बाजार में इसरो ने जो सफलता प्राप्त की है वह उसे काफी ऊपर ले जा सकती है।

पीएसएलवी-सी37 उड़ान के कुछ रोचक तथ्य

- अपनी 39वीं उड़ान में पीएसएलवी-सी37 के द्वारा 103 सहयात्री उपग्रहों के साथ 714 कि.ग्रा. के कार्टोसैट-2डी उपग्रह का प्रमोचन किया गया। यह पीएसएलवी का 38वाँ लगातार सफल मिशन था।
- पीएसएलवी. प्रमोचन राकेट के द्वारा एक साथ इतने उपग्रहों (104 उपग्रह, कुल भार 1378 कि.ग्रा.) का प्रमोचन किया गया। यह एक विश्व स्तर का प्रमोचन रिकार्ड था।
- प्रमोचित 103 सहयात्री उपग्रहों में दो नैनो उपग्रह आईएनएस-1 और आईएनएस-2 भारत के तकनीकी प्रदर्शन उपग्रह थे।
- इस प्रमोचन के द्वारा भारत ने रूस के द्वारा 2014 में एक साथ 37 उपग्रहों के प्रमोचन के रिकार्ड को तोड़ा। रूस ने यह प्रमोचन सवंर्द्धित अन्तः महाद्वीपीय वैलेस्टिक मिसाइल से किया था।
- पिछले जून 2016 में भारत ने एक राष्ट्रीय रिकार्ड बनाया था जब उसने एक साथ 20 उपग्रहों का प्रमोचन किया था। जिसमें 13 अमरीकी उपग्रह थे।

पीएसएलवी-सी37 की सफलता के लिए महामहिम प्रणब मुखर्जी की बधाई।

अपनी 39वीं उड़ान में पीएसएलवी –सी37 के द्वारा 103 सहयात्री उपग्रहों के साथ 714 कि.ग्रा. के कार्टोसैट–2डी उपग्रह का प्रमोचन किया गया। यह पीएसएलवी का 38वाँ लगातार सफल मिशन था।

पर्यावरणीय जाँच के लिए कार्टोसैट-2डी उपग्रह को तापीय निर्वात चैम्बर में लाया गया।

- भारत सरकार इसरो की प्रगति से काफी संतुष्ट है तथा हालिया बजट में उसने इसरो के लिए 23% वृद्धि की घोषणा की है।
- यह प्रमोचन आन्ध्र प्रदेश के समुद्री तट पर स्थित श्रीहरिकोटा केन्द्र से किया गया जो चेन्नै से लगभग 125 कि.मी. दर है।
- मात्र 18 मिनट में सभी उपग्रह अंतरिक्ष में छोड़ दिये गये।

भारत बहु-बिलियन डालर वाले अंतरिक्ष बाजार में एक बडे खिलाड़ी के रूप में उभर रहा है। विश्व रिकार्ड बनाने वाले इस पीएसएलवी उड़ान से यह संकेत जाता है कि व्यवसायिक रूप से अन्य देशों के उपग्रहों को अंतरिक्ष में स्थापित करना एक बड़ा व्यवसाय बनेगा। इसका कारण यह है कि विश्व की कम्पनियाँ और देशों को अधिक से अधिक उच्च-तकनीक युक्त संचार की आवश्यकता है।

प्रमोचित उपग्रहों में 88 उपग्रह अमरीकी कम्पनी 'प्लैनेट' द्वारा निर्मित किये गये हैं। अंतरिक्ष कक्षा में पहुँचने वाला अब तक का यह सबसे बड़ा उपग्रह पुंज (कन्स्टेलेशन) है। इन उपग्रहों के द्वारा कम्पनी रोज सम्पूर्ण पृथ्वी का प्रतिबिम्बन कर सकेगी।

पूर्व योजना के अनुसार इसरो ने जनवरी 2017 में एक साथ 83 उपग्रहों के प्रमोचन की योजना बनाई थी जिनमें 80 विदेशी थे। लेकिन 20 और विदेशी उपग्रहों के आ जाने से यह प्रमोचन विलम्बित कर दिया गया था। इस विशिष्ट प्रमोचन में पीएसएलवी के 'एक्स एल' स्वरूप का प्रयोग किया गया है। इसी स्वरूप का प्रयोग मंगलयान मिशन के लिए भी किया गया था।

इस मिशन की सबसे खास बात यह भी है कि वास्तव में इससे इसरो को पीएसएलवी के द्वारा लघु उपग्रहों के मल्टीपल प्रमोचन की क्षमता को परखने का अवसर प्राप्त हुआ है जिसकी नीतभार वहन क्षमता 1500 कि.ग्रा. से अधिक है।

- मिशन में प्रयुक्त पीएसएलवी के 'एक्स एल' स्वरूप की अब तक की सफलता की दर 100% पाई गई।
- इस मिशन में 28 घण्टे का काउन्ट डाउन पीएसएलवी मिशनों में प्रयुक्त सबसे अल्प अवधि का काउन्ट डाउन था।
- वर्ष 2017 का यह भारत का प्रथम लेकिन सबसे जटिल अंतरिक्ष मिशन था।
- पीएसएलवी प्रमोचन राकेट ने पहले प्रायमरी नीतभार कार्टोसैट-2डी को कक्षा में प्रविष्ट कराया तथा उसके बाद दो भारतीय नैनो उपग्रहों को प्रविष्ट कराया। बाद में बाकी 101 विदेशी नैनो उपग्रह कक्षा में पहुँचे।
- पीएसएलवी ने 13 मिनट में 4180 कि.मी. की यात्रा कर ली थी।
- यह ऐतिहासिक मिशन भारत के अन्तरिक्ष कार्यक्रम को एक महान बूस्ट प्रदान करेगा।

निष्कर्ष

प्रश्न यह उठता है कि इससे आगे हम कहाँ जायेंगे। यह सत्य है कि आने वाले दिनों में विश्व में अन्तरिक्ष कार्यक्रम में अप्रत्याशित वृद्धि होने वाली है। हो सकता है कि आने वाले दिनों में ऐसे उपग्रह अन्तरिक्ष में भेजें जायें जो छोटी छोटी चिपों के आकार में हों। इस प्रकार उपग्रहों की संख्या में और वृद्धि हो सकती है तथा इसरो जैसी संस्थाओं की आवश्यकता बढ़ेगी। आज इसरो जैसी संस्था का विश्वास सारे विश्व को हो चुका है जिसका श्रेय इसके वैज्ञानिकों को जाता है। बढ़ती हुई उपग्रहों की आवश्यकता और उनके अंतरिक्ष स्थापन से मानव और विश्व का कल्याण होगा।

ksshukla@hotmail.com

❑❑❑

भारत की परमाणु शक्ति

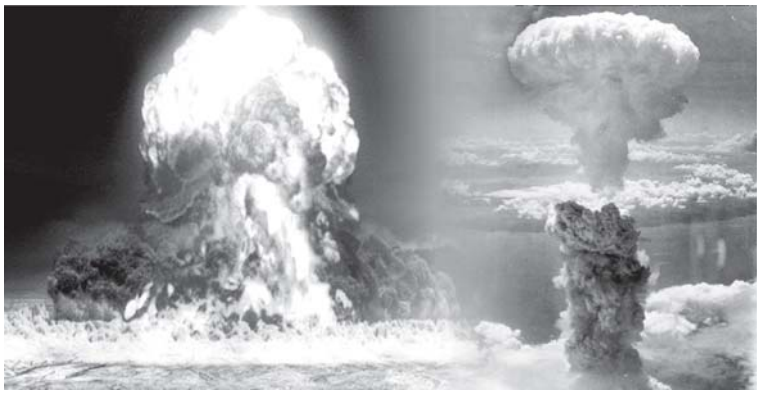

विजन कुमार पांडेय

भारत के परमाणु विकास कार्यक्रम पर गौर करें तो स्पष्ट है कि वह हमेशा परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग का पक्षधर और परमाणु शस्त्र नियंत्रण व निशस्त्रीकरण का समर्थक रहा है। उसने परमाणु शक्ति-संपन्न राष्ट्रों की परमाणु हथियारों के परीक्षण को जितना गंभीरता से विरोध किया उतना अन्य किसी दूसरे राष्ट्रों ने नहीं की है। जहाँ तक भारत की परमाणु नीति की उत्पत्ति व विकास का सवाल है तो उसका मूल आधार सामाजिक व आर्थिक सदा से रहा है। दरअसल भारत ने दो बातों पर विशेष रूप से जोर दिया। एक, इस नए ऊर्जा स्रोत के आर्थिक उपयोग की सभी को स्वतंत्रता हो तथा दूसरा इसको निरस्त्रीकरण से जोड़ा जाए। भारत हमेशा से निरस्त्रीकरण और शस्त्र नियंत्रण को एक-दूसरे का पर्याय मानता रहा है।

शस्त्र नियंत्रण निरस्त्रीकरण का अनिवार्य अंग है। दोनों का मूल उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय समाज में हिंसा व शक्ति के प्रयोग को रोकना व सीमित करना है। जून, 1982 में भारत ने संयुक्त राष्ट्र की महासभा में निरस्त्रीकरण पर पाँच सूत्रीय ठोस कार्यक्रम प्रस्तुत किया था जिसकी चतुर्दिक सराहना हुई। अक्सर भारत की परमाणु नीति को 1974 और 1998 के परमाणु परीक्षण से जोड़ते हुए उसे संदेह की परिधि में रखा जाता है। लेकिन यह उचित नहीं है। वैश्विक समुदाय को यह समझना होगा कि यह भारत की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति और आत्म सुरक्षा के लिए बेहद आवश्यक था। दूसरी तरफ चीन ने 1964 में परमाणु विस्फोट कर सामरिक रूप से भारत को असंतुलित कर दिया था

परमाणु कार्यक्रम का उद्देश्य

भारत का परमाणु विकास कार्यक्रम मूलतः शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए है। यह ऊर्जा उत्पादन एक अहम अंग है। विश्व में भूमंडलीकरण के बाद आए नए बदलावों ने परमाणु कार्यक्रमों को बहुत महत्वपूर्ण बना दिया है। इसलिए भारत को भी अपनी बढ़ती ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए परमाणु संयंत्रों की आवश्यकता है। आज भारत की परमाणु नीति का उद्देश्य अब ऊर्जा उत्पादन तक सीमित न रहकर संभावित शस्त्र उत्पादन से भी जुड़ गया है। दक्षिण एशिया में शांति नहीं है। कुछ देश आतंकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं। पाकिस्तान में आंतरिक अशांति, अफगानिस्तान की समस्या से किसी भी समय स्थिति नाजुक बन सकती है। हमारे पड़ोसी देश विशेष रूप से चीन और पाकिस्तान दोनों परमाणु अस्त्रों से लैस हैं। अभी चंद रोज पहले ही पाकिस्तान के परमाणु वैज्ञानिक ए.क्यू. खान ने धमकी भरे लहजे में कहा कि परमाणु बम से लैस पाकिस्तान के पास दिल्ली को पाँच मिनट में निशाना बनाने की क्षमता है।

गौरतलब है कि पाकिस्तान ने 1998 में परमाणु परीक्षण किया था। उसी समय से लगातार वह भारत को धमकी देता रहता है। चीन भी उसको शह देता रहता है। वैसे भारत के परमाणु कार्यक्रम का उद्देश्य पाकिस्तान की तरह किसी देश को धमकी देना नहीं, बल्कि रचनात्मक विकास और मानवता के कल्याण के लिए है। भारत अपने परमाणु कार्यक्रम का उपयोग अंतरिक्ष में उपग्रह छोड़ने, उपग्रह से एकत्रित आंकड़ों को बेचने, दूर संचार व दूर संवेदन जैसे कामों में कर रहा है। वह विश्व में शांति चाहता है। लेकिन दुनिया के अन्य देश जो कि अमेरिकी नीतियों के विरोधी हैं वे ट्रंप की भावी परमाणु नीति को लेकर खासा नाराज़ हैं। ऐसे में परमाणु हथियारों की होड़ मच सकती है जो पूरे विश्व समुदाय के लिए अच्छा नहीं है।

भारत तब तक युद्ध में परमाणु हथियारों का इस्तेमाल नहीं करेगा, जब तक उस पर हमला करने वाला कोई देश परमाणु हथियार का इस्तेमाल न करे। भारत हमेशा से यह कहता रहा है कि वह अपनी परमाणु तकनीक को सिर्फ इसलिए विकसित कर रहा है ताकि उसके ऊपर कोई हमला करने के बारे में न सोचे।

परमाणु शक्ति की बढ़ती ताकत

दुनिया की बड़ी परमाणु शक्तियों की कतार में भारत एक अलग ही तरह का देश है। भारत ने न तो अंतरराष्ट्रीय परमाणु अप्रसार संधि (एनपीटी) पर दस्तखत किए हैं और न ही यह उन पाँच परमाणु शक्तियों में से है जिसे यह संधि मान्यता देती है। एनपीटी का सदस्य न होते हुए भी भारत अंतरराष्ट्रीय बाज़ार से परमाणु तकनीकी और सामग्री खरीद सकता है। वह भी कानून के दायरे में रहते हुए और किसी भी तरह के प्रतिबंधों और रुकावट की चिंता किये बगैर। उत्तर कोरिया, ईरान, इजराइल और पाकिस्तान जैसे गैर-एनपीटी परमाणु राष्ट्रों को भले ही संदेह से देखा जाता रहा है लेकिन, भारत के प्रति अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने कभी किसी तरह की गहरी चिंता नहीं जताई है। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि भारत के सैन्य परमाणु कार्यक्रमों को खत्म करने की कभी कोई मांग नहीं उठी है। निरस्त्रीकरण के नज़रिए से देखा जाए तो भारत का विशाल परमाणु भंडार चिंता का विषय हो सकता है। लेकिन अगर इसकी सुरक्षा की बात करें तो भारत को पहले ही विश्व समुदाय एक जिम्मेदार परमाणु शक्ति का दर्जा दे चुका हैं। भारत-अमेरिकी असैन्य परमाणु करार इसका प्रमाण है। अब अंतरराष्ट्रीय समुदाय भारत से परमाणु निरस्त्रीकरण की मांग करने की बजाय उसके सैन्य और असैन्य परमाणु कार्यक्रमों पर भरोसा करता है। इस मौन स्वीकार्यता का मुख्य कारण भारत की 'नो फर्स्ट यूज़' नीति है जिसका ऐलान पहली बार 2003 में हुआ था। इस नीति के अनुसार भारत तब तक युद्ध में परमाणु हथियारों का इस्तेमाल नहीं करेगा, जब तक उस पर हमला करने वाला कोई देश परमाणु हथियार का इस्तेमाल न करे। भारत हमेशा से यह कहता रहा है कि वह अपनी परमाणु तकनीक को सिर्फ इसलिए विकसित कर रहा है ताकि उसके ऊपर कोई हमला करने के बारे में न सोचे।

क्षेत्रीय नजरिया

अगर हम क्षेत्रीय नज़रिए से देखें तो भारत का परमाणु ताकत होना अप्रत्यक्ष तौर से एक वरदान साबित हुआ है। 1974 में जब भारत ने अपनी परमाणु शक्ति का सार्वजनिक प्रदर्शन किया तो पाकिस्तान ने भी उसका अनुसरण किया और दक्षिण एशिया में हथियारों की एक होड़ शुरू हो गई। अगर यह होड़ न शुरू हुई होती या सिर्फ भारत के पास ही परमाणु बम होते, तो दो तरह के परिदृश्यों की कल्पना की जा सकती है।

पहला तो परमाणु हथियारों के न होने की स्थिति में भारत और पाकिस्तान में अपनी चिर-परिचित आपसी दुश्मनी के चलते, अस्सी के दशक में, ईरान-इराक जैसी कुछ लड़ाईयां जरूर होतीं। ऐसा होने पर निश्चित रूप से जन-धन की अपार हानि होती और दोनों देशों की अर्थव्यवस्थायें लगभग बर्बाद हो जाती। दूसरा, यदि सिर्फ भारत के पास ही परमाणु बम होता तो वह एकमात्र क्षेत्रीय सैन्य महाशक्ति बन जाता और फिर क्षेत्रीय संतुलन बिगड़ जाता। पिछले तीन दशक से दक्षिण एशिया में असहजता भरी ही सही, लेकिन जो शांति है वह तबाही के उसी डर के कारण है जो दोनों देशों (भारत-पाकिस्तान) के परमाणु हथियार इन देशों में मचा सकते हैं। भले ही भारत और पाकिस्तान दोनों कई बार छोटी-मोटी लड़ाइयों में उलझते रहे हैं, लेकिन उन्हें एक दूसरे के पास मौजूद महाविनाशकारी शक्तियों का अंदाजा है जिसकी वजह से किसी बड़े सैन्य युद्ध की संभावनाएं कम हैं।

vijonkumarpanday@gmail.com

❑❑❑

आज अंतरिक्ष में भारत

डॉ.शुभ्रता मिश्रा

भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में नववर्ष 2018 की शुरुआत एक शानदार उपलब्धि के साथ हुई है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन,इसरो ने 12 जनवरी को अपना सौवें उपग्रह कार्टोसेट-2 के साथ साथ भारत सहित अन्य देशों के कुल तीस उपग्रह सफलतापूर्वक प्रक्षेपित किए। एक भारतीय माइक्रो उपग्रह और एक भारतीय नैनो उपग्रह और अट्ठाईस विदेशी उपग्रहों को पीएसएलवी सी-40 प्रक्षेपण यान के माध्यम से छोड़ा गया। इसे इसरो की अपूर्व उपलब्धि इस ष्टिकोण से भी माना जा रहा है क्योंकि ये समस्त उपग्रह एक ही यान से दो अलग-अलग कक्षाओं में स्थापित किए गए हैं। भारत को कार्टोसेट-2 के रुप में मिला नववर्ष का बहुमूल्य उपहार सही मायनों में भारत के लिए किसी कोहनूर से कम नहीं है क्योंकि इसके माध्यम से देश को तटवर्ती क्षेत्रों, राजमार्गों, जल वितरण और जमीन के नक्शे को बेतहर बनाने और शहरी योजनाएं बनाने में बहुत सहायता मिल सकेगी। इसके अलावा सीमांत क्षेत्रों में कड़ी निगरानी में भी यह बहुत महत्वपूर्ण साबित होगा। यह कहा जा रहा है कि इससे सीमा पर पड़ोसी देशों की सैन्य गतिविधियां बढ़ने के बारे में कार्टोसेट-2 से मिलने वाली तस्वीरें बेहद सहायक सिद्ध होंगी। साथ ही इसके द्वारा भारतीय समुद्रतटीय भागों में होने वाले परिवर्तनों पर विशेष दृष्टि रखी जाने के कारण किसी अप्रत्याशित आपदा से निपटने में भी मददमिलेगी।

इसरो की लगातार बढ़ रही उपलब्धियों ने अंतरिक्ष जैसे विषय को भी आम लोगों तक पहुंचा दिया है। यूं भी भारत अपने वैदिककाल से ही अंतरिक्ष की अपनी मेधा के दर्शन यजुर्वेद के द्यौः शान्तिरअंतरिक्षं शान्तिः, पृथ्वी शान्तिरापोः शान्तिरोषधयः, वनस्पतयः शान्ति और ऋग्वेद के शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमअंतरिक्षं शये नो अस्तु जैसे श्लोकों में करवा चुका है। भले ही 1957 में विश्व के पहले रुसी उपग्रह स्पुतनिक-1 से विश्वस्तर पर प्रायोगिक अंतरिक्ष विज्ञान में मनुष्य की वैज्ञानिक पहुंच आरम्भ हुई हो लेकिन उससे कहीं पहले आर्यभट्ट, वराह मिहिर, भास्कराचार्य और ब्रह्मगुप्त जैसे भारतीय अंतरिक्षविज्ञान के पुरोधाओं ने भारत के लिए अंतरिक्ष की वर्तमान ऊँचाइयों के मार्ग प्रशस्त कर दिए थे। यह भारत का प्रारब्ध कहा जा सकता है कि बीच के बहुत बड़े समय में उसे विभिन्न राजनैतिक व सामाजिक प्रशासनों के दौर से गुजरना पड़ा। इसके फलस्वरुप नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों की वेधशालाओं को ध्वस्त होना पड़ा और भारत ने अंतरिक्ष की अपनी प्रतिभा को नए स्वतंत्र आयाम देने में स्वयं को निरीह पाया।

लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की अंतरिक्ष संबंधी समृद्धि की नींव पर पुनः 1962 में भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिक कार्यक्रम के जनक डह्र विक्रम साराभाई की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति के गठन के साथ भारत ने अपनी स्वतंत्र अंतरिक्ष उड़ान प्रारम्भ की। यह वही उड़ान है जिसकी ऊँचाई निरंतर बढ़ती ही जा रही है। 1963 में भारत ने अपना प्रथम रह्रकेट नाइके-अपाशे को थुंबा से प्रक्षेपित किया था। 1969 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) का गठन किया गयाऔर 1972 में अंतरिक्ष आयोग और अंतरिक्ष विभाग की स्थापना के बाद 19 अप्रैल, 1975 ई। को प्रथम भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट का प्रक्षेपण तत्कालीन सोवियत संघ के प्रक्षेपण केंद्र से किया गया था। इस उपग्रह को मात्र शुरुआत ही कहा जा सकता है, क्योंकि आशातीत सफलताएं इससे नहीं मिल सकी थीं। अतः

इसके बाद 1980 में भारत का देश में प्रथम निर्मित त्रिम उपग्रह रोहिणी-प्रथम प्रक्षेपित किया गया। फिर वह दिन भी आया जब स्क्वाडरन लीडर राकेश शर्मा को पहले भारतीय अंतरिक्ष यात्री होने का गौरव प्राप्त हुआ। ये 2, अप्रैल,1984 की बात है जब राकेश शर्मा सोवियत यान सौयूज टी-11 से अंतरिक्ष गए थे।

संचार उपग्रहों के माध्यम से मौसम संबंधी भविष्यवाणियों से आरम्भ हुए भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिक उद्देश्यों के पंख धरती में खनिज पदार्थों और समुद्रों में तेल और मछली वाले स्थानो की सूचना, धरेलू संचार व्यवस्था, मौसम संबंधी निरीक्षणों, रेडियो और टी.वी प्रसारण से लेकर शैक्षणिक कार्यक्रमों आदि के रुप में विस्तार लेने लगे। इसी बीच पहली भारतीय महिला अंतरिक्ष यात्री बनी भारत की बेटी कल्पना चावला ने 19 नवंबर, 1997 को नासा अंतरिक्ष यान कोलंबिया से उड़ान भरकर भारत को विश्व पटल पर अद्भुत पहचान दिलाई। त्रिम उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (एसएलवी), एएसएलवी, भूस्थिर उपग्रह प्रक्षेपण यान (जी.एस.एल.वी) और ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी) के रुप में भारत ने आधुनिक अंतरिक्ष विज्ञान की अंतरिक्ष उपग्रह प्रक्षेपण तकनीक में अपना लौहा मनवाया है। इनके कारण उपग्रह प्रक्षेपण व उपग्रह निर्माण के व्यावसायिक क्षेत्र में भारत की अपनी पहचान बनी है। 22 अक्तूबर, 2008 को ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान पीएसएलवी-सी 11 भारत के सबसे प्रतिष्ठित अंतरिक्ष यान चंद्यान-1 को अपने साथ लेकर श्रीहरिकोटा के प्रक्षेपण स्थल से छोड़ा गया, तब भारत की अंतरिक्ष ऊँचाइयों ने हर भारतीय का मस्तक भी उतनी ही ऊँचाइयों तक ऊँचा कर दिया। चंद्रयान चंद्रमा की तरफ कूच करने वाला भारत का पहला अंतरिक्ष यान था, जो 30 अगस्त, 2009 तक सक्रिय रहा। विश्व के अनेक देशों को भारत अपनी अंतरिक्ष क्षमता से व्यापारिक और अन्य स्तरों पर सहयोग कर रहा है। भारतीय अंतरिक्ष केंद्र इसरो शांति, निरस्त्रीकरण और विकास के लिए साल 2014 के इंदिरा गांधी पुरस्कार से सम्मानित है। मार्च 2016 तक भारत पीएसएलवी की सहायता से 21 देशों के कुल 57 अन्तरराष्ट्रीय ग्राहक उपग्रहों का सफलतापूर्वक प्रमोचित कर चुका था। इसके बाद एक और शानदार सफलता का परिचय देते हुए भारत ने 15 फरवरी 2017 को तीन भारतीय व 101 विदेशी उपग्रहों सहित कुल 104 उपग्रहों का एक साथ सफल प्रक्षेपण करके कीर्तिमान स्थापित किया।

अब तक भारत की अंतरिक्ष विज्ञान की सफलताओं ने कभी पीछे मुडकर नहीं देखा है। एजुसेट से लेकर मिशन जीएसएलवी-D5 के माध्यम से 36000 किलोमीटर की ऊंचाई वाली भूस्थिर/भू-समकालिक (जीएसओ) कक्षा में उपग्रह को स्थापित करने वाली क्षमता प्राप्त कर अमेरिका, रुस, फ्रांस, चीन और जापान जैसे राष्ट्रों की कतार में भारत ने स्वयं को स्थापित किया है। इंडियन नेशनल सेटेलाइट प्रणाली, इंडियन रिमोट सेंसिंग सेटेलाइट, पोलर सेटेलाइट लाँच व्हीकल, रीयूजेबल लौंच व्हीकल, स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन और स्क्रेमजेट इंजन के सफल परीक्षण, इंडियन रीजनल नेविगेशनल सेटेलाइट, भारत का पहला स्पेस शटल आरएलवी-टीडी जैसी अनगिनत अंतरिक्ष सफलताएं भारत की अंतरिक्ष की ओर बढ़ते कदमों को दिनप्रतिदिन चूमती जा रही हैं। 24 सितंबर 2014 को मंगल पर पहुँचने के साथ ही भारत विश्व में अपने प्रथम प्रयास में ही सफल होने वाला पहला देश तथा सोवियत रूस, नासा और यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी के बाद दुनिया का चौथा देश बन गया है। इसके अतिरिक्त ये मंगल पर भेजा गया सबसे सस्ता मिशन भी है । भारत एशिया का भी ऐसा करने वाला प्रथम पहला देश बन गया है क्योंकि इससे पहले चीन और जापान अपने मंगल अभियान में असफल रहे थे। मंगलयान के सफल प्रक्षेपण और एस्ट्रोसैट के रूप में भारत की पहली अंतरिक्ष वेधशाला स्थापित करने के बाद अब भारत शीघ्र ही अपना अंतरिक्ष यान भेजकरचंद्रमा पर तिरंगा फहराने की तैयारी कर रहा है।

shubhrata@rediffmail.com

❑❑❑

अब तक भारत की अंतरिक्ष विज्ञान की सफलताओं ने कभी पीछे मुडकर नहीं देखा है। एजुसेट से लेकर मिशन जीएसएलवी-D5 के माध्यम से 36000 किलोमीटर की ऊंचाई वाली भूस्थिर/भू-समकालिक (जीएसओ) कक्षा में उपग्रह को स्थापित करने वाली क्षमता प्राप्त कर अमेरिका, रुस, फ्रांस, चीन और जापान जैसे राष्ट्रों की कतार में भारत ने स्वयं को स्थापित किया है। इंडियन नेशनल सेटेलाइट प्रणाली, इंडियन रिमोट सेंसिंग सेटेलाइट, पोलर सेटेलाइट लाँच व्हीकल, रीयूजेबल लौंच व्हीकल, स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन और स्क्रेमजेट इंजन के सफल परीक्षण, इंडियन रीजनल नेविगेशनल सेटेलाइट, भारत का पहला स्पेस शटल आरएलवी-टीडी जैसी अनगिनत अंतरिक्ष सफलताएं भारत की अंतरिक्ष की ओर बढ़ते कदमों को दिनप्रतिदिन चूमती जा रही हैं।

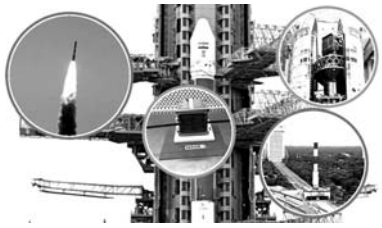

योग का विज्ञान

विजन कुमार पांडे

योग स्वस्थ जीवन जीने की कला और विज्ञान दोनों है। यह जीवन के सभी क्षेत्रों में सामंजस्य लाता है। योग को रोग निवारण, स्वास्थ्य संवर्धन और जीवन शैली से संबंधित विकारों पर नियंत्रण करने के लिए जाना जाता है। योग मूलतः संस्कृत शब्द 'युज' से बना है। इसका अर्थ संलग्न या सम्मिलित होना होता है। योग का अभ्यास करने से व्यक्तिगत और सार्वभौमिक चेतना के बीच एकात्म स्थापित हो जाता है।

योग एक अत्यंत सूक्ष्म विज्ञान है जो हमें आध्यात्मिक अनुशासन सिखाता है। इसके द्वारा मन और शरीर में समरसता स्थापित होती है। दरअसल योग स्वस्थ जीवन जीने की कला और विज्ञान दोनों है। यह जीवन के सभी क्षेत्रों में सामंजस्य लाता है। योग को रोग निवारण, स्वास्थ्य संवर्धन और जीवन शैली से संबंधित विकारों पर नियंत्रण करने के लिए जाना जाता है। योग मूलतः संस्कृत शब्द 'युज' से बना है। इसका अर्थ संलग्न या सम्मिलित होना होता है। योग का अभ्यास करने से व्यक्तिगत और सार्वभौमिक चेतना के बीच एकात्म स्थापित हो जाता है। दरअसल योगाभ्यास की शुरूआत सभ्यता के प्रारंभिक चरणों में ही हो गई थी। इसका व्यापक रूप 2700 ईसवी पूर्व सिंधु सरस्वती घाटी सभ्यता की एक 'अमिट सांस्कृतिक विरासत' के रूप में आया। आज योग ने मानवता के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही उत्थान में अपनी भूमिका को साबित कर दिया है। इसका जन्म हजारों वर्ष पूर्व, आस्था पद्धति के प्रादुर्भाव से भी पहले हुआ था। योग शास्त्र के अनुसार, शिव को प्रथम आदियोगी माना जाता है। उन्हें योग का प्रथम आदिगुरु भी कहा जाता है। शिव ने ही हिमालय के कांतिसरोवर तट पर सप्तर्षियों को परम ज्ञान दिया था। इसके बाद ये सप्तर्षियों ने योग विज्ञान को विश्व के विभिन्न हिस्सों में फैलाया। बाद में महर्षि अगस्त्य ने भारतीय उपमहाद्वीप में योग मार्ग को प्रशस्त किया। जिसका लाभ आज सभी को मिल रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य का अर्थ मात्र रोगों का अभाव नहीं है। दरअसल यह शारीरिक और मानसिक तंदुरूस्ती की सकारात्मक अवस्था है। रोगों के उपचार के अलावा ऐसी परिस्थितियों को भी समझ लेना आवश्यक है जो रोग उत्पन्न करता है। आधुनिक चिकित्सा ने कई लाईलाज रोगों पर जीत हासिल की है फिर भी अध्ययन यह बताते हैं कि 60 प्रतिशत चिकित्सक रोगियों की बात नहीं सुनते। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट में उल्लेखित किया गया है कि एक चिकित्सक हर मरीज को पूर्ण समय दें। फिर भी वे मरीजों को समय नहीं देते। यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है कि मरीज और चिकित्सक के मध्य हुआ अच्छा संवाद, उसको बीमारी से लड़ने का साहस देता है। दवाइयों के संबंध में जानकारी और डाक्टर द्वारा बीमारी के जल्द ठीक होने का आश्वासन उसे आगे जीने का रास्ता दिखाता है। डाक्टर 'स्वस्थता' का मार्ग प्रदर्शक होता है। आज आधुनिक चिकित्सा इलाज के साथ-साथ, खान-पान संबंधी परहेजों की चर्चा करती नहीं दिखती जो कि स्वस्थ

होने की दिशा में एक महत्वपूर्ण तथ्य है। हम सहज उपलब्ध तरीके जो पश्चिमी संस्कृति की देन हैं उन्हें ही प्रमुखता देते हैं। लेकिन वे देश जो चिकित्सा के पुराने पैरोकार हैं वह भी विविध प्रकार के प्राकृतिक इलाज की ओर रूख कर रहे हैं। वे योग द्वारा अपनी बीमारियों को दूर कर रहे हैं। मगर हम अपनी पुरातन चिकित्सा पद्धति के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। हैरानी वाली बात तो यह है कि भारतीय वैकल्पिक चिकित्सा बोर्ड द्वारा संचालित अंतर्राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय सबसे बड़ी अंतर्राष्ट्रीय अकादमी है जो कि भारत व विदेशों में प्रकृतिक एवं पूरक चिकित्सा और स्वास्थ्य संवर्धन के क्षेत्र में अग्रणी संस्था है। फिर भी हमारे देश के लोग प्राकृतिक चिकित्सा से दूर हटते जा रहे हैं। हाल में किए गये चिकित्सा अनुसंधान भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि योग कई शारीरिक और मानसिक लाभ प्रदान करता है जो स्थायी होता है।

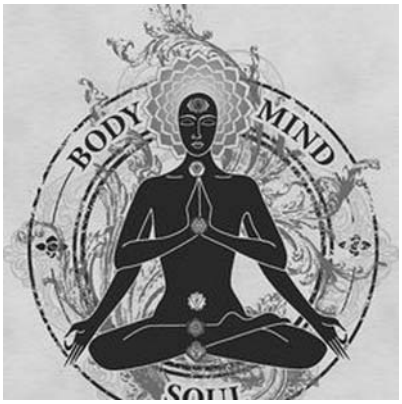

योग का वैदिक महत्व

योग शरीर को कर्म से जोड़ता है। तभी तो गीता में श्रीकृष्ण ने कर्म करने की विशेष युक्ति को योग कहा है। पाप-पुण्य से अलिप्त रहकर कर्म करना ही योग है। युक्ति से कर्म करने को गीता में योग कहा गया है। योग आत्मा को परमात्मा से भी जोड़ता है। हार्वर्ड मेडिकल स्कूल और मैसच्यूसेट जनरल हास्पिटल के बेनसन हेनरी इंस्टीट्यूट फार माइन्ड बाडी मेडिसिन के वैज्ञानिकों ने कहा है कि अवसाद और तनाव के पुराने से पुराने रोगी को ना सिर्फ योग ने राहत दिलाई है बल्कि यह दिमाग और जीन्स में भी बदलाव करने में सक्षम रहा है। यह नपुंसकता के पुराने से पुराने रोग को भी भगाने की उम्मीद जगा रहा है। योग बूढ़े होने की प्रक्रिया में कमी नहीं बल्कि फुलस्टाप लगा देता है। इसका उदाहरण बूढ़ी योग गुरू ताओ पोर्चोन लिंच हैं। लिंच 93 साल की हैं। इनका नाम गिनीज बुक में भी दर्ज है। इस उम्र में भी ये जवान को मात दे रही हैं। हमारे वैदिक साहित्य में भी तापसिक साधनाओं का जिक्र है। इस साहित्य का कालखंड 900 से 500 ईसा पूर्व माना जाता है। इसी तरह सिंधु घाटी की सभ्यता की खुदाई में भी योग मुद्राओं वाली तमाम मूर्तियां मिली हैं। यह सभ्यता भी 3300 से 1700 ईसा पूर्व की मानी जाती है। हिंदु वांग्मय में, 'योग' शब्द पहले कथा उपनिषद में ज्ञानेन्द्रियों के नियंत्रण और मानसिक गतिविधि के निवारण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ था, जो उच्चतम स्थिति प्रदान करने वाला माना गया है। योग के दौरान बोले जाने वाले ओम् शब्द पर भी वैज्ञानिकों ने परीक्षण किए हैं। ओम् की ध्वनि अ उ और म शब्दों से मिलकर बनी है जिसकी प्रतिध्वनि से पाचन क्रिया ठीक रहती है और दिमाग भी शांत रहता है। साइनस और माइग्रेन जैसी बीमारियों से इससे मुक्ति मिलती है। इस शब्द के प्रतिध्वनि से योग करने वाले को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक शांति मिलती है। ओम् के उच्चारण से दिमाग के दोनों हिस्से सक्रिय हो जाते हैं। इससे दिमाग के कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है। ओम् शब्द के सुनने मात्र से चंचल मन शांत होने लगता है। जब मनुष्य का मन शांत होता है तभी किसी काम में सफलता मिलती है। मन की शांति के लिए ही ऋषियों ने हर मंत्र से पहले ओम् शब्द जोड़ा है।

योग आत्मा को परमात्मा से भी जोड़ता है। हार्वर्ड मेडिकल स्कूल और मैसच्यूसेट जनरल हास्पिटल के बेनसन हेनरी इंस्टीट्यूट फार माइन्ड बाडी मेडिसिन के वैज्ञानिकों ने कहा है कि अवसाद और तनाव के पुराने से पुराने रोगी को ना सिर्फ योग ने राहत दिलाई है बल्कि यह दिमाग और जीन्स में भी बदलाव करने में सक्षम रहा है। यह नपुंसकता के पुराने से पुराने रोग को भी भगाने की उम्मीद जगा रहा है। योग बूढ़े होने की प्रक्रिया में कमी नहीं बल्कि फुलस्टाप लगा देता है।

प्राकृतिक चिकित्सा है योग

प्राकृतिक चिकित्सा परंपरागत चिकित्सा की तुलना में सस्ती होती है। यह लंबे समय से चले आ रहे रोगों का स्थायी इलाज करती है। यह उन लोगों के लिए है जो महंगे उपचार नहीं करा सकते। योग भी एक सस्ती प्राकृतिक चिकित्सा है। यह व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्तर को उपर उठाती है। योग हमारे शरीर की प्राकृतिक देखभाल भी करता है। यह प्राकृतिक थेरपी के सिद्धांत पर काम करता है। इसमें रोगी के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए सात तत्वों का प्रयोग किया जाता है। ये सात तत्व हैं आकाश, वायु,

योग को हमेशा से ध्यान से जोड़कर देखा जाता रहा है। प्राचीन काल में गुफाओं के अंदर तमाम लोग ध्यान करते थे। इसके प्रमाण मुंबई की एलीफैंटा केव से लेकर अफगानिस्तान या जम्मू-कश्मीर में हिमालय पर्वत की गुफाओं में आज भी मिलते हैं। तमिलनाडु से लेकर असम तक और बर्मा से लेकर तिब्बत तक के जंगलों की कंदराओं में आज भी वो गुफाएं मौजूद हैं, जहां पर योग और ध्यान किया जाता था।

अग्नि, जल, मिट्टी, आहार और रामनाम। सात तत्वों के द्वारा किया जा रहा यह उपचार वर्तमान में प्रयोग की जा रही अन्य चिकित्सा प्रणालियों से सर्वथा भिन्न है। वे लोग जो प्राकृतिक चिकित्सा को एकमात्र उपचार नहीं मानते उनकी सोच गलत है। दरअसल प्राकृतिक उपचार जीवन जीने का सही तरीका है। यह एक लंबी, स्वस्थ व आनंददायक जीवन जीने की कला है। योग विज्ञान का मानना है कि शरीर में होने वाले सभी रोग अधिकतर व्यक्ति के खानपान की गलत आदतें व गलत जीवनशैली का पालन करने के कारण होते हैं। यह इस सिद्धांत पर आधारित कि प्रकृति स्वयं एक चिकित्सक है। अब धीरे-धीरे सभी समझ रहे हैं कि स्वस्थ रहने के लिए केवल प्राकृतिक तत्वों का ही प्रयोग किया जाए तो ज्यादा अच्छा है।

योग केवल व्यायाम नहीं

योग का नाम सुनते ही लोगों को व्यायाम याद आ जाता है। उन्हें लगता है कि योग महज एक व्यायाम जो सुबह उठकर करना चाहिए। कई लोग किसी पहाड़ की गुफा में बैठे किसी साधु के बारे में सोचते हैं। उन्हें यह लगता है कि योग शारीरिक व्यायाम होता है और इसे करने से इंसान फिट रहता है। जबकि योग इससे कहीं आगे है। प्राचीन काल में देश में तमाम योगी अनेक प्रकार के जानवरों को देख आसन, मुद्राएं सीखने का प्रयास करते थे। ऐसा करने से उनकी आयु में वृद्धि हुई। इतना ही नहीं प्राचीन काल में योग के माध्यम से रोग दूर करने का काम किया जाता था। योग को हमेशा से ध्यान से जोड़कर देखा जाता रहा है। प्राचीन काल में गुफाओं के अंदर तमाम लोग ध्यान करते थे। इसके प्रमाण मुंबई की एलीफैंटा केव से लेकर अफगानिस्तान या जम्मू-कश्मीर में हिमालय पर्वत की गुफाओं में आज भी मिलते हैं। तमिलनाडु से लेकर असम तक और बर्मा से लेकर तिब्बत तक के जंगलों की कंदराओं में आज भी वो गुफाएं मौजूद हैं, जहां पर योग और ध्यान किया जाता था। जिस तरह भगवान राम के निशान इस भारतीय उपमहाद्वीप में जगह-जगह बिखरे पड़े हैं उसी तरह योगियों और तपस्वियों के निशान जंगलों, पहाड़ों और गुफाओं में आज भी देखे जा सकते हैं। प्राणायाम प्राण ऊर्जा को बढ़ाता है

योग और ध्यान का एक अटूट संबंध है। इसी का एक अंग है प्राणायाम। प्राणायाम से हम अपने श्वास की वृद्धि एवं उसपर नियंत्रण कर सकते हैं। श्वास लेने की सही तकनीक का अभ्यास करने से रक्त एवं दिमाग में आक्सीजन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इससे प्राण या जीवन ऊर्जा के नियंत्रण में मदत मिलती है। प्राणायाम को आसानी से योग आसन के साथ किया जा सकता है। इन दो योग सिद्धांतों का मिलन मन एवं शरीर का उच्चतम शुद्धिकरण एवं आत्मानुशासन माना गया है। प्राणायाम की तकनीक हमारे ध्यान के भाव को भी गहरा बनाती है। दरअसल योग साधना के आठ अंग हैं, जिनमें प्राणायाम का चौथा सोपान है। प्राणायाम के बाद प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि मानसिक साधन हैं। प्राणायाम दोनों प्रकार की साधनाओं के बीच का साधन है, अर्थात यह शारीरिक भी है और मानसिक भी। प्राणायाम से शरीर और मन दोनों स्वस्थ एवं पवित्र हो जाते हैं तथा मन को शांति मिलती है।

योग के पीछे दुनिया

आखिर योग में ऐसा क्या है, जो पूरी दुनिया इसके पीछे भाग रही है। दरअसल इसका सबसे बड़ा गुण है कि यह सहज साध्य और सर्वसुलभ है। इसमें न तो कुछ विशेष व्यय होता है और न इतनी साधन-सामग्री की आवश्यकता होती है। इसे अमीर-गरीब, बूढ़े-जवान, सबल-निर्बल सभी कर सकते हैं। आपको यह युवा बनाए रखता है। इससे वीर्य की रक्षा होती है। यह पेशियों को शक्ति प्रदान करता है। इससे मोटापा घटता है और

दुर्बल-पतला व्यक्ति तंदरूस्त होता है। स्त्रियों की शरीर रचना के लिए योगासन विशेष अनुकूल है। इससे बुद्धि की वृद्धि होती है। यह मन और शरीर को स्थाई तथा सम्पूर्ण स्वस्थ रखता है। इसके द्वारा रक्त की शुद्धि होती है और मन में स्थिरता पैदा करता है। इससे शरीर के समस्त भागों पर प्रभाव पड़ता है और वह अपने कार्य सुचारू रूप से करते हैं। विभिन्न प्रकार के आसन रोग विकारों को नष्ट करते हैं। रोगों से रक्षा करते हैं। शरीर को निरोग, स्वस्थ्य एवं बलिष्ठ बनाता है। हमारी प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है। विभिन्न प्रकार के आसनों से नेत्र की ज्योति बढ़ती है। इसका निरन्तर अभ्यास करने वाले को चश्में की आवश्यकता नहीं पड़ती। योगासन से शरीर के प्रत्येक अंग का व्यायाम होता है, जिससे शरीर पुष्ट, स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनता है। इसके द्वारा मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक सभी क्षेत्रों में विकास होता है। अन्य व्यायाम पद्धतियां केवल वाह्य शरीर को ही प्रभावित करने की क्षमता रखती है, जबकि योगासन मानव की चहुँमुखी विकास करता है।

योग है बुढ़ापे का सहारा

2011 की जनगणना के अनुसार भारत में वृद्ध लोगों की जनसंख्या 7.4 प्रतिशत से अधिक है। यह वर्ग बहुत ही संवेदनशील होता है। आज इस पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। इस अवस्था में प्राकृतिक चिकित्सा ज्यादा सुगम व सस्ती साबित होगी। बुढ़ापे में जब सभी साथ छोड़ देते हैं तो ऐसे में सस्ती चिकित्सा ही सबसे सरल उपाय बन जाती है। इसमें ज्यादातर बीमारियां बचपन और जवानी में शरीर की अनदेखी के कारण होती हैं। कुछ बीमारिया तो शरीर के अंगों की शिथिलता और उन में आने वाले बदलावों के कारण होती हैं। ऐसे में योग करने पर शरीर शिथिल नहीं होता। उसके सभी अंगों में रक्त का संचार होने लगता है। मोटापा बुढ़ापे की वह परेशानी है जो जवानी के दिनों से ही शुरू हो जाती है। यह बुढ़ापे में एक रोग बन जाता है। इसके चलते शरीर की हड्डियां कमजोर होने लगती है इसमें आर्थ्राइटिस, हाईब्लडप्रैशर, मधुमेह, पथरी, कोलैस्ट्राल का बढ़ना आदि प्रमुख हैं। ये सभी योग करने से नियंत्रित रहते हैं। महिलाओं की तुलना में पुरूषों में मोटापा ज्यादा खतरनाक होता है। पुरूष महिलाओं से ज्यादा लंबे होते हैं। इसलिए उन्हें मोटापा ज्यादा परेशान करता है। मोटापा अपने साथ कई तरह की बीमारियां भी लेकर आता है। ऐसे में रोज योग की क्रिया करने पर इससे छुटकारा मिल जाता है।

ज्यादातर बीमारियाँ बचपन और जवानी में शरीर की अनदेखी के कारण होती हैं। कुछ बीमारियाँ तो शरीर के अंगों की शिथिलता और उन में आने वाले बदलावों के कारण होती हैं। ऐसे में योग करने पर शरीर शिथिल नहीं होता। उसके सभी अंगों में रक्त का संचार होने लगता है। मोटापा बुढ़ापे की वह परेशानी है जो जवानी के दिनों से ही शुरू हो जाती है। यह बुढ़ापे में एक रोग बन जाता है। इसके चलते शरीर की हड्डियां कमजोर होने लगती है इसमें आर्थ्राइटिस, हाईब्लडप्रैशर, मधुमेह, पथरी, कोलैस्ट्राल का बढ़ना आदि प्रमुख हैं। ये सभी योग करने से नियंत्रित रहते हैं।

जहाँ तक योग का सवाल है तो यह अब आश्रम और जंगलों से निकलकर क्लास रूमों और वातानुकूलित कमरों तक पहुंच गया है। भारत ही नहीं विदेशों में भी योग अब बहुत बड़ा व्यापार बन चुका है। आध्यात्मिक गुरुओं के अलावा प्रबंधन क्षेत्र के लोग भी अब देश-विदेश में योग केंद्र स्थापित करने में लगे हैं। बिना दवा के निरोग रहने के लिए अकेले अमेरिका में 3.2 करोड़ से ज्यादा लोग योग की शरण में जा चुके हैं। योग को आत्मा से मिलन का रास्ता भी कहा गया है। कई लोग योग को केवल शारीरिक व्यायाम ही मानते हैं जहाँ लोग शरीर को तोड़ते-मरोड़ते हैं और श्वास लेने के जटिल तरीके अपनाते हैं। वास्तव में देखा जाए तो ये क्रियाएँ मनुष्य के मन और आत्मा की अनंत क्षमताओं की तमाम परतों को खोलने वाला गुढ़ विज्ञान है। योग विज्ञान में जीवन शैली का पूर्ण सार आत्मसात किया गया है। इसमें ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, राज योग और मानसिक नियंत्रण मार्ग समाहित है। जब नरेंद्र मोदी ने प्रधानमंत्री पद को संभाला था तो उन्होंने पूरे विश्व से आग्रह किया कि वे स्वस्थ्य रहने के लिये योग को अपनायें। इसका असर पूरे विश्व पर पड़ा। 21 जून को संयुक्त राष्ट्र ने विश्व योग दिवस के रूप में घोषित किया है। यह भारत के लिए गर्व की बात है, क्योंकि योग की जननी तो भारत माता ही है।

vijankumarpandey@gmail.com

❑❑❑

'विपश्यना' ध्यान का विज्ञान

विजय चितौरी

देर से ही सही, लेकिन अब लोगों को यह बात समझ में आने लगी है कि आधुनिक वैज्ञानिक विकास में कहीं न कहीं बुनियादी चूक हो रही है। इसी परिप्रेक्ष्य में एक बार फिर दुनिया का ध्यान भारतीय विरासत योग, ध्यान और आयुर्वेद की ओर गया। दुनिया की तमाम प्रयोगशालाओं में इन पर शोध हो रहे हैं और लगातार चौंकाने वाले परिणाम आ रहे हैं।

ध्यान, योग, आयुर्वेद जैसी चीजें लम्बे समय तक आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में उपेक्षित रही। पश्चिमी चश्मे से देखने वाले हमारे देश के वैज्ञानिक और नीति निर्माता भी इन विरासतों के प्रति उपेक्षा भाव दर्शाते रहे। इन चीजों की सीमा मठ, मंदिर और साधु, सन्यासियों तक ही सीमित मानी जाती रही। लेकिन आज अपने को उच्चतम स्तर पर पाकर भी विज्ञान दुनिया की समस्याओं को हल करने में अपने को असमर्थ पा रहा है। आज आदमी के लोभ की सीमा नहीं है। विज्ञान के सहारे धरती की सम्पूर्ण खनिज संपदा और प्राकृतिक संसाधनों को लूटने के बावजूद उसे चैन नहीं। दुनिया भर में चिकित्सा संस्थानों और चिकित्सा सुविधाओं के विकास के बावजूद आज बीमारियों की बाढ़ आयी हुई है। दुनिया का बड़ा हिस्सा आतंकवाद और खून खराबे से कराह रहा है। लगता है यह दुनिया एक अंधी सुरंग की ओर भागी जा रही है। जहाँ उसका विनाश तय है। देर से ही सही, लेकिन अब लोगों को यह बात समझ में आने लगी है कि आधुनिक वैज्ञानिक विकास में कहीं न कहीं बुनियादी चूक हो रही है। इसी परिप्रेक्ष्य में एक बार फिर दुनिया का ध्यान भारतीय विरासत योग, ध्यान और आयुर्वेद की ओर गया। दुनिया की तमाम प्रयोगशालाओं में इन पर शोध हो रहे हैं और लगातार चौंकाने वाले परिणाम आ रहे हैं।

यहाँ हम ध्यान (मेडिटेशन) की बात कर रहे हैं। हमारे ऋषियों ने ध्यान की अनेक विधियों की खोज की थी। अब से करीब ढाई हजार साल पहले तथागत भगवान बुद्ध मानव को दुःखों से मुक्ति दिलाने के लिए मार्ग की खोज करने निकले थे। छः वर्षों तक वनों में स्थित आश्रमों में भटकते हुए उन्होंने इन विधियों को सीखा था और उनका परीक्षण किया था। अंत में बोध गया में पीपल वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान मिला था। याने वह मार्ग जिससे मानवता को दुःखों से मुक्ति दिलायी जा सकती है। भगवान बुद्ध को यह ज्ञान विपश्यना ध्यान पद्धति से मिला था। विपश्यना को पाली भाषा में 'विपस्सना' कहा गया है। बौद्ध ग्रंथों में हर जगह विपस्सना शब्द ही मिलता है। भगवान बुद्ध जीवन भर घूम घूम कर उपदेश देते रहे और बौद्ध भिक्षुओं तथा जन सामान्य को विपस्सना ध्यान का अभ्यास कराते रहे। इस अभ्यास से कितने ही लोग सम्यक सम्बुद्ध हुए। सम्यक-सम्बुद्ध वह ऊंचाई है जहाँ तक भगवान बुद्ध स्वयं पहुँचे थे। विपस्सना ध्यान की यह पद्धति करीब डेढ़ हजार वर्षों तक देश में जीवित रही। बाद में बौद्ध धर्म के लोप होने के साथ ही यह विद्या भी यहाँ से लुप्त हो गयी। सौभाग्य से इस विद्या को वर्मा के कुछ बौद्ध भिक्षुओं ने अपने असली रूप में जीवित रखा हुआ था। वहाँ वे शिविर लगाकर आम जनता को इसका अभ्यास कराया करते थे। वहाँ से विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयनका ने 1955 में यह विद्या सीखी। इसे वे भारत में लाये। यहाँ से यह भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व में तेजी से फैल रही है। लाखों लोग आज इस विद्या को सीखकर अपना कल्याण तो कर ही रहे हैं सम्पूर्ण मानवता का कल्याण भी कर रहे हैं।

1976 में महाराष्ट्र के इगतपुरी में प्रमुख विपश्यना केन्द्र 'विपश्यना विश्व विद्यापीठ' की स्थापना हुई। फिर तो धड़ाधड़ विपश्यना केन्द्र खुलने लगे। साधकों की संख्या दिन दूरी रात चौगुनी बढ़ने लगी। आज स्थिति यह है कि दुनिया के 150 से अधिक देशों में 300 से अधिक स्थायी विपश्यना केन्द्र खुल गये हैं। अस्थायी केन्द्रों और शिविरों की संख्या तो और भी ज्यादा होगी। यह विद्या सर्वसुलभ है।

विपश्यनाचार्य सत्यनारायण गोयनका

विपश्यनाचार्य सत्यनारायण गोयनका जी का जन्म वर्मा के प्रमुख नगर मांडले में सन 1924 में हुआ था। इनके माता-पिता भारत में चुरू (राजस्थान) के निवासी थे और वर्मा में व्यापार के सिलसिले में रह रहे थे। गोयनका की शिक्षा केवल हाई स्कूल तक ही हो पायी थी। हाईस्कूल में उन्होंने संपूर्ण वर्मा में सर्वोच्च अंक प्राप्त किया था। सरकारी वजीफा मिलने के बावजूद वे पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण आगे की पढ़ाई नहीं कर सके। उन्होंने अनेक वाणिज्यिक और औद्योगिक संस्थानों की स्थापना की एवं उनका कुशल संचालन किया। जब वर्मा स्वतंत्र हुआ तो वे स्वतंत्र वर्मा के व्यापार मंत्रालय की सलाहकार समिति के सदस्य मनोनीत हुए। गोयनका जी को धन, संपदा, सत्ता और यश तो खूब मिला लेकिन इसी के साथ इनका मानसिक तनाव भी बढ़ता गया। वे माइग्रेन नामक लाइलाज बीमारी के शिकार हो गये। उन्हें दौरा पड़ने लगा। दौरा पड़ने पर इन्हें मार्फिया का इंजेक्शन देना पड़ता। अपनी बीमारी के इलाज के लिए इन्होंने दुनिया के सभी बड़े नामी-गिरामी डाक्टरों से संपर्क किया। लेकिन कहीं से भी इन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। इसी समय उनके एक मित्र ऊछान हून जो वर्मा के अटार्नी जनरल थे, ने उन्हें दस दिवसीय विपश्यना ध्यान शिविर में भाग लेने की सलाह दी। गोयनका जी ने ऊ बा खिन द्वारा रंगून में संचालित दस दिवसीय शिविर में हिस्सा लिया। विपश्यना ध्यान से चमत्कार हो गया। उनका माइग्रेन हमेशा के लिए गायब हो गया।

गोयनका जी अपने गुरु ऊ बा खिन के सान्निध्य में चौदह वर्षों तक रहे। जब वे विपश्यना में पूरी तरह पक गये उनके गुरू ने 1969 में उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करके भारत भेजा और विपश्यना का अनमोल रत्न जो कभी भारत से वर्मा आया था, पुनः भारत को लौटा दिया। यहाँ आकर गोयनका जी ने विपश्यना का पहला शिविर मुम्बई की एक धर्मशाला में 3 से 14 जुलाई 1969 को लगाया। उसके पश्चात शिविरों की मांग आने लगी। 1976 में महाराष्ट्र के इगतपुरी में प्रमुख विपश्यना केन्द्र 'विपश्यना विश्व विद्यापीठ' की स्थापना हुई। फिर तो धड़ाधड़ विपश्यना केन्द्र खुलने लगे। साधकों की संख्या दिन दूरी रात चौगुनी बढ़ने लगी। आज स्थिति यह है कि दुनिया के 150 से अधिक देशों में 300 से अधिक स्थायी विपश्यना केन्द्र खुल गये हैं। अस्थायी केन्द्रों और शिविरों की संख्या तो और भी ज्यादा होगी। यह विद्या सर्वसुलभ है। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, यहूदी, बौद्ध, जैन सभी यहाँ साधक के रूप में आते हैं। वर्तमान में ये केन्द्र भारत सहित सभी बुद्धानुयायी देशों के अतिरिक्त दुबई, ओमान, बहरीन, कजाकिस्तान, पाकिस्तान, तुर्की, ईरान, बांग्लादेश, इंडोनेशिया और मलेशिया आदि मुस्लिम देशों में और इजरायल जैसे यहूदी देश में तथा यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे ईसाई देशा में खुल गये हैं।

क्या है विपश्यना ध्यान?

विपश्यना दो शब्दों से बना है जिसका अर्थ है विशेष प्रकार से देखना। इसमें साधक मन को वश में करता है। फिर उसे बाह्य सांसारिक क्रिया कलापों से विरत करके अपने शरीर के ही अंग-प्रत्यंगों के सूक्ष्म निरीक्षण में लगाता है। विपश्यना का अभ्यास 'आनापान' से शुरू होता है। आन का अर्थ है सांस लेना और अपान का अर्थ है सांस छोड़ना। इन्हें आश्वास-प्रश्वास भी कहते हैं। स्मृति पूर्वक (सजगता पूर्वक) आश्वास-प्रश्वास की क्रिया द्वारा जो समाधि (मन की एकाग्रता) बनती है उसे 'आना पान स्मृति समाधि' कहते हैं। साधक प्रारम्भ में जब आनापान स्मृति समाधि का अभ्यास शुरू करता है तो मन बहुत घबड़ाता है। साधक बार-बार मन को नासिका के अग्रभाग पर लाकर श्वाश-प्रश्वास का उससे निरीक्षण करवाता है। मन को मात्र यह देखना होता है कि श्वास आ रही है, जा रही है। श्वास आ रही है तो नासिका के किस छिद्र से कम या अधिक आ रही है और जा रही है किस छिद्र से कम या ज्यादा जा रही है। नासिका के निचले तल को छूती हुई आ रही है या ऊपरी तल को। इसी तरह जब श्वास जा रही है तब भी उसी तरह देखना होता है। उपरोक्त स्थिति को देखने के लिए मन को एकाग्र करने में कठिनाई होती है। साधक बार-बार मन को नासिका के छिद्र पर लाता है और मन बार-बार अपने स्वभाव के अनुसार भटक जाता है।

मन की एकाग्रता के साथ ही साधक मन को नाक के छिद्र के ऊपरी हिस्से तालू और सिर की ओर ले जाता है। इस समय तालू पर अलग-अलग बिन्दुओं पर अलग-अलग तरह की अनुभूतियाँ (संवेदनाएं) होने लगती हैं। ये संवेदनाएँ चींटियां रेंगने, कम्पन सी, झनझनाहट

सी और खुजलाहट सी आदि विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं। मन इन संवेदनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। लेकिन इनसे किसी तरह का राग-द्वेष नहीं करता। इन संवेदनाओं को वह तटस्थ भाव से देखता है। वह यह भी देखता है कि ये संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं और अपने आप नष्ट होती हैं। यही प्रक्रिया आगे भी जारी रहती है। मन जब सिर का निरीक्षण करता है तो वहाँ भी ऐसी ही संवेदनाएँ दिखती हैं और मन को वहाँ भी अपने को तटस्थ रखते हुए उनका निरीक्षण करना होता है। यह प्रक्रिया और आगे भी जारी रहती है। मन सिर से पांव की ओर एक-एक अंग-प्रत्यंग का निरीक्षण करते हुए और फिर पांव से सिर की ओर जाता है। मन को पूरे शरीर में वैसी ही संवेदनाएँ मिलती हैं। मन पूरे शरीर को वैसे ही तटस्थ भाव से देखता है। यह प्रक्रिया आगे भी जारी रहती है। मन शरीर के भीतरी भागों में प्रवेश करता है। एक-एक अंग का निरीक्षण करता है। आहार नली, हृदय, फेफड़े, किडनी आदि सभी। साधक देखता है कि वहाँ भी वही स्थिति है। एक स्थिति ऐसी भी आती है जब साधक को अपना पूरा शरीर ही कंपायमान अणुओं का पिण्ड दिखने लगता है। विज्ञान का आण्विक सिद्धांत तो अब आया है लेकिन विपश्यना से भगवान बुद्ध ने ढाई हजार साल पहले ही यह सब देख लिया था। जैसा कि ऊपर बताया है संवेदनाएँ पूरे शरीर में अंग-प्रत्यंग में हर जगह मिलती है। वे कभी सुखद होती हैं, कभी दुखद होती हैं। साधक को हर समय इनके प्रति समता भाव बनाये रखना होता है और इनकी नश्वरता का द्रष्टा भाव से निरीक्षण करना होता है। इसी को साधना का मूल कहा गया है। तथागत भगवान बुद्ध ने इस सम्बन्ध में कहा है -

अनिध्वा वत तङ खारा, उप्पादव्य धम्मिनो।
उपज्जित्व निरुज्ञन्त तेतं उपसमो सुखो।।

अर्थात् सभी कर्म संस्कार अनित्य हैं, परिवर्तनशील हैं। उनका संवेदनाओं के रूप में उत्पाद होना, व्यय होना नित्य धर्म है। जो व्यक्ति इन संवेदनाओं के प्रति समता में बना रहता है वह दुखों से मुक्त हो जाता है। विपश्यना के चार अंग होते हैं :-

मन की एकाग्रता के साथ ही साधक मन को नाक के छिद्र के ऊपरी हिस्से तालू और सिर की ओर ले जाता है। इस समय तालू पर अलग-अलग बिन्दुओं पर अलग-अलग तरह की अनुभूतियाँ (संवेदनाएँ) होने लगती हैं। ये संवेदनाएँ चींटियां रेंगने, कम्पन सी, झनझनाहट सी और खुजलाहट सी आदि विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं। मन इन संवेदनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करता है।

- कायानुपश्यना : काया (शरीर) के अंग-प्रत्यंग का निर्मल व एकाग्र चित्त द्वारा जब हम निरीक्षण करते हैं तो उसमें स्थूल व सूक्ष्म संवेदनाओं की अनुभूति होती है। ये संवेदनाएँ सुखद अथवा दुखद हो सकती हैं।
- वेदनानुपश्यना : सुखद या दुखद संवेदनाओं के प्रति समता भाव बनाये रखना ही वेदनानुपश्यना है।
- चित्तानुपश्यना : चित्त में उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष आदि विकारों का निरीक्षण करना ही चित्तानुपश्यना है।
- धम्मानुपश्यना : चित्त की जैसी स्थिति है उसको वैसा ही समझना और उसके प्रति समता में स्थापित होना ही धम्मानुपश्यना है।

एक विपश्यना शिविर का अनुभव

जून 2010 में मैंने सारनाथ स्थिति एक विपश्यना ध्यान केन्द्र पर दस दिवसीय शिविर में एक साधक के रूप में भाग लिया था। यह ध्यान केन्द्र सारनाथ (वाराणसी) से चार-पाँच किलोमीटर दक्षिण-पूर्व एक गाँव के पास स्थित है। सभी तरह से कोलाहल से मुक्त उक्त केन्द्र में बारहों महीने विपश्यना ध्यान का अभ्यास होता है। महीने में दस-दस दिन के दो शिविर लगते हैं। साधकों के रहने, भोजन आदि की व्यवस्था एकदम मुफ्त है। साधकों को यहां कठोर अनुशासन में रहकर साधना करनी होती है। पहले ही दिन वहाँ पहुँचते ही साधकों को आवश्यक निर्देश देने के बाद उन्हें मौन करा दिया जाता है। अगले नौ दिन उन्हें यहाँ मौन रहना होता है। बहुत जरूरी होने पर वे कोई बात यहाँ के कार्यकर्ता को लिखकर या बहुत धीमे कान में बोलकर बता सकते हैं। यहाँ प्रथम बार आने वाले साधकों को दो बार भोजन मिलता है। लेकिन पुराने साधकों को एक वक्त ही भोजन करना होता है। साधक का संपर्क शेष दुनिया से एकदम काट दिया जाता है। कोई भी साधक अपने पास कागज कलम, किताब, पत्र-पत्रिका आदि नहीं रख सकता। मोबाइल भी नहीं रख सकता। पूरे चौबीस घंटे का कार्यक्रम नियत रहता है। साधक को सुबह चार बजे उठ जाना होता है और रात्रि साढ़े नौ बजे बिस्तर पर चले जाना होता है। आमतौर पर साधक को अकेले ही एक कमरे में रहना होता है।

अमेरिका में हुए एक शोध में बताया गया है कि ध्यान से दिमाग में कुछ फायदेमंद संरचनात्मक बदलाव होते हैं। इस शोध में आठ हफ्ते तक कुछ लोगों को नियमित रूप से ध्यान कराया गया जो विपश्यना जैसा ध्यान था। शुरू में इन लोगों के दिमाग के एम.आर.आई. स्कैन किये गये और आठ हफ्ते बाद फिर एम. आर.आई. से जाँच की गयी। जांच में पाया गया कि ध्यान करने वाले के दिमाग में हिप्पोकिंपस नामक भाग में ग्रे सेल की संख्या काफी बढ़ गयी। हिप्पोकिंपस का संबंध याददाश्त और सीखने की प्रक्रिया से है।

यहाँ के चौबीस घंटे की दिनचर्या में बारह घंटे विपश्यना का अभ्यास करना होता है। साधना की अवधि अलग-अलग समय में एक घंटे से लेकर दो घंटे की होती है। सायं एक घंटे विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयनका के प्रचचन की सी.डी. दिखाई जाती थी। जो प्रत्येक दिन की साधना के ऊपर ही आधारित होती है। विपश्यना ध्यान हेतु नियुक्त आचार्य समय-समय पर साधक को अपने पास बुलाकर बहुत धीरे से साधना की बारीकी बताया करते हैं। नवें दिन साधकों का मौन टूट जाता है। लेकिन अभी किसी को घर जाने की अनुमति नहीं दी जाती। एकाएक बाहरी दुनिया के संपर्क में आना नुकसानदायक हो सकता है।

विपश्यना ध्यान का विज्ञान

ध्यान को धार्मिक रूढ़ि मानकर काफी वक्त तक नये जमाने के लोग इस पर ध्यान नहीं देते थे। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में जो शोध हुए हैं उसमें 'ध्यान' को मजबूत आधार मिला। शोधों में ध्यान के फायदों के अनेक सबूत मिले हैं। पिछले दिनों अमेरिका में हुए एक शोध में बताया गया है कि ध्यान से दिमाग में कुछ फायदेमंद संरचनात्मक बदलाव होते हैं। इस शोध में आठ हफ्ते तक कुछ लोगों को नियमित रूप से ध्यान कराया गया जो विपश्यना जैसा ध्यान था। शुरू में इन लोगों के दिमाग के एम.आर.आई. स्कैन किये गये और आठ हफ्ते बाद फिर एम.आर.आई. से जांच की गयी। जांच में पाया गया कि ध्यान करने वाले के दिमाग में हिप्पोकिंपस नामक भाग में ग्रे सेल की संख्या काफी बढ़ गयी। हिप्पोकिंपस का संबंध याददाश्त और सीखने की प्रक्रिया से है। याने ध्यान करने वालों की याददाश्त और सीखने की शक्ति बढ़ गयी। यह भी देखा गया कि तनाव से संबंधित भाग जिसे एमाइग्डाला कहते हैं, उसमें ग्रे सेल की संख्या में कमी आ गयी थी। जिन लोगों ने ध्यान नहीं किया था, उनके दिमाग में ऐसे कोई परिवर्तन नहीं देखे गये। 2009 के एक शोध से पता चला कि ध्यान से हृदय रोग से पीड़ित व्यक्ति का ब्लड प्रेशर कम हुआ और 2007 का एक शोध बताता है कि ध्यान करने से एकाग्रता की क्षमता बढ़ती है। 2008 में हुए एक शोध से एक और दिलचस्प बात सामने आयी। शोधकर्ताओं ने पाया कि अब ध्यान करने वालों ने किसी व्यक्ति को तकलीफ में देखा तो उनके दिमाग में टेम्पोरल पेराइटल संधि स्थानों पर सामान्य से ज्यादा हलचल हुई इसका अर्थ यह है कि ध्यान करने वालों में दूसरों के प्रति संवेदनशीलता और सहानुभूति भी बढ़ जाती है।

ये नतीजे बताते हैं कि ध्यान करना खुद के स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा है और दूसरों के लिए भी। यानी ध्यान सिर्फ हमारी सेहत ही नहीं सुधारता, बल्कि हमें बेहतर इंसान बनाने में भी मदद करता है। कई अस्पतालों में हुए शोध यह बताते हैं कि नियमित ध्यान करने वाले मरीज बीमारियों से जल्दी उबरते हैं। यूं हम मान लेते हैं कि आधुनिक जीवन में तनाव ज्यादा है लेकिन प्राचीन काल में तो जीवन ज्यादा कठिन था। प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा कम थी, चिकित्सा विज्ञान भी उतना विकसित नहीं था, युद्ध, महामारी आदि के खतरे ज्यादा थे। असुरक्षा और अनिश्चितता तब ज्यादा थी लेकिन तब मनुष्य ने अपने अंदर झांककर अपनी आत्मा में शांति और ठहराव का मार्ग खोजा। हमें आधुनिक समय में ऐसा लगा कि विज्ञान और तकनीक से हमारी काफी सारी समस्याएं हल हो जायेंगी लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं हुआ। जीवन में तनाव और निराशा बढ़ गयी। आदमी स्वार्थ में अंधा हुआ जा रहा है। किसी को भी अपनी स्थिति से संतोष नहीं है। लोग दुनिया की सारी दौलत हड़पकर भी सुखी नहीं हैं। अशांत हैं। समाज में अत्याचार और अनाचार बढ़ता जा रहा है। यह सब कानून बनाने, जेल और अदालते बढ़ाने से रुकने वाला नहीं। इसके लिए तो जन-जन को वह विधि बतानी होगी जिससे उसका चित्त शांत हो। वह विधि निश्चय ही 'ध्यान' ही हो सकती है।

Gawnkinaiawaj@gmail.com
❑❑❑

आदिवासी औषधि संपदा

डॉ.स्वाति तिवारी

सामान्यतः 'आदिवासी' (ऐबोरिजिनल) शब्द का प्रयोग किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना सम्बन्ध रहा हो। परन्तु संसार के विभिन्न भूभागों में जहाँ अलग-अलग धाराओं में अलग-अलग क्षेत्रों से आकर लोग बसे हों उस विशिष्ट भाग के प्राचीनतम अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है। आदिवासी के समानार्थी शब्दों में ऐबोरिजिनल, इंडिजिनस, देशज, मूल निवासी, जनजाति, वनवासी, जंगली, गिरिजन, अधिकांश आदिवासी संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते हैं। वे सामन्यतः क्षेत्रीय समूहों में रहते हैं और उनकी संस्कृति अनेक दृष्टियों से स्वयंपूर्ण रहती है। इन संस्कृतियों में ऐतिहासिक जिज्ञासा का अभाव रहता है तथा ऊपर की थोड़ी ही पीढ़ियों का यथार्थ इतिहास क्रमशः किंवदंतियों और पौराणिक कथाओं में घुल मिल जाता है। सीमित परिधि तथा लघु जनसंख्या के कारण इन संस्कृतियों के रूप में स्थिरता रहती है, किसी एक काल में होनेवाले सांस्कृतिक परिवर्तन अपने प्रभाव एवं व्यापकता में अपेक्षाकृत सीमित होते हैं। परंपरा केंद्रित आदिवासी संस्कृतियाँ इसी कारण अपने अनेक पक्षों में रूढ़िवादी सी दीख पड़ती हैं। भारत में अनुसूचित आदिवासी समूहों की संख्या 700 से अधिक है। प्रजातीय दृष्टि से इन समूहों में नीग्रिटो, प्रोटो-आस्ट्रेलायड और मंगोलायड तत्व मुख्यतः पाए जाते हैं। आदिवासी अपनी पारंपरिक जीवन शैली में ही रहना पसंद करते है भारत के आदिवासी जनजातियाँ जो पहाड़ों, जंगलों में प्रकृति के निकट प्राकृतिक रूप से अलग थलग पड़े इलाकों में रहते ही आमतौर पर ये गांवों, कस्बों, शहरों से अलग थलग रहते है, डॉक्टर, अस्पताल दवाईयाँ उनके लिए मुश्किल होता है, अतः वे प्रकृति से ही अपना इलाज करते है पीढ़ी दर पीढ़ी वे अपने पारम्परिक लोकज्ञान का ही सहारा लेते है वे कई जड़ी बूटियों के ज्ञाता भी होते है। आयुर्वेद कहता है कि अधिकांश रोगों का इलाज हमारे आसपास उगने वाली वनस्पतियों में होती है ठीक यही बात आदिवासी हर्बल ज्ञाता भी कहते है कि किसी भी रोग की दावा रोगी के निवास से 19 किलोमीटर के दायरे में ही मौजूद रहती है। आदिवासी हर्बल ज्ञान जांचा परखा है इस लोक विज्ञान का प्रसार पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहा है। आदिवासी ज्ञान की इस संपदा का फायदा ग्रामीण चिकित्सा में भी देखा गया है।

आदिवासी ज्ञान की यह अनुभव जन्य परंपरा हमारे सामाजिक जीवन का भी हिस्सा है जैसे तुलसी, आंवला, हर्र, बहेड़ा, पलाश, जामुन, कांदा, आश्वगंधा इत्यादि। यह पारंपरिक उपचार प्रणाली भारतीय लोकविज्ञान की महत्वपूर्ण संपदा है जिसे एलोपैथी ने थोड़ा कम कर दिया है लेकिन यही एक ऐसा ज्ञान है जिसके साइड इफेक्ट बहुत कम है। यही पारंपरिक ज्ञान हमारी नानी-दादी के घरेलु नुस्खे में भी देखी गई है। वे अपने रोगों के लिए वनस्पति पर ही निर्भर करते है शायद आयुर्वेद में भी इसी आदिवासी खोजों का कोई अनकहा योगदान रहा हो? हमारे ऋषि मुनियों का ज्ञान आयुर्वेद, सुश्रुत, चरक जैसे ग्रंथों में सदियों से सहेजा हुआ है किन्तु यह विडम्बना रही है कि सदियों पुराना जनजातीय ज्ञान वाचिक परम्परा में ही चलता रहा है उसका दस्तावेजीकरण नहीं हो पाया। यदि इसका दस्तावेजीकरण कर लिया जाए तो इथानोबोटनी, हर्बलोजी, फार्मेसी में कई नए अध्याय जुड़ सकते है। आईये कुछ महत्वपूर्ण वनस्पतियों पर नजर डालते है जिनका उपयोग आदिवासी समाज सदियों से करता आया है।

आदिवासी जामुन और आवले के पत्ते मिला कर पिस लेते है पानी के साथ यह पिसा अर्क मिला कर कुल्ला करने से छाले का इलाज करते है, आवले और जामुन के फलो का रस मिला कर रक्त कि कमी ठीक कर लेते है जामुन की छाल पीस कर उसका लेप घुटनों पर लगा ने से दर्द में कमी आती है।

जामुन

जामुन मूल रूप से भारत का पौधा है। यह वृक्ष ऊँचा और सदाबहार होता है। इसलिए इसे एक छायादार वृक्ष या हवादार वृक्ष के रूप में उगाया जाता है। हालांकि इसके फलों को सभी के द्वारा पसंद किया जाता है और उच्च दामों में बेचा जाता है तो भी यह वृक्ष एक बगीचे के पेड़ के रूप में अभी तक नहीं उगाया जाता है। लवणीय, क्षारीय, आर्द्र जलभराव वाले क्षेत्रों में इसे उगाया जा सकता है। नहरो और नदियो के किनारे की मृदा संरक्षण के लिए भी यह वृक्ष उपयुक्त होता है। मृदा संरक्षण के लिए भी यह वृक्ष उपयुक्त होता है। जामुन का अर्क मधुमेह, रक्त शर्करा को कम करने में बहुत उपयोगी होता है।

- फूल उत्तर भारत में शहद के प्रमुख स्त्रोत के रूप में उपयोग किये जाते है।
- फल में रोग प्रतिरोधी गुण पाये जाते है और बहुत से रोगो के इलाज में दवा तैयार करने में उपयोग किये जाते है।
- फलों का उपयोग जेली, मुरब्बा, संरक्षित खाद्य पदार्थ, शर्बत और शराब बनाने में भी किया जाता है।
- बीजों का उपयोग मधुमेह में एक प्रभावी दवा के लिए किया जाता है।
- ताजे फलों का उपयोग खाने के लिए किया जाता है।

आदिवासी जंगल के जामुन का भरपूर सेवन करते हैं वे जामुन और आवले के पत्ते मिला कर पीस लेते हैं पानी के साथ यह पिसा अर्क मिला कर कुल्ला करने से छाले का इलाज करते है, आवले और जामुन के फलों का रस मिला कर रक्त की कमी ठीक कर लेते हैं जामुन की छाल पीस कर उसका लेप घुटनों पर लगाने से दर्द में कमी आती है। आदिवासी समुदाय जामुन की गुठली को सुखा कर पिस लेते है यह चूर्ण रक्तशर्करा को कम करता है अतः वे इसे चूर्ण कि तरह फंकी लेते है जामुन गहरे रंग का तुरे स्वाद वाला फल है जो एंटी ओक्सिडेंट से भरा होता है साथ ही यह आयोडीन की कमी भी दूर करता है। आदिवासी जामुन को अपनी चिकित्सा में सहजता से इस्तेमाल करते हैं।

गिलोय

गिलोय (अंग्रेज़ी रूटीनोस्पोरा कार्डीफोलिया) की एक बहुवर्षीय लता होती है। इसके पत्ते पान के पत्ते की तरह होते हैं। आयुर्वेद में इसको कई नामों से जाना जाता है यथा अमृता, गुडुची, छिन्नरुहा, चक्रांगी, आदि। बहुवर्षायु तथा अमृत के समान गुणकारी होने से इसका नाम अमृता है। आयुर्वेद साहित्य में इसे ज्वर की महान औषधि माना गया है एवं जीवन्तिका नाम दिया गया है। गिलोय की लता जंगलों, खेतों की मेड़ों, पहाड़ों की चट्टानों आदि स्थानों पर सामान्यतः कुण्डलाकार चढ़ती पाई जाती है। नीम, आम्र के वृक्ष के आस-पास भी यह मिलती है। जिस वृक्ष को यह अपना आधार बनाती है, उसके गुण भी इसमें समाहित रहते हैं। इस दृष्टि से नीम पर चढ़ी गिलोय श्रेष्ठ औषधि मानी जाती है। इसका काण्ड छोटी अंगुली से लेकर अंगूठे जितना मोटा होता है। बहुत पुरानी गिलोय में यह बाहु जैसा मोटा भी हो सकता है। इसमें से स्थान-स्थान पर जड़ें निकलकर नीचे की ओर झूलती रहती हैं। चट्टानों अथवा खेतों की मेड़ों पर जड़ें जमीन में घुसकर अन्य लताओं को जन्म देती है आयुर्वेद में गिलोय बुखार कम कराने के लिए उपयोगी है वही आदिवासी इसका उपयोग कई रोगों के उपचार में करते है। गुड़ के साथ गिलोय का सेवन करने से कब्ज में फायदा होता है। पातालकोट के आदिवासी मानते है कि गिलोय के तने और बबूल की फलियों के चूर्ण को दांतों में मंजन करने से झुंझुनाहट बंद हो जाती है गुजरात के आदिवासी गिलोय के ताजे रस को प्रतिदिन दिन में दो बार लेने से मधुमेह में उपयोगी मानते है गिलोय का काड़ा प्रसूता को देने कि सलाह देते है जिससे दूध आसानी से आने लगता है। वनस्पति विज्ञान के अनुसार गिलोय में प्रमुख रसायनो में गिलोइन नामक कड़वा ग्लुकोसाइड, वसा, अल्कोहल ग्लिस्तेरोल, बर्बेन एल्केलायट, वसा अम्ल और वाष्पशील तेल होता है। इसकी पत्तियों में प्रोटीन, केल्शियम, फास्फोरस और ताने में स्टार्च होता है। बेल के काण्ड की ऊपरी छाल बहुत पतली, भूरे या धूसर वर्ण की होती है, जिसे हटा देने पर भीतर का हरित मांसल भाग दिखाई देने लगता है। काटने पर अन्तर्भाग चक्राकार दिखाई पड़ता है। पत्ते हृदय के आकार के, खाने के पान जैसे एकान्तर क्रम में व्यवस्थित होते हैं। ये लगभग 2 से 4 इंच तक व्यास के होते हैं। स्निग्ध होते हैं तथा इनमें 7 से 9 नाड़ियाँ होती हैं। पत्र-डण्ठल लगभग 1 से 3 इंच लंबा होता है। फूल ग्रीष्म ऋतु में छोटे-छोटे पीले रंग के गुच्छों में आते हैं। फल भी गुच्छों में ही लगते हैं तथा छोटे मटर के आकार के होते हैं। पकने पर ये रक्त के समान लाल हो जाते हैं। बीज सफेद, चिकने, कुछ टेढ़े, मिर्च के दानों के समान होते हैं। उपयोगी अंग काण्ड है। पत्ते भी प्रयुक्त होते हैं। ताजे काण्ड की छाल हरे रंग की तथा गूदेदार होती है। उसकी बाहरी त्वचा हल्के भूरे रंग की होती है तथा पतली, कागज के पत्तों के रूप में छूटती है।

स्थान-स्थान पर गांठ के समान उभार पाए जाते हैं। सूखने पर यही काण्ड पतला हो जाता है। सूखे काण्ड के छोटे-बड़े टुकड़े बाजार में पाए जाते हैं, जो बेलनाकार लगभग 1 इंच व्यास के होते हैं। इन पर से छाल काष्ठीय भाग से आसानी से पृथक की जा सकती है। स्वाद में यह तीखी होती है, पर गंध कोई विशेष नहीं होती। पहचान के लिए एक साधारण-सा परीक्षण यह है कि इसके क्वाथ में जब आयोडीन का घोल डाला जाता है तो गहरा नीला रंग हो जाता है। यह इसमें स्टार्च की उपस्थिति का परिचायक है। सामान्यतः इसमें मिलावट कम ही होती है, पर सही पहचान अनिवार्य है। कन्द गुडूची व एक असामी प्रजाति इसकी अन्य जातियों की औषधियाँ हैं, जिनके गुण अलग-अलग होते हैं।

गिलोय बुखार कम कराने के लिए उपयोगी है वही आदिवासी इसका उपयोग कई रोगों के उपचार में करते है। गुड के साथ गिलोय का सेवन करने से कब्ज में फायदा होता है। पातालकोट के आदिवासी मानते है कि गिलोय के तने और बबूल की फलियों के चूर्ण को दांतों में मंजन करने से झुंझुनाहट बंद हो जाती है।

हरीतकी अर्थात हरड़ा या हरर

हरीतकी अर्थात हरड़ा या हरर को वैद्यों ने चिकित्सा साहित्य में अत्यधिक सम्मान देते हुए उसे अमृतोपम औषधि कहा है। राज बल्लभ निघण्टु के अनुसार- यस्य माता गृहे नास्ति, तस्य माता हरीतकी, कदाचिद् कुप्यते माता, नोदरस्था हरीतकी। (अर्थात् हरीतकी मनुष्यों की माता के समान हित करने वाली है। माता तो कभी-कभी कुपित भी हो जाती है, परन्तु उदर स्थिति अर्थात् खायी हुई हरड़ कभी भी अपकारी नहीं होती।)

दो प्रकार के हरड़ बाजार में मिलते हैं - बड़ी और छोटी। बड़ी में पत्थर के समान सख्त गुठली होती है, छोटी में कोई गुठली नहीं होती, वैसे फल जो गुठली पैदा होने से पहले ही पेड़ से गिर जाते हैं या तोड़कर सुखा लिया जाते हैं उन्हें छोटी हरड़ कहते हैं। आयुर्वेद के जानकार छोटी हरड़ का उपयोग अधिक निरापद मानते हैं क्योंकि आँतों पर उनका प्रभाव सौम्य होता है, तीव्र नहीं। इसके अतिरिक्त वनस्पति शास्त्रियों के अनुसार हरड़ के 3 भेद और किए जा सकते हैं- पक्व फल या बड़ी हरड़, अर्धपक्व फल पीली हरड़ (इसका गूदा काफी मोटा स्वाद में कसैला होता है।) अपक्व फल जिसे ऊपर छोटी हरड़ नाम से बताया गया है। इसका वर्ण भूरा-काला तथा आकार में यह छोटी होती है। यह गंधहीन व स्वाद में तीखी होती है। फल के स्वरूप, प्रयोग एवं उत्पत्ति स्थान के आधार पर भी हरड़ को कई वर्ग भेदों में बाँटा गया है पर छोटी स्याह, पीली जर्द, बड़ी काबुली ये 3 ही सर्व प्रचलित हैं।

औषधि प्रयोग हेतु फल ही प्रयुक्त होते हैं एवं उनमें भी डेढ़ तोले से अधिक भार वाली भरी हुई, छिद्र रहित छोटी गुठली व बड़े खोल वाली हरड़ उत्तम मानी जाती है। भाव प्रकाश निघण्टु के अनुसार जो हरड़ जल में डूब जाए वह उत्तम है। हरड़ में ग्राही (एस्ट्रिन्जेन्ट) पदार्थ है, टैनिक अम्ल (बीस से चालीस प्रतिशत) गैलिक अम्ल, चेबूलीनिक अम्ल और म्यूसीलेज। रेजक पदार्थ हैं एन्थ्राक्वीनिन जाति के ग्लाइको साइड्स। इनमें से एक की रासायनिक संरचना सनाय के ग्लाइको साइड्स सिनोसाइड से मिलती जुलती है। इसके अलावा हरड़ में 10 प्रतिशत जल, 13.9 से 16.4 प्रतिशत नॉन टैनिन्स और शेष अघुलनशील पदार्थ होते हैं। वेल्थ ऑफ इण्डिया के वैज्ञानिकों के अनुसार ग्लूकोज, सार्बिटाल, फ्रूक्टोस, सुकोस, माल्टोस एवं अरेबिनोज हरड़ के प्रमुख कार्बोहाइड्रेट हैं। 18 प्रकार के मुक्तावस्था में अमीनो अम्ल पाए जाते हैं। फास्फोरिक तथा सक्सीनिक अम्ल भी उसमें होते हैं। फल जैसे पकता चला जाता है, उसका टैनिक एसिड घटता एवं अम्लता बढ़ती है। बीज मज्जा में एक तीव्र तेल होता है।

हरीतकी एक प्रभावी औषधि भी है। इसके गुणों का लाभ लेने के लिए विभिन्न ऋतुओं में ही इसका सेवन इस तरह करना चाहिए : वर्षा ऋतु में सेंधा नमक के साथ। शरद ऋतु में शक्कर के साथ। हेमंत ऋतु में सोंठ के साथ। शिशिर ऋतु में पीपल के साथ। बसंत ऋतु में शहद के साथ। हर्रे में 34% टैनिक एसिड, गेलिक एसिड, चबुलिनिक एसिड, सक्सीनिक एसिड, फास्फोरिक एसिड, एमिनो एसिड,म्यूसीलेज, लेष्मा और ग्लाइकोसाइद पाए जाते हैं। इतने सारे एसिड की उपस्थिति ही इसे रसायन भी बनाती है। इसका वैज्ञानिक नाम है टर्मीनलिया चेबुला। हर्रे से आप अपना कायाकल्प भी कर सकते हैं रोज 2 हर्रे 9 मुनक्का के साथ सुबह खाली पेट खा लीजिये। 5 महीने तक लगातार खाने से शरीर के अधिकाँश रोग दूर होकर शरीर कांतिमय और बलशाली हो जाएगा उसके बाद मौसम के अनुसार हर्रे का सेवन कीजिए। जैसे वर्षा के मौसम में 2 हर्रे सेंधा नमक के साथ, जाड़े में चीनी के साथ, दिसंबर जनवरी के जाड़े में सोंठ के साथ, बसंत ऋतु में शहद के साथ, गरमी में गुड के साथ और शिशिर ऋतु में पीपल के चूर्ण के साथ हर्रे का सेवन आपने कर लिया तो शरीर में कोई रोग बचेगा ही नहीं गुजरात के आदिवासी मानते है कि इसके चूर्ण को पसीने वाली जगह लगाकर मालिश कर ली जाये फिर नहा लिया जाय तो पसीना आना बंद हो जाता है। इसके चूर्ण को काले नमक के साथ खाने से कफ ख़त्म हो जाता है। पातालकोट के आदिवासी हर्रा के फलों का छिलका सुखा लेते है इस चूर्ण का 5-5 ग्राम सुबह शाम पीलिया ग्रसित रोगियों को ताजे पानी से देने पर पीलिया ठीक हो जाता है। आदिवासी हर्र का मुर्रब्बा तैयार करते है इस मुर्रब्बे को खाने से चक्कर आना बंद हो जाता है पावडर का फकने से बहरापन दूर हो जाता है।

दारुहल्दी-ख्बर्बेरिस आरिस्टा टा

पर्वतीय क्षेत्र में पाया जाने वाला बहुत ही उपयोगी पौधा है। इसे दारुहरिद्रा और हेमकान्ता के नाम से भी जाना जाता है। दारु लकड़ी को कहा जाता है। इसकी लकड़ी चीर कर देखें तो वह अन्दर से हल्दी जैसे गहरे पीले रंग की होती है। इसकी जड़ की लकड़ी को टुकड़े-टुकड़े कर के सोलह गुना पानी में पकाएं। जब वह एक चौथाई रह जाए तो उसे छानकर किसी बर्तन में पकाएं। जब वह गाढ़ा होकर ठोस आकार लेने लगे, यो उसे उतार लें। यह पदार्थ रसौंत कहलाता है। हमारे देश में पुराने समय में रसौंत घर घर में आमतौर पर आवश्यक रूप से रखी जाने औषधि थी। नन्हे शिशुओं को दांत निकलते समय आमतौर पर dysentery या infections हो जाते हैं। तब रसौंत को थोडा घिसकर बच्चे को चटा देने से बहुत आराम आ जाता है। पटल कोट के आदिवासी मानते है कि हर्निया के इलाज में दारु हल्दी के पौधे को सुखाकर तैयार चूर्ण को पानी के साथ लेने पर वह ठीक हो जाता है। मसूड़ों को मजबूत बनाने के लिए ये आदिवासी दारुहल्दी का काड़ा बनाकर उससे गरारे करते है इससे दन्त दर्द भी बंद हो जाता है। कितना भी पुराना बुखार क्यों न हो, दारुहल्दी की मदद से ठीक हो जाता है। अगर हल्का बुखार चलता ही जा रहा हो, किसी भी तरह आराम न आ रहा हो तो, 5 ग्राम दारुहल्दी, 5 ग्राम सूखी गिलोय और 5 तुलसी के पत्ते ; इन्हें 400 ग्राम पानी में उबालकर काढ़ा बनाकर, सवेरे शाम पीयें। इसकी पत्तियों को पीसकर उनका रस त्वचा पर लगाकर मालिश करने से त्वचा के रोग नहीं होते।

हर्रे से आप अपना कायाकल्प भी कर सकते हैं रोज 2 हर्रे9 मुनक्का के साथ सुबह खाली पेट खा लीजिये। 5 महीने तक लगातार खाने से शरीर के अधिकाँश रोग दूर होकर शरीर कांतिमय और बलशाली हो जाएगा उसके बाद मौसम के अनुसार हर्रे का सेवन कीजिए।

यह शरीर की रोग प्रति रोधक क्षमता को बढाती है। लीवर को ठीक रखती है और आँतों के infections को खत्म करती है। पीलिया में इसका रस देने से पीलिया ठीक हो जाता है।

अशोक (साराका इण्डिका)

जिस वृक्ष के नीचे बैठने से शोक नहीं होता उसे अशोक कहते हैं अथवा जो स्त्रियों के समस्त शोकों को दूर भगाता है, वह वृक्ष दिव्य औषधि अशोक ही है, ऐसा मत है। इसे हेम पुष्प (स्वण वर्ण के फूलों से लदा) तथा तामृपवल्लव नाम से भी संस्कृत में पुकारते हैं। आदिवासी हर्बल ज्ञाता मानते है कि अशोक की आठ नयी कलियों का नित्य सेवन करे तो वह मासिक धर्म संबंधी समस्त क्लेशों से मुक्त हो जाती है। उसके बांझपन का कष्ट दूर होता है और मातृत्व की इच्छा पूरी होती है। दांग गुजरात के आदिम समुदाय इसके फलों के बीजो को पान के साथ चबाते है जिससे सांस फूलने या दमा रोग में आराम मिलाता है? पाताल कोट के आदिवासी बेगा समुदाय के लोगों का मत है अशोक की त्वचा (छाल) रक्त प्रदर में, पेशाब रुकने तथा बंद होने वाले रोगों को तुरंत लाभ करती है। अशोक रक्त प्रदर नामक स्त्रियों के शोक को हरने वाला है। यह औषधि सीधे ही गर्भाशय की मांस पेशियों को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त यह गर्भाशय की अंतः सतह जिसे एण्डोमेट्रीयम कहते हैं और डिम्ब ग्रंथि ओवरी के ऊतकों पर भी लाभकारी प्रभाव डालती है। गर्भाशय के अर्बुद (फायब्राइड ट्यूमर) के कारण अतिरिक्त स्राव (मिनोरेजिमा) में यह विशेष लाभ करती है। पाताल कोट के आदिवासी समुदाय अशोक कि छल को सुखाकर रख लेते है और शहद के साथ लेते है। अशोक का वानस्पतिक नाम साराका इण्डिका है। आदिवासी ज्ञान की पुष्टि आयुर्वेद की अशोकारिष्ठ नमक औषधि से होती है जो महिलाओं को दी जाती है। सदा हरित वृक्ष आम के समान 25 से 30 फुट तक ऊँचा, बहुत सी शाखाओं से युक्त घना व छायादार होता है । देखने में यह मौलश्री के पेड़ जैसा लगता है, परन्तु ऊँचाई में उससे छोटा ही होता है। तना कुछ लालिमा लिए भूरे रंग का होता है। यह वृक्ष सारे भारत में पाया जाता है ।

इसके पल्लव 9 इंच लंबे, गोल व नोंकदार होते हैं। ये साधारण डण्ठल के व दोनों ओर 5-6 जोड़ों में लगते हैं । कोमल अवस्था में इनका वर्ण श्वेताभ लाल फिर गहरा हरा हो जाता है। पत्ते सूखने पर लाल हो जाते हैं। फल वसंत ऋतु में आते हैं। पहले कुछ नारंगी, फिर क्रमशः लाल हो जाते हैं। ये वर्षा काल तक ही रहते हैं। अशोक के सत्व को बाजार में फीमेल टॉनिक के तौर पर जाना जाता है, जो महिलाओं की प्रजनन क्षमता को बढ़ाता है। इसके साथ ही अशोक की छाल का अर्क या काढ़ा खूनी बवासीर में भी कारगर पाया गया है।

stswatitiwari@gmail.com

❑❑❑

विज्ञान साहित्य
की वर्तमान स्थिति तथा संभावनाएं

डॉ.शिवगोपाल मिश्र

1800 ई. में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हो जाने से वहाँ अन्य विषयों के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं का भी शिक्षण शुरू हुआ। बंगाल में ईस्ट इंडिया कम्पनी के पुराने अधिकारी संस्कृत,अरबी और फारसी को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे किन्तु मुनरो तथा एलफिंस्टन जैसे प्रबुद्ध ब्रिटिश शासक बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्षपाती थे। मैकाले का तर्क था कि जनता में पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने का माध्यम केवल अंग्रेजी बन सकती है । फलस्वरूप 7 मार्च 1835 को विलियम बेंटिक ने मैकाले का समर्थन करते हुए अंग्रेजी को उच्च शिक्षा का माध्यम बना दिया।

वैसे तो 1835 के पूर्व कतिपय अंग्रेजी विद्वान बंगला, हिन्दुस्तानी तथा मराठी भाषाओं का प्रयोग विज्ञान के प्रचार-प्रसार, हेतु शुरू कर चुके थे। उदाहरणार्थ 1817 ई. में स्कूल बुक सोसाइटी की स्थापना की गई और 1819 में फैनालिक्स ने बंगला में विश्वकोश तैयार किया और शरीर विज्ञान पर एक पाठ्य पुस्तक तैयार की। कुछ अन्य ऐंग्लो इंडियन शिक्षाशास्त्रियों ने भी भारतीय भाषाओं में अनुवाद कार्य शुरू किया। 1820-25 ई. में हिन्दुस्तानी मेडिकल स्कूल के प्रधानाध्यापक डॉ.टिटलर ने मेडिकल पुस्तकों का बंगला में अनुवाद किया। मराठी में तो 1815 से ही वैज्ञानिक पुस्तकों का अनुवाद शुरू हो चुका था। हिन्दी पट्टी में वैज्ञानिक पुस्तकों के लेखन या अनुवाद का कार्य काफी बाद में शुरू हुआ।

जब मिशनरियों ने हिन्दी क्षेत्रों में मिशन स्कूल खोले तो सर्वप्रथम उनका ध्यान पाठ्यपुस्तकें तैयार करने की ओर गया। उस समय आगरा, मिर्जापुर तथा मुंगेर मिशन के गढ़े थे। 1822 में टामसन नामक एक यूरोपियन ने ज्योतिष और गोलाध्याय नामक एक ज्योतिष विषयक महत्वपूर्ण पाठ्य पुस्तक लिखी । इसमें खगोल तथा भूगोल का वर्णन था। टामसन लल्लू लाल जी के समकालीन थे। तब लल्लू लाल जी फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दी विद्वान के रूप में हिन्दी गद्य को परिष्कृत करने में लगे थे।

1837 में आगरा की स्कूल बुक सोसाइटी ने कई पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये। यहीं से 1847 में विज्ञान विषयक पुस्तक 'रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर' छपी। 1862 में अलीगढ़ से सर सैयद अहमद ने कई अंग्रेजी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद कराया। उस समय हिन्दी में राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द (1860),लक्ष्मी शंकर मिश्र (1873-1885) तथा मुंशी रतनलाल (1887) मिडिल कक्षाओं के लिए विविध विषयों के साथ गणित और विज्ञान की पुस्तकें लिख रहे थे ।

पश्चिमोत्तर प्रदेश के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी थी। अतः पाठ्य पुस्तकें तैयार करने पर बल था। यू.पी. में अंग्रेज अफसरों ने राजा शिव प्रसाद को हिन्दुस्तानी का पक्षधर बना लिया था । इसी तरह बिहार में राय सोहन लाल भी हिन्दुस्तानी के पक्षधर बने । केवल लल्लू लाल शास्त्रीय ज्ञानवर्धक पुस्तकों में परिमार्जित भाषा का प्रयोग कर रहे थे। उनके बाद काफी समय तक हिन्दी गद्य की स्थिति बदतर बनी रही।

राजा शिवप्रसाद काशी के ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन थे और प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। उन्होंने बड़े ही परिश्रम से हिन्दी में प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकें लिखीं जिनमें भूगोल तथा विज्ञान की पुस्तकें मुख्य थीं। वे बनारस सर्किल तथा इलाहाबाद सर्किल के इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स

रहे। उन्होंने आगरा और झांसी कमिश्नरियों में भी इसी पद पर कार्य किया। उन्होंने स्कूली पाठ्यक्रम की जिन दो पुस्तकों की रचना की वे थी विद्यांकुर (1876) तथा भूगोल हस्तामलक। 'विद्यांकुर' प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानी की मिली जुली पुस्तक थी। इसमें जीव विज्ञान,वनस्पति शास्त्र, पदार्थ विज्ञान, नागरिक शास्त्र,राजनीति शास्त्र का वर्णन था। उन्होंने इसका उर्दू संस्करण 'हकाइकुल मौजूदात' नाम से निकाला। 'भूगोल हस्तामलक' का प्रथम भाग 400 पृष्ठों का था जिसमें एशिया का वर्णन था।

इन दोनों पुस्तकों के अलावा उन्होंने एक तीसरी पुस्तक भी लिखी जो हिन्दी गद्य-पद्य संग्रह 'गुटका' या 'हिन्दी सेलेक्शन्स' के नाम से 867 में बनारस के मेडिकल हाल से छपी थी। यह 'गुटका' ब्रिटिश शासन के जूनियर सिविल सर्वेन्टों और फौजी अफसरों की हिन्दी परीक्षा के पाठ्यक्रम के तौर पर पढाया जाता था। राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द ने एक पाठ्य पुस्तक की भूमिका में अपने द्वारा अपनाई गई भाषा नीति के विषय में लिखा-'हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े, चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए जो आमफहम और खासपसंद हों अर्थात् जिनको जियादह आदमी समझ सकते हैं और यहां के पढ़े-लिखे, आलिम-फाजिल, पंडित, विद्वान की बोलचाल में छोड़े नहीं गये हैं और जहाँ तक बन पड़े हम लोगों को हर्गिज गैरमुल्क के शब्द काम में न लाना चाहिए और न संस्कृत की टकसाल कायम करके नए नए ऊपरी शब्दों के सिक्के जारी करने चाहिए।' शिव प्रसाद की 'भाषा नीति' अपने समय की वास्तविकता के ज्यादा करीब थी। यद्यपि उनकी भाषा पर उर्दूपरस्ती का इल्जाम लगाया जाता है किन्तु पं. रामचन्द्र शुक्ल या डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने उनकी पुस्तकों की भाषा को चलती हुई सरल हिन्दी कहा है। उस समय स्कूलों में हिन्दू और मुसलमान दोनों के बच्चे पढ़ते थे। हिन्दू बच्चे हिन्दी माध्यम से पढ़ते थे और मुसलमान बच्चे उर्दू से। दोनों माध्यम की लिपि अलग अलग थी। शिव प्रसाद यह मानने को राजी नहीं थे कि लिपि अलग है तो उनकी भाषा भी अलग होनी चाहिए। उन्होंने पारिभाषिक शब्दों के लिए संस्कृत भाषा का सहारा लिया और तत्व, उद्भिज, वनस्पति, आमाशय, परमाणु, सरल रेखा, समकोण जैसे शब्द ग्रहण किये। उन्होंने एक ऐसा व्याकरण भी लिखा जो हिन्दी उर्दू दोनों का था। इसकी हँसी भारतेन्दु बाबू ने उड़ाई।

तभी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दावा किया कि 1873 में हिन्दी नई चाल में ढली। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हिन्दी व्योम में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय न हुआ होता तो शायद हिन्दी गद्य का परिष्कार न हुआ होता और जिसे हम खड़ी बोली कहते हैं वह खड़ी न हुई होती।

आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व चाहे अमीर खुसरो रहे हों या सन्तकवि कबीर दास, इनके काव्य में खड़ी बोली के बीज थे। किन्तु खड़ी बोली को खड़ी करने का सर्वाधिक श्रेय व्रजभाषा के ही प्रसिद्ध कवि तथा राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द के समकालीन श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है । उन्होंने इसे गद्य की भाषा के रूप में खड़ा किया। फिर तो भारतेन्दु मण्डल के अनेक सात्यिकारों ने इसका सम्वर्धन किया। यही खड़ी बोली विज्ञान लेखन में प्रगति की परिचायक है।

आगे चलकर 1900 ई. में प्रयाग से 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन एक युगान्तरकारी घटना है। इसके द्वारा पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली या हिन्दी को ज्ञान-विज्ञान की भाषा बना डाला। उत्तरभारत के वे हिन्दी भाषाभाषी जो काव्य सागर में आनन्द की हिलोरे लेने में मस्त थे,सहसा विज्ञान की तरंगों में बहने लगे। हिन्दी अब विज्ञान संचारिका बन गई। प्रारम्भ के 20 वर्षों में उसके द्वारा इतना विज्ञान साहित्य परोसा गया कि पाठकगण विश्वस्त हो गये कि वे ऐसे समुन्नत युग का सपना देख सकते हैं जिसमें संस्कृत भाषा जैसे गाम्भीर्य और प्रवाह आने से विज्ञान की बातें आम लोगों को सुलभ होती रहेंगी और सचमुच ही यह सपना साकार हुआ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति (1947) तक हिन्दी में विज्ञान साहित्य सृजन का केन्द्र इलाहाबाद बना रहा। इलाहाबाद में 1913 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के चार मनीषियों- डॉ. गंगानाथ झा (संस्कृत), प्रो. हमीदुद्दीन (अरबी), श्री सालिगराम भार्गव (भौतिक शास्त्र) तथा श्री रामदास गौड़ (रसायन शास्त्र) ने मिलकर 'विज्ञान परिषद्' नामक संस्था की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से विज्ञान विषयों का प्रचार प्रसार करना था । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दो वर्ष पश्चात् अप्रैल 1915 में 'विज्ञान' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया और उसके सम्पादक बने पं. श्रीधर पाठक तथा लाला सीताराम। ये दोनों साहित्यिक व्यक्ति थे। इस तरह अभी तक जितने साहित्यिक जन या वैज्ञानिक रुचि वाले लोग, जो 'सरस्वती' में लिख रहे थे,उनके लिए 'विज्ञान' पत्रिका का नवीन मंच मिला और स्वतन्त्रताप्राप्ति के पूर्व तक 'विज्ञान' ही एकमात्र विज्ञान विषयों की पत्रिका बनी रही। इस पत्रिका से सभी विज्ञान लेखक परिचित हुए। स्वतन्त्रताप्राप्ति के बाद विज्ञान विषयक दो पत्रिकाएं, खेती (1948) तथा विज्ञान प्रगति (1950) प्रकाश में आईं। ये दोनों सरकारी पत्रिकाएं थीं। 1970 के दशक के बाद हिन्दी में विज्ञान पत्रिकाओं की धूम मच गई।

यद्यपि हिन्दी में विज्ञान लेखन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काल से ही शुरू हो चुका था किन्तु बीसवीं सदी के प्रारम्भ में आर्य समाज के नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जब कांगड़ी में गुरुकुल की स्थापना

की तो 1907 में वहां के महाविद्यालय में वैज्ञानिक विषयों के शिक्षण हेतु पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता हुई। फलस्वरूप 1910-1912 के मध्य मास्टर गोवर्धन तथा श्री महेशचरण सिनहा ने वनस्पतिशास्त्र,भौतिकी तथा रसायन विषयक पुस्तकें लिखीं । तब तक काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने एक वैज्ञानिक कोश भी प्रकाशित कर दिया था जिससे विज्ञान लेखकों को हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों को ग्रहण करने में सुविधा हुई। एक अनुमान के अनुसार स्वतन्त्रताप्राप्ति के पूर्व हिन्दी में लगभग 700 लोकप्रिय विज्ञान की पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी थीं। स्वतन्त्रताप्राप्ति के बाद नये नये लेखकों तथा लेखिकाओं ने नये नये विषयों पर विज्ञान लेखन किया। अनुमान है कि इस समय 3000 से अधिक विज्ञान लेखक है जिनमें से 250 महिलाएं हैं। 1965 से लगातार विज्ञान लेखन में संलग्न लेखकों की संख्या 160 से अधिक है। सम्प्रति हिन्दी का भण्डार विज्ञान और प्रौद्योगिकी के समस्त पक्षों पर लिखी हिन्दी पुस्तकों से परिपूर्ण है। इन सबकी संख्या 7000 से ऊपर होगी। 1947 के पूर्व विज्ञान लेखक साहित्यिक पत्रिकाओं (वीणा, सुधा, माधुरी, विशाल भारत) में भी लिख रहे थे और अनेक साहित्यकार भी उन्हीं में विज्ञान विषयक लेख लिख रहे थे। यही कारण था कि विज्ञान लेखकों की गणना साहित्यकारों में की जाती थी। उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जाता था। यही नहीं, ऐसे अनेक विज्ञान लेखक हुए जिनकी रचनाओं पर हिन्दी साहित्य का सर्वोच्च पुरस्कार-मंगला प्रसाद पुरस्कार प्रदान किया गया। त्रिलोकीनाथ वर्मा को उनकी पुस्तक 'हमारे शरीर की रचना' पर संवत 1983 में, डॉ. गोरख प्रसाद को उनकी पुस्तक 'फोटोग्राफी की शिक्षा' पर सं. 1988 में,श्री मुकुन्द स्वरूप को उनकी पुस्तक 'स्वास्थ्य विज्ञान' पर सं.1889 में,श्री रामदास गौड को उनकी पुस्तक 'विज्ञान हस्तामलक' पर सं. 1992 में तथा महावीर श्रीवास्तव को उनकी कृति 'सूर्य सिद्धान्तः विज्ञान भाष्य' पर सं. 1999 में मंगला प्रसाद पुरस्कार प्रदान किया गया।

स्वतन्त्रतापूर्व साहित्यिक पत्रिकाओं ने वैज्ञानिक साहित्य सृजन में जो भूमिका निभाई उसका लेखा जोखा सुरुचिपूर्ण है। उदाहरणार्थ 1900-1950 की अवधि में 'सरस्वती' में कुल 229, विशाल भारत में 204, वीणा में 129, माधुरी में 46 तथा सुधा में 50 वैज्ञानिक लेख छपे जिनके लेखकों की संख्या क्रमशः 160, 138, 79, 38 तथा 43 रही। ये निबन्ध स्वास्थ्य,कृषि एवं उद्योग के अतिरिक्त जीवन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान,भौतिक शास्त्र तथा ज्योतिष जैसे विषयों पर थे। कुछ वैज्ञानिकों की जीवनियां भी प्रकाशित हुईं।

मौलिक लेखन

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय भाषाओं में विज्ञान का जिस तरह लोकप्रियकरण हो रहा था,उसे वर्नाकुलराइजेशन की संज्ञा प्रदान की गई। चूंकि देश अंग्रेजी शासन के अधीन था अतः लेखकों में राष्ट्रीय भावना आन्दोलित हो रही थी । बंगाल में रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी,दिल्ली में मास्टर रामचन्द्र तथा जका उल्ला और बनारस में लक्ष्मी शंकर मिश्र अपने अपने लेखन द्वारा अपने अपने क्षेत्रों में वैज्ञानिक अभिरुचि का विस्तार करने में लगे थे। उन्हें अंग्रेजी से परहेज नहीं था बल्कि हम यह कह सकते हैं कि उन्होंने आवश्यकतानुसार अंग्रेजी से अपनी अपनी भाषाओं में अनुवाद करके और स्वयं मौलिक लेखन करके देश में विज्ञान लेखन की नींव डाली। बीसवीं सदी के प्रारम्भ काल तक सैकड़ों पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं और बीसवी सदी के पूर्वार्द्ध तक इस संख्या में गुणात्मक वृद्धि होती रही।

चूंकि हिन्दी गद्य का विकास संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद से हुआ इसलिए हिन्दी के धुरंधर विद्वानों को भी हिन्दी में विज्ञान सामग्री अनूदित करने में कोई संकोच नहीं हुआ। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वाले आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने 1920 में जर्मनी के सुपसिद्ध जीवविज्ञानी हैकेल की सुप्रसिद्ध पुस्तक Riddle of the Universe का अनुवाद 'विश्व प्रपंच' नाम से किया और काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने इसे सहर्ष प्रकाशित किया।

अतःचाहे मौलिक लेखन हो या अनुवाद,प्रामाणिक पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता अनुभव की जाती रही थी। यद्यपि पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण कार्य कई गैर सरकारी संस्थाएं करती आ रही थीं और डॉ. रघुवीर ने तो पारिभाषिक शब्दकोष ही रच डाला था किन्तु 1950 में जब भारत सरकार ने शब्दावली आयोग का गठन किया तो गैर सरकारी संस्थाओं ने उसमें सहयोग किया और मानक शब्दावली का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ। चूंकि यह शब्दावली संस्कृत पर आधारित है अतः भारत के अन्य भाषाभाषियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हुई।

हमें कहना यह है कि आधिकारिक लेखन के अभाव में ही द्वितीय कोटि का लेखन,जिसे लोकप्रिय विज्ञान लेखन कहते हैं पल्लवित होता आया है। अनुवाद की कितनी ही बुराई क्यों न की जाय,विज्ञान लेखन में अनुवाद अनिवार्य है-उसे समाप्त नहीं किया जा सकता । वैसे लेखन कार्य एक तपस्या है। लेखकों को उसका अभ्यास करना होगा और राज्याश्रय प्राप्त करने या पुरस्कृत होने की लालसा का परित्याग करना होगा।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का मुख उज्ज्वल करने के लिए सर्वथा मौलिक ग्रन्थों का सृजन करना होगा। ये ग्रन्थ उच्च पदों पर आसीन वैज्ञानिक जनों को ही लिखने हैं। तभी मौलिक साहित्य की सर्जना का स्वप्न पूरा हो सकेगा । हम इसकी प्रतीक्षा में हैं।

हिन्दी विज्ञान लेखन की कथावस्तु

विज्ञान लेखन में कथावस्तु का बहुत बड़ा हाथ है । प्रारम्भ में जो विज्ञान लेखन हुआ उसकी विषयवस्तु लेखक की इच्छानुसार होती थी किन्तु 1950 से लेकर 1970 की अवधि में अनेक नवीन खोजे हुईं। उदाहरणार्थ 1960-70 के दशक में कृषि में हरितक्रान्ति की दस्तक होने सें तत्सम्बन्धी रचनाएं हुईं। इसी कालखण्ड में रूस ने अपना स्पुतनिक चन्द्रलोक में भेजा। प्रतिस्पर्धावश अमरीका ने भी अन्तरिक्ष कार्यक्रम शुरू हुआ। इससे भारत को भी अन्तरिक्ष कार्यक्रम शुरू करने की प्रेरणा मिला। स्वाभाविक था कि इस दिशा में हिन्दी में विज्ञान लेखन होता। इस तरह 1970 के पश्चात् हिन्दी में पर्यावरण,कम्प्यूटर तथा अन्तरिक्ष इन नवीन विषयों पर भी प्रचुर लेखन होता रहा। सागर विज्ञान और अंटार्कटिका अभियान भी अछूते नहीं रहे।

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप पर्यावरण का जिस तेजी से विघटन हुआ,उसकी चिन्ता सर्वप्रथम 1972 के स्टाकहोम सम्मेलन में प्रकट की गई। पर्यावरण से जुड़ा हुआ विज्ञान पारिस्थितिकी (Ecology) है। इसके अन्तर्गत पर्यावरण प्रदूषण, जैव विविधता पर पर्याप्त लेखन हुआ जिससे जनसामान्य में पर्यावरण तथा प्रकृति के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई और जल प्रदूषण,वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण के साथ ही मानसिक प्रदूषण जैसी समस्याओं पर गम्भीरता से विचार हुआ। ओजोन परत की महत्ता,अभ्यारण्यों की आवश्यकता तथा जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग पर भी पर्याप्त साहित्य प्रकाश में आया। नैनोटेक्नालाजी तथा जीनोमिकी जैसे नवीनतम विषयों पर भी लेखन हो रहा है।

वैसे तो कम्प्यूटर युग का सूत्रपात 1984 में हुआ किन्तु हिन्दी में कम्प्यूटर की पहली पुस्तक 1970 में रमेश वर्मा ने लिख दी थी । जब स्कूलों,कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में कम्प्यूटर शिक्षा प्रारम्भ हुई तो अनेक पाठ्यपुस्तकें भी लिखी गईं। जून 2001 से 'कम्प्यूटर विविधा' नामक पत्रिका भी प्रकाशित हो रही है। इससे सूचना प्रौद्योगिकी का पल्लवन हुआ है। भोपाल से ही प्रकाशित 'इलेक्ट्रानिकी आपके लिए' एक महत्वपूर्ण पत्रिका है ।

सागरों से खनिजों के दोहन और समुद्र से ऊर्जा प्राप्त करने की सम्भावना को लेकर काफी साहित्य प्रकाश में आया है। राकेटों, प्रक्षेपास्त्रों तथा कृत्रिम उपग्रहों को लेकर भी हिन्दी में प्रचुर लेखन हुआ। यह साहित्य विशेष रूप से श्री काली शंकर द्वारा प्रणीत है जो इस क्षेत्र से सम्बद्ध विशेषज्ञ रहे हैं ।

आयुर्विज्ञान यद्यपि अति प्राचीन विज्ञान है और पहले से प्रचुर साहित्य प्राप्त है किन्तु सम्प्रति कई चिकित्सक प्रामाणिक हिन्दी ग्रन्थों की रचना कर रहे हैं जिनमें डॉ. यतीश अग्रवाल तथा डॉ. जे.एल.अग्रवाल अग्रणी हैं। आयुर्विज्ञान विषयक कई पत्रिकाएं भी निरन्तर प्रकाशित हो रही है। जीनोम तथा जीनोमिकी एवं जैव सूचनिकी (Bioinformatics) इन दोनों विषयों पर हाल ही में पुस्तकें प्रकाशित हैं।

विज्ञान पत्रकारिता

आजकल मीडिया की चर्चा सर्वत्र हो रही हैं। यह पत्रकारिता के समतुल्य शब्द है। हिन्दी में पत्रकारिता का अर्थ होता है पत्रिका या समाचार पत्र के प्रकाशन द्वारा जनसामान्य तक ज्ञान विज्ञान की सूचनाएं पहुंचाना।

1950 में श्री वेंकट लाल ओझा ने समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं की एक निर्देशिका तैयार की थी जिसमें 1820 से 1925 तक के 105 वर्षों के मध्य प्रकाशित अनेक पत्र पत्रिकाओं के विवरण छपे थे । इसमें विज्ञान विषयक अनेक पत्रिकाओं की सूचना मिलती है किन्तु 1983 में सी.एस.आई.आर. ने जो विज्ञान निर्देशिका प्रकाशित की, उसमे विषयवार 321 पत्रिकाओं की सूची है। इस संख्या में परिवर्तन होता रहा है क्योंकि 2001 में जो संशोधित निर्देशिका छपी है उसमें विज्ञान पत्रिकाओं की संख्या 321 से घट कर मात्र 119 रह गई अर्थात् लगभग 200 पत्रिकाएं बन्द हुई। इस तरह कुछ पत्रिकाएं बन्द होंगी तो कुछ नई विज्ञान पत्रिकाएं प्रकाश में आती रहेंगी। हाल ही में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से 'विज्ञान गंगा' और उत्तराखण्ड से 'विज्ञान परिचर्चा' (त्रैमासिक) का प्रकाशन स्वागत योग्य है ।

हिन्दी में विज्ञान के प्रचार-प्रसार का एक पक्ष और है जिसका उल्लेख आवश्यक है। विज्ञान परिषद् प्रयाग ने सन् 1958 से एक त्रैमासिक विज्ञान विषयक शोध पत्रिका-'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' का प्रकाशन शुरू किया जो विगत 57 वर्षो से निरन्तर प्रकाशित हो रही है। यह राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रकाशित होने वाली एकमात्र पत्रिका है जिसका देश विदेश में स्वागत हुआ है। इसमें प्रकाशित शोधपत्रों की संक्षिप्तियां गण्यमान्य एजेन्सियों द्वारा प्रकाशित की जाती हैं। देखादेखी सम्प्रति अन्य क्षेत्रों में भी शोध पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। यह शुभ लक्षण है। भारतीय कृषि अनुसंधान पत्रिका (त्रैमासिक) 1973 से करनाल से प्रकाशित हो रही है। विज्ञान शोध भारती (अर्धवार्षिक) 1960 से ग्वालियर से प्रकाशित है। गणित सुधा (त्रैमासिक) 1994 से लखनऊ से प्रकाशित हो रही है।

vijnananparishad_prayag@rediffmail.com

❑❑❑

चिकित्सा विज्ञान में हिंदी की पढ़ाई

प्रो.मोहनलाल छीपा

स्वतंत्रता के 68 वर्षो के बाद और संविधान में हिंदी राजभाषा घोषित होने के बावजूद भी हम चिकित्सा विषयों की शिक्षा हिंदी में प्रारंभ नहीं कर सके। भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद-एम.सी.आई. (1934), भारतीय उपचर्या परिषद-आई.एन.सी. (1947) तथा भारतीय भेषज परिषद-पी.सी.आई. (1948) जिन पर एलौपेथी चिकित्सा शिक्षा का दायित्व है तथा जो द्वि-भाषी कार्य के लिए अधिकृत है, अभी तक हिंदी भाषा में चिकित्सा शिक्षा का कार्य प्रारंभ नहीं कर पाये।

देश में अंग्रेजी माध्यम की चिकित्सा शिक्षा के संबंध में कई शोध भी हुए हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार 1989-2000 के बीच एम्स से स्नातक स्तर की शिक्षा ग्रहण किये चिकित्सकों में से 54 प्रतिशत भारत से बाहर है तथा जिनमें 85 प्रतिशत अमेरिका में बताये जाते हैं। अन्य चिकित्सा विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों से भी काफी संख्या में चिकित्सक भारत से शिक्षा ग्रहण कर अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड जा रहे हैं तथा भारत की ग्रामीण जनता उनकी सेवाओं से उपेक्षित हैं।

इसके अतिरिक्त अंग्रेजी माध्यम की चिकित्सा शिक्षा ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों पर इतना तनाव उत्पन्न करती है कि वे आत्महत्या तक करने को मजबूर होते हैं, जब कि स्कूल स्तर पर वे सर्वोच्च स्थान पर होते हैं।

इन्ही तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना मध्यप्रदेश अधिनियम क्रमांक 34 के अंतर्गत दिनांक 19 दिसम्बर 2011 को की गई। इस विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य हिंदी भाषा को अध्यापन, प्रशिक्षण एवं ज्ञान की वृद्धि और प्रसार के लिए तथा विज्ञान साहित्य कला और अन्य विधाओं में उच्च स्तरीय गवेषणा के लिए शिक्षण का माध्यम बनाना है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विश्वविद्यालय ने अब तक 225 के लगभग पाठ्यक्रमों का हिंदी में निर्माण कर लिया है। विज्ञान, कला, समाज विज्ञान, वाणिज्य, प्रबंधन, एवं विधि में प्रशिक्षण, पत्रोपाधि, स्नातक प्रतिष्ठा, स्नातकोत्तर, विद्यानिधि एवं विद्यावारिधि की पढ़ाई हिंदी माध्यम से प्रारंभ हो चुकी है। 2012-13 में 60 विद्यार्थियों से प्रारंभ हुए इस विश्वविद्यालय में 800 के लगभग विद्यार्थी अध्ययनरत हैं। परन्तु देश में आमधारणा यह है कि जब तक चिकित्सा और अभियांत्रिकी के क्षेत्र में अध्ययन, अध्यापन और शोध हिंदी माध्यम से प्रारंभ नहीं हो जाता तब तक हिंदी विश्वविद्यालय का कोई विशेष योगदान नहीं माना जायेगा। अतः चिकित्सा और अभियांत्रिकी में भी चिकित्सा पाठ्यक्रमों को प्राथमिकता देते हुए विश्वविद्यालय द्वारा निम्न कार्य किये गयेः-

चिकित्सा क्षेत्र की नियामक संस्थाओं से पत्राचार

चिकित्सा क्षेत्र में प्रमुख नियामक संस्थायें भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद, भारतीय नर्सिंग परिषद तथा भारतीय भेषज परिषद प्रमुख हैं। इन परिषदों को विश्वविद्यालय के उद्देश्यों को बताते हुए हिंदी माध्यम से चिकित्सा एवं नर्सिंग के पाठ्यक्रम हिंदी माध्यम से प्रारंभ करने के संबंध में स्वीकृति देने के लिए आग्रह किया गया था, परन्तु पत्रों के जबाव में भारतीय नर्सिंग परिषद ने 27 अक्टूबर 2013 को सूचित किया कि ''भारतीय उपचर्या परिषद का विश्वविद्यालय स्तर का कोई भी पाठ्यक्रम हिंदी माध्यम के अन्तर्गत नहीं आता है''। इसी तरह भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद ने विश्वविद्यालय के पत्र के जबाव में दिनांक 17-04-2013 को लिखा ''Medical Council of India is dealing with basic medical qualification ie. MBBS/MD/MS and super speciality courses and has not prescribed these courses in Hindi medium" . इस पत्र के उत्तर में विश्वविद्यालय ने पुनः भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद को पत्र लिखे 'कि यदि हम इन पाठ्यक्रमों को हिंदी में उपलब्ध करा दें

देश में आमधारणा यह है कि जब तक चिकित्सा और अभियांत्रिकी के क्षेत्र में अध्ययन, अध्यापन और शोध हिंदी माध्यम से प्रारंभ नहीं हो जाता तब तक हिंदी विश्वविद्यालय का कोई विशेष योगदान नहीं माना जायेगा।

तो हमें हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के पाठ्यक्रम प्रारंभ करने की स्वीकृति प्रदान कर दोगे? इसके बाद कई स्मरण पत्र देने तथा व्यक्तिगत रूप से संबंधित अधिकारियों से मिलने के बाद दिनांक 25-03-2015 के पत्र के जबाव में परिषद की शैक्षणिक समिति के निर्णय से अवगत कराया ''The Academic Committee observed that the Medical Council of India has time and again reiterated that in larger interest, the medium of instruction for the medical education under the ambit of Medical Council of India should be English in view of the availability of the abundant reading material in English and the mobility of the students and the teachers within the country and outside. The same is also desired in the context of the internationalization of medical education in global interests."

उक्त जबाव से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद जिसको पूरे देश की आवश्यकताओं के अनुसार चिकित्सा शिक्षा को आगे बढ़ाना है, वर्तमान स्थिति में अंग्रेजी माध्यम से विपुल साहित्य की उपलब्धता तथा चिकित्सा शिक्षा के अन्तरराष्ट्रीयकरण का तर्क के आधार पर हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा प्रारंभ करने के आग्रह को टालना है।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय से पत्राचार

भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद से चिकित्सा शिक्षा को हिंदी में प्रारंभ करने की दृष्टि से सकारात्मक उत्तर प्राप्त नहीं होने के बाद स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार से भी दिनांक 21.06.2014, 21.12.2014 एवं 09.02.2015 को पत्र लिखा गया, परन्तु अभी तक मंत्रालय से किसी प्रकार का जबाव प्राप्त नहीं हुआ। इससे यह लगता है कि हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा को प्रारंभ करने में मंत्रालय एवं भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद दोनों की कोई रूचि नहीं है।

संगोष्ठी तथा एम.डी. के शोध ग्रंथ हिंदी में लिखने वालों का सम्मान

विश्वविद्यालय ने नियामक संस्थाओं तथा केन्द्र सरकार से पत्राचार करने के बाद यह उचित समझा कि चिकित्सकों के बीच जनजागरण किया जाना चाहिए और इस दृष्टि से 14 सितम्बर 2012 को ''चिकित्सा विज्ञान का शिक्षण, प्रशिक्षण एवं शोध का माध्यम हिंदी'' विषयक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में पीपुल्स विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो.जी.एस. दीक्षित सहित कई चिकित्सा शिक्षक उपस्थित हुए। इस संगोष्ठी में ऐसे तीन शिक्षकों की जानकारी कर उनका सम्मान किया गया, जिन्होंने देश में प्रथम बार हिंदी माध्यम से अपना स्नातकोत्तर (एम.डी.) का शोध ग्रंथ हिंदी में लिखा था। इनमें डॉ मुनीश्वर गुप्ता ने 1986-87 में आगरा के सरोजनी नायडू मेडिकल कालेज से एम.बी.बी.एस. एवं एम.डी. (रेडियोलोजी) में ''सिर एवं गले की कैंसर की सिकाई में अवटु ग्रंथी पर प्रभाव'' विषयक शोध ग्रंथ हिंदी में प्रस्तुत किया।

डॉ. सूर्यकांत त्रिपाठी ने 'क्षय रोग की अल्पावधि रसायन चिकित्सा में सह-औषधियों की भूमिका' विषयक शोध ग्रंथ एम.डी. उपाधि हेतु किंग जार्ज मेडिकल कालेज लखनऊ से लखनऊ विश्वविद्यालय को 1991 में हिंदी में प्रस्तुत किया। परन्तु इस शोध ग्रंथ को विभागाध्यक्ष तथा प्राचार्य ने मूल्यांकन के लिए जमा करने से मना कर दिया। डॉ. त्रिपाठी ने इसके विरूद्ध संघर्ष किया तथा प्राचार्य द्वारा कुलपति, कुलाधिपति के आदेशों की अवहेलना करने पर उत्तर प्रदेश के दोनों सदनों को शोध ग्रंथ जमा कर मूल्यांकन करने हेतु कठोर प्रस्ताव पास करना पड़ा। उपर्युक्त दोनो शोधार्थियों से प्रेरणा लेते हुए डॉ. मनोहर भंडारी ने 1992 में शरीर क्रिया विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी स्मृति चिकित्सा महाविद्यालय इंदौर से एम.डी. की उपाधि हेतु 'पुलिस प्रशिक्षण विद्यालय, इंदौर के प्रशिक्षुओं में हीमोग्लोविन, रूधिरकोशिकामापी, सीरम लौह, कुल लौह बन्धन क्षमता एवं फुप्फुस क्रिया परीक्षणः एक अध्ययन' विषयक शोध ग्रंथ मध्यप्रदेश में पहली बार देवी अल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर को 1992 में प्रस्तुत किया।

हिंदी में चिकित्सा पाठ्यक्रमों का निर्माण

विश्वविद्यालय की हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा प्रारंभ करने की प्रमुख चुनौती है। हिंदी भाषा में साहित्य की अनुपलब्धता तथा पाठ्यक्रमों का अंग्रेजी भाषा में होना प्रमुख है। विश्वविद्यालय ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए पाठ्यक्रमों का निर्माण प्रारंभ करवाया। विश्वविद्यालय ने सर्वप्रथम स्नातक चिकित्सा (एम.बी.बी.एस.) को प्राथमिकता दी और हिंदी माध्यम से निम्न पाठ्यक्रमों को पूर्ण करवा लिया है। प्रथम एम.बी.बी.एस. के प्रथम सेमेस्टर से लेकर अन्तिम सेमेस्टर तक लगभग 18 प्रश्न-पत्र छात्रों को पढ़ने पड़ते हैं। अतः विश्वविद्यालय ने शरीर रचना विज्ञान, जीवरसायनशास्त्र, शरीरक्रियाविज्ञान, न्याय संबंधी चिकित्साशास्त्र तथा जीवविष विज्ञान, सूक्ष्मजीवविज्ञान, विकृति विज्ञान, भेषजगुण विज्ञान, निश्चेतना विज्ञान, सामुदायिक चिकित्साशास्त्र, चर्मरोग तथा रतिजरोग विज्ञान, काय

चिकित्सा, प्रसूति एवं स्त्रीरोग विज्ञान, नेत्र विज्ञान, अस्थि विज्ञान, नाक-कान-गला चिकित्सा विज्ञान, शिशुरोग विज्ञान, मनोरोग विज्ञान एवं शल्यचिकित्सा। इसके अतिरिक्त अस्पताल प्रबंधन, प्रयोगशाला तकनीक, चिकित्सा प्रयोगशाला तकनीशियन, डायलिसिस तकनीशियन, एक्सरे रेडियोग्राफर तकनीशियन तथा आपरेशन थियेटर तकनीशियन जैसे पत्रोपाधि पाठ्यक्रमों की रचना हो गयी है।

हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा प्रारंभ करने की प्रमुख चुनौती है। हिंदी भाषा में साहित्य की अनुपलब्धता तथा पाठ्यक्रमों का अंग्रेजी भाषा में होना प्रमुख है। विश्वविद्यालय ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए पाठ्यक्रमों का निर्माण प्रारंभ करवाया।

चिकित्सा एवं अभियांत्रिकी शिक्षा हिंदी माध्यम से पाठ्य पुस्तक लेखनविषयक संगोष्ठी

07 एवं 08 मार्च 2015 को दो दिवसीय चिकित्सा, अभियांत्रिकी शिक्षा हेतु हिंदी माध्यम से पुस्तक लेखन के संबंध में कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें प्रदेश के माननीय उच्च शिक्षा मंत्री श्री उमाशंकर गुप्ता, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष डॉ. केशरीलाल वर्मा तथा हिंदी ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष डॉ.एस.बी. गोस्वामी के अतिरिक्त मध्यप्रदेश आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर के कुलपति प्रो. डी.पी. लोकवानी, मौलाना आजाद राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्था के निदेशक डॉ. अप्पू कुट्टन एवं कई शिक्षक, विद्वान उपस्थित थे। दो दिन की इस कार्यशाला में चिकित्सा, अभियांत्रिकी क्षेत्र में पाठ्य पुस्तकों का मूल्यांकन, लेखन तथा अनुवाद प्रक्रिया पर विचार-विमर्श हुआ तथा कई शिक्षकों ने हिंदी में चिकित्सा से संबंधित पुस्तकें लिखने का आश्वासन दिया तथा कुछ ने कार्य भी प्रारंभ कर दिया है।

रोगों एवं मनोविकारों के समाधान के लिए मात्रभाषा हिंदी का प्रयोग

25 अप्रैल 2015 को विश्वविद्यालय में डॉ. अलोक पौराणिक का व्याख्यान का आयोजन किया गया जिसमें उन्होंने भाषा और मानव मस्तिष्क का अन्तर बताते हुए मात्रभाषा में शिक्षा को सर्वाधिक अनुकूल बताया। डॉ. पौराणिक ने वाचाघात (अफेजिया-बोली का लकवा) की चिकित्सा के लिए हिंदी को श्रेष्ठ बताया। इस दिशा में उन्होंने काफी शोध कार्य किया है।

हिंदी माध्यम से प्रकाशित चिकित्सा से संबंधित पुस्तकों का संकलन

हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के समक्ष प्रमुख चुनौती हिंदी भाषा में साहित्य की अनुपलब्धता ही है। परन्तु यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि चिकित्सा महाविद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम होने के बावजूद भी भारत में चिकित्सा क्षेत्र में हिंदी माध्यम से पुस्तक लेखन के लिए प्रयास 1962-63 में किये गये। 1969-70 में हिंदी की पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना की गयी। परन्तु विश्वविद्यालयों तथा सरकार द्वारा हिंदी माध्यम से परीक्षा देने की स्वीकृति न देने के कारण लेखकों की पुस्तकों की मांग नहीं बढ पाई। फिर भी कई शिक्षक है जिन्होंने हिंदी माध्यम से चिकित्सा लेखन करने की अपनी आदत नहीं छोड़ी। विश्वविद्यालय ने आज देश के विभिन्न प्रकाशकों से 300 के लगभग पुस्तकों का संकलन किया है, जो सभी हिंदी माध्यम से प्रकाशित हैं। प्रारंभ में देश में हिंदी ग्रंथ अकादमी की स्थापना के साथ-साथ चिकित्सा के क्षेत्र में भी लेखन प्रारंभ हुआ। अब तक विभिन्न हिंदी ग्रंथ अकादमियों तथा निजी प्रकाशकों से निम्न पुस्तकों का संकलन किया है :

मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी संकलित पुस्तकों की संख्या 04, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी 16, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी 14, हरियाणा हिंदी ग्रंथ अकादमी 06, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान 07, छत्तीशगढ़ हिंदी ग्रंथ अकादमी 01, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास 22, विश्व स्वास्थ्य संगठन 07, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग 08, सुमित प्रकाशन, मेरठ 45, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 14, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी 118, जे.पी. ब्रदर्स, दिल्ली 26 कुल 297

हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के प्रसार में प्रवासी भारतीयों से सम्पर्क

हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना की सूचना मिलते ही अमेरिका निवासी डॉ. कलोल गुहा ने हिंदी माध्यम में चिकित्सा शिक्षा में रूचि प्रदर्शित की तथा वह विश्वविद्यालय में आये तथा छात्रों के समक्ष व्याख्यान दिया तथा उन्होंने हिंदी माध्यम से उत्तीर्ण छात्रों को सरकारी नौकरी में प्राथमिकता, 25 प्रतिशत अधिक वेतन, हिंदी माध्यम से स्थापित करने वाले महाविद्यालयों के संस्थापकों को कर रियायत देने की आवश्यकता बतायी जिससे प्रवासी भारतीय निवेश हेतु आकर्षित हो सके।

लोक स्वास्थ्य एवं वैकल्पिक चिकित्सा केन्द्र की स्थापना

विश्वविद्यालय ने अध्ययन एवं शोध के 10 विशेष केन्द्र खोलने का निर्णय लिया है जिसमें एक लोक स्वास्थ्य एवं वैकल्पिक चिकित्सा केन्द्र भी है। यह केन्द्र लोक स्वास्थ्य जागरूकता पाठ्यक्रमों का निर्माण करेगा जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी को प्रमुख रोगों, औषधियों व रोकथाम की

विश्वविद्यालयों तथा सरकार द्वारा हिंदी माध्यम से परीक्षा देने की स्वीकृति न देने के कारण लेखकों की पुस्तकों की मांग नहीं बढ पाई। फिर भी कई शिक्षक है जिन्होंने हिंदी माध्यम से चिकित्सा लेखन करने की अपनी आदत नहीं छोड़ी। विश्वविद्यालय ने आज देश के विभिन्न प्रकाशकों से 300 के लगभग पुस्तकों का संकलन किया है, जो सभी हिंदी माध्यम से प्रकाशित हैं।

जानकारी दी जायेगी। यह केन्द्र लोक स्वास्थ्य परंपराओं के तार्किक आधार हेतु अध्ययन, अनुसंधान तथा समन्वय का कार्य करेगा। यह लोक उपचारकों को मुख्य धारा से जोड़नें हेतु उनको प्रशिक्षण भी देगा।

गर्भ संस्कार तपोवन केन्द्र की स्थापना

विश्वविद्यालय के कुछ सामाजिक दायित्व भी है। इन सामाजिक सरोकारों के अन्तर्गत चिकित्सा शिक्षा के शिशु विभाग से जुड़ा हुआ भारतीय संस्कार के प्रशिक्षण हेतु ''गर्भ संस्कार तपोवन केन्द्र'' की स्थापना 02 अक्टूबर 2014 को की गयी है जहॉ गर्भवती महिलाओं को निःशुल्क गर्भ में पल रहे भ्रूण को किस प्रकार संस्कारित किया जा सकता है, उस संबंध में प्रशिक्षण दिया जाता है। यह गतिविधि देश में काफी चर्चा का विषय बनी। विश्वविद्यालय ने गुजरात के 'बाल विश्वविद्यालय, गांधीनगर' से समझौता किया है, जिसमें केन्द्र के संचालन के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। अभी तक इस केन्द्र में 9 माह का प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तथा 6 माह का प्रशिक्षक पाठ्यक्रम बनाया गया है। केन्द्र में 30 से अधिक पंजीकरण हुआ है। गर्भ संस्कार से पूर्व नव-दम्पति प्रशिक्षण शिविर का भी आयोजन होता है।

हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा

- *चिकित्सा क्षेत्र की नियामक संस्थाओं द्वारा सभी चिकित्सा परीक्षाओं में हिंदी माध्यम से लिखने की छूट।*
  केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों को अपने अपने क्षेत्र में पीएमटी की तरह परीक्षा में उत्तर द्वि-भाषा में देने की छूट देनी चाहिए। अंग्रेजी शासन काल से अंग्रेजी माध्यम से चिकित्सा देने की परम्परा चल रही है जिसको अब तक निभाया जा रहा है। अतः शासन द्वारा एम. सी.आई. को द्वि-भाषा में परीक्षा करवाने के निर्देश देने चाहिए। जब विद्यार्थियों को हिंदी माध्यम से परीक्षा देने की छूट होगी तो प्रारंभ में पुस्तकों के उपलब्ध न होने के बावजूद भी विद्यार्थी अनुवाद कर परीक्षा में पूछे गये प्रश्न-पत्र उत्तर हिंदी भाषा में दे सकेगें। हिंदी भाषा में परीक्षा देने की छूट होने के बाद पुस्तक की मांग बढ़ जाएगी तथा लेखक भी हिंदी में लेखन के लिए प्रेरित होंगे।
- *चिकित्सा शिक्षण का द्वि-भाषी माध्यम से :* भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद से संपर्क करने पर विश्वविद्यालय ने यह जानने का प्रयत्न किया कि क्या विश्वविद्यालयों या चिकित्सा महाविद्यालयों द्वारा चिकित्सा शिक्षा अंग्रेजी भाषा में देने का प्रावधान है। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि अंग्रेजी की अनिवार्यता नहीं होने के बावजूद भी व्यवहार में केवल अंग्रेजी में ही अध्यापन एवं परीक्षा देने की व्यवस्था बनाई गई है। अतः शिक्षण का माध्यम द्वि-भाषी होना चाहिए।
- *हिंदी ग्रंथ अकादमियों को चिकित्सा शिक्षा की पाठ्य पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित करने के लिए लक्ष्य एवं अनुदान :* देश की सभी हिंदी ग्रंथ अकादमियों, हिंदी संस्थानों तथा हिंदी प्रकोष्ठों को जो केन्द्र एवं राज्य सरकार से अनुदान प्राप्त करते हैं, के लिए प्रतिवर्ष हिंदी की पुस्तकों का प्रकाशन अनिवार्य किया जाना चाहिए। प्रत्येक अकादमी प्रतिवर्ष कम से कम 5 पुस्तकों का प्रकाशन करें।
- *चिकित्सा शब्दकोषों का निर्माण*: वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने यद्यपि अभी तक 5 चिकित्सा शब्दकोषों का हिंदी में निर्माण किया है परन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में प्रगति के कारण यह शब्दकोष अपर्याप्त हैं अतः आयोग को विभिन्न विषयों तथा रोगो के अनुसार शब्दकोष का निर्माण एक समय-सीमा में करना चाहिए।
- *विदेशी भाषा में श्रेष्ठ चिकित्सा पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद* : आज सभी चिकित्सा विश्वविद्यालय एवं नियामक संस्थायें अंग्रेजी भाषा में विपुल चिकित्सा साहित्य उपलब्ध होने के कारण हिंदी में चिकित्सा शिक्षा को आगे बढ़ाने की वकालत नहीं करती। अतः यह आवश्यक है कि भारत सरकार का राष्ट्रीय अनुवाद मिशन मैसूर, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय को विभिन्न विदेशी भाषाओं में उपलब्ध चिकित्सा साहित्य का हिंदी में अनुवाद प्राथमिकता से करवाया जाना चाहिए।
- *चिकित्सा विषयों की पाण्डुलिपियां तैयार करने हेतु चिकित्सा विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों को दायित्व देने पर विचार* : हिंदी भाषी प्रांतों में कई सरकारी एवं निजी चिकित्सा विश्वविद्यालय है। इनके साथ 115 के लगभग चिकित्सा महाविद्यालय भी सम्बद्ध हैं परन्तु अभी तक किसी भी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय ने एक भी चिकित्सा संबंधी पुस्तक हिंदी भाषा में लिखने का प्रयास नहीं किया। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों की प्रतिवर्ष 5-5 पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित करवायें। इस लेखन कार्य के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संबंधित राज्य सरकार विश्वविद्यालयों को आर्थिक अनुदान प्रदान करें।
- *चिकित्सा शिक्षा में पदोन्नति को लेखन से जोड़ना* : एम.सी.आई. तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चिकित्सा शिक्षा को हिंदी

माध्यम से आगे बढ़ाने की दृष्टि से यह प्रावधान करना चाहिए की वह प्रत्येक चिकित्सा शिक्षक पदोन्नति के लिए ३ वर्ष में कम से कम किसी चिकित्सा उपाधि पाठ्यक्रम के लिए चिकित्सा शिक्षा की एक पुस्तक हिंदी में अवश्य लिखे।

- *स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के स्तर पर लंबित पाण्डे समिति की अनुशंसाओं पर विचार* : भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने प्रो. मुकुल चंद पाण्डे की अध्यक्षता में 'चिकित्सा और पराचिकित्सा शिक्षा हिंदी माध्यम समिति'' का 22 नवम्बर 1988 को गठन किया था जिसने 1990 में अपना प्रतिवेदन भी भारत सरकार को प्रस्तुत किया था। परन्तु आज तक उक्त समिति द्वारा की गई अनुसंशाओं पर कोई कार्यवाही नहीं की गई।
- *स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत केन्द्रीय हिंदी चिकित्सा प्रकोष्ठ का गठन किया जाना :* भारत सरकार द्वारा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के स्तर पर चिकित्सा संबंधी केन्दीय प्रकोष्ठ का गठन किया जाना चाहिए जो केवल हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा के संवर्धन के लिए कार्य करेगा।
- *पारिश्रमिक दरों में संशोधन :* हिंदी ग्रंथ अकादमियों तथा हिंदी निदेशालयों को मौलिक लेखन तथा अनुवाद कार्य के लिए पारिश्रमिक दरों में संशोधन किया जाना चाहिए।
- *चिकित्सा शिक्षकों एवं लेखकों को हिंदी में प्रशिक्षण* : यद्यपि हिंदी भाषी प्रदेशों में कक्षाओं में 30-40 प्रतिशत अध्ययन हिंदी में होता है परन्तु परीक्षा में लेखन द्विभाषी न होने के कारण हिंदी भाषी छात्रों को कष्ट होता है। अतः यह आवश्यक है कि चिकित्सा शिक्षकों को हिंदी भाषा के संबंध में प्रशिक्षण दिया जाए। उन्हें हिंदी भाषा में लिखने का भी प्रशिक्षण दिया जाए।
- *पुरस्कार एवं सम्मान :* चिकित्सा क्षेत्र में लेखन एवं शोध हिंदी में करने वालों का नगद पुरस्कार एवं छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाए। माध्यम परिवर्तन को गति देने के लिए हिंदी प्रदेशों के विश्वविद्यालय/महाविद्यालय में संगोष्ठियों का आयोजन किया जाए।
- *स्नातक चिकित्सा के वैकल्पिक पाठ्यक्रम की आवश्यकता पर विचार* : एम.बी.बी.एस. का वर्तमान पाठ्यक्रम जो साढे पांच वर्ष का है उसे छात्र भाषा व अन्य रूकावटों के कारण 8 से 15 वर्षो तक उत्तीर्ण करते देखे हैं। भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद ने 1934 में अपनी स्थापना के बाद 1956 में कुछ मौलिक बदलाव किये थे। उसके बाद आज तक देश की स्वास्थ्य समस्याओं व देश की आवश्यकताओं के अनुसार कोई सार्थक परिवर्तन नहीं किये गये। इसी कारण कुपोषण एवं क्षय रोग देश में चुनौती है। कम से कम 5 वर्षो में पाठ्यक्रमों में देश की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए। विश्वविद्यालय ने इस पर विचार करने के लिए एक अध्ययन समूह का गठन किया है।
- *चिकित्सा लेखकीय संवर्ग (कैडर) का समानान्तर निर्माण :* चिकित्सा शिक्षा में लेखन हेतु शिक्षकों की भांति लेखकों के पदों का सृजन करना चाहिए। लेखकों व शिक्षकों की सेवा शर्ते समान होनी चाहिए। इस नीति के दूरगामी परिणाम होंगे। शिक्षकों की भांति कॉडर बनने से स्त्रोत लेखन व अनुवाद दोनों में वृद्धि होगी।
- *अति विशिष्ट क्षेत्रों के विशेषज्ञों के बाहर जाने पर यहां के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त करना* : एम.सी.आई. की अकादमी परिषद ने चिकित्सा शिक्षा की गुणवत्ता तथा वैश्वीकरण के लिए हिंदी माध्यम का विरोध किया है। जबकि आज वैश्वीकरण के नाम पर भारतीय संसाधनों के आधार पर प्रशिक्षित चिकित्सक प्रायः विदेशों में चले जाते हैं जिनके ज्ञान का लाभ भारतीय जनता को नहीं हो पाता।
- *एम.सी.आई. व अन्य नियामक संस्थाओं द्वारा सेवानिवृत्त डॉक्टरों व अन्य विषय विशेषज्ञों के लिए लेखन योजना* : सभी नियामक संस्थाओं द्वारा हजारो सेवानिवृत्त डॉक्टरों व विषय विशेषज्ञों के लिए लेखन योजना बनाकर उन्हें चिकित्सा शिक्षा के हित में लेखन के कार्य में लगाना चाहिए। कौंसिल इस कार्य हेतु एक समिति का गठन कर सकती है। अनुभवी शिक्षकों से पुस्तकें लिखवाने से गुणवत्ता में वृद्धि हो सकेगी।
- *राष्ट्रीय उच्च चिकित्सा व तकनीकी शिक्षा लेखन मिशन की सीपना :* यह संस्थान देश की हिंदी ग्रंथ अकादमियों द्वारा हिंदी माध्यम से प्रकाशित चिकित्सा व तकनीकी विषयों की पुस्तकों की गुणवत्ता की जांच करे, उनके लिए संसाधनों की आपूर्ति करे तथा देश-विदेश में उनके प्रकाशनों की मांग व पूर्ति का समायोजन करें।
- *अनुवाद प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिंदी चिकित्सा शिक्षण को बढावा :* आजकल शिक्षा के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का निरंतर समावेश हो रहा है। चिकित्सा शिक्षण अंग्रेजी माध्यम से ही होता है। परन्तु अब ऐसे साफ्टवेयर विकसित हो गये हैं जो अंग्रेजी के भाषण को हिंदी में परिवर्तित कर देते हैं। ऐसा ही एक साफ्टवेयर सी-डैक, पूना ने बनाया है जिसका नाम 'वाचान्तर' है।इस प्रकार भारत सरकार, राज्य सरकारों तथा नियामक संस्थाओं द्वारा उपर्युक्त सुझावों पर ध्यान दिया जाता है तो हिंदी माध्यम से चिकित्सा शिक्षा कुछ ही वर्षो में अपने पावों पर खड़ी हो सकेगी तथा हिंदी में शोध प्रारंभ होने पर अंग्रेजी शिक्षा से प्रतियोगिता कर सकेगी।

abvbvbpl@gmail.com

❑❑❑

महान प्राचीन चिकित्सक

सुश्रुत और कौमारभृत्य जीवक

वाणी रे

इतिहास के झरोखे से झांकने पर पता लगता है कि भारत में प्राचीन काल से ही औषधि विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया गया। विज्ञान की इस शाखा का विकास आयुर्वेद के रूप में हुआ। आयुर्वेद का एक प्रमुख ग्रंथ है 'सुश्रुत संहिता' जो प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक महर्षि सुश्रुत की देन है। यह शल्य चिकित्सा का एक महान ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना चरक संहिता के बाद हुई। ऐसा माना जाता है कि सुश्रुत को आयुर्वेद का गूढ़ और गंभीर ज्ञान धन्वंतरि ने दिया। पौराणिक परिकल्पना के अनुसार धन्वंतरि का जन्म समुद्र मंथन से हुआ था।

सुश्रुत संहिता की रचना धन्वंतरि द्वारा सुश्रुत को दिए हुए उपदेश के रूप में की गई है। सुश्रुत संहिता का प्रत्येक अध्याय ''यथोवाच भगवान धन्वंतरिः'' अर्थात् 'भगवान धन्वंतरि ने ऐसा कहा' से प्रारंभ होता है। किंवदंती है कि धन्वंतरि ने काशीराज दिवोदास के रूप में जन्म लिया जो महर्षि सुश्रुत के गुरू थे। ग्यारहवीं सदी में मथुरा के उल्हण ने 'सुश्रुत संहिता' टीका लिखी। उल्हण के अनुसार नागार्जुन ने 'सुश्रुत संहिता' का संस्कार किया। पौराणिक आख्यान के अनुसार सुश्रुत संहिता के रूप में धन्वंतरि द्वारा दिए गए उपदेश के श्रोता सुश्रुत के अतिरिक्त वैतरणी, औरभ्र, पौश्कलावत, करवीर्य, गोपुररक्षित, आदि भी थे। 'सुश्रुत संहिता' में मुख्य रूप से शल्य चिकित्सा का विशद् वर्णन किया गया है।

इसके साथ ही इस संहिता में महर्षि सुश्रुत ने काय चिकित्सा के बारे में भी बताया है। उन्होंने शल्य चिकित्सा का वर्णन 120 अध्यायों में किया है। इन अध्यायों को सूत्र स्थान, निदान स्थान, शारीर स्थान, चिकित्सा स्थान और कल्प स्थान नामक पांच स्थानों के अंतर्गत संजोया गया है। काय चिकित्सा संबंधी उत्तर तंत्र में 66 अध्याय हैं।

सुश्रुत द्वारा शल्य चिकित्सा की जिन विधियों और उपकरणों का उल्लेख किया गया है, उनके बारे में पढ़ कर आश्चर्य होता है कि दो हजार वर्ष पहले भी भारत में शल्य चिकित्सा के बारे में इतना ज्ञान था। प्लास्टिक सर्जरी की जो पद्धति आज विश्व भर में प्रचलित है, सुश्रुत ने दो हजार वर्ष पहले उसका विशद् वर्णन किया और उसका व्यावहारिक प्रयोग किया। इसलिए प्लास्टिक सर्जरी के जनक निःसंदेह सुश्रुत ही हैं। उन्होंने गाल का मांस लेकर नाक की चिकित्सा की विधि के बारे में भी बताया है।

इस विधि के अनुसार एक चौड़ी पत्ती लेनी चाहिए जो कटे हुए अंग को पूरी तरह से ढक ले। उस पत्ती के बराबर मांस गाल से लेना चाहिए और उसे तुरंत ही कटी हुई नाक पर चिपका देना चाहिए। इसके बाद पट्टी बांध देनी चाहिए। इसी प्रकार महर्षि सुश्रुत के कटे-फटे होंठों की चिकित्सा का भी वर्णन किया है। उन्होंने विभिन्न प्रकार की पट्टियों और आलेपों का भी उल्लेख किया है। शरीर के अलग-अलग भागों पर पट्टी बांधने की 14 विधियों का वर्णन है।

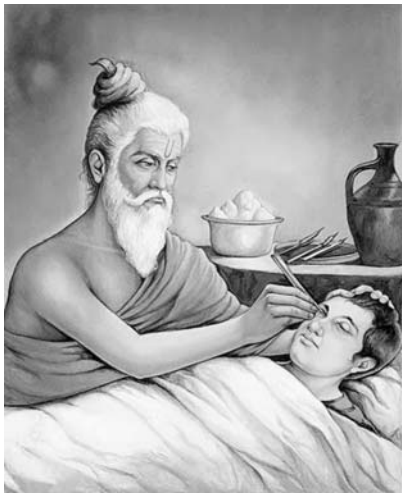

सुश्रुत ने कहा कि केवल सैद्धांतिक ज्ञान ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि उसके साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी जरूरी है। अपनी संहिता में उन्होंने बताया है कि ऐसा चिकित्सक जो केवल शास्त्र जानता हो लेकिन आचार की व्यावहारिक विधियों से अपरिचित हो या वह चिकित्सक जिसे आचार का व्यावहारिक ज्ञान हो लेकिन उसने पुस्तकों का अध्ययन नहीं किया हो, वह अपने व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं होता है। अभ्यास के लिए उन्होंने खीरा, ककड़ी, लौकी, तरबूज आदि वस्तुओं में छेदन कार्य करने की सलाह दी।

सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा में काम आने वाले उपकरणों की जानकारी भी दी है। उन उपकरणों और यंत्रों के नाम उनके आकार पर रखे गए जैसे स्वस्तिक यंत्र, सलाका यंत्र, संदंश यंत्र आदि। सुश्रुत द्वारा शल्य चिकित्सा के लिए 101 कुंद उपकरणों तथा २० पैने उपकरणों को प्रयोग में लाया गया। महर्षि सुश्रुत का कहना था कि उपकरण अच्छे लोहे के और संतुलित होने चाहिए।

शल्य चिकित्सा के अतिरिक्त पेट का आपरेशन, आंख का आपरेशन, प्रसव हेतु आपरेशन, मूत्र प्रणाली से पथरी निकालना सुश्रुत के अन्य प्रमुख योगदान हैं। पेट चीर कर गर्भ से शिशु को निकालने की विधि के बारे में भी सुश्रुत ने बताया जो आजकल सीजेरियन विधि के नाम से जानी जाती है। महर्षि सुश्रुत ने जनन के रहस्यों का भी पता लगा लिया था कि डिंब का शुक्राणु से निषेचन होता है। इस प्रकार गर्भाधान होता है। गर्भाधान के बाद सात परतों वाली त्वचा का निर्माण होता है जिनसे कला बनती है। भ्रूण के बारे में उन्होंने कहा कि शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। उनका कहना था कि लिंग निर्धारण माता को प्राप्त पोषक तत्वों पर निर्भर करता है।

सुश्रुत ने शवच्छेदन अर्थात् पोस्टमार्टम का भी वर्णन किया है। वे कहते हैं कि शल्य शास्त्र का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति को मृत शरीर का शोधन करके उनके अंग-प्रत्यंग का निश्चय करना चाहिए। शव से आंत्र तथा मल निकाल कर बहते जल वाली नदी में एकांत स्थान पर रख कर गलाना चाहिए। नरम हो जाने पर कूंची से धीरे-धीरे रगड़ते हुए उसे त्वचा से लेकर भीतर व बाहर के प्रत्येक अंग को देखना चाहिए।

सुश्रुत ने कहा कि केवल सैद्धांतिक ज्ञान ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि उसके साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी जरूरी है। अपनी संहिता में उन्होंने बताया है कि ऐसा चिकित्सक जो केवल शास्त्र जानता हो लेकिन आचार की व्यावहारिक विधियों से अपरिचित हो या वह चिकित्सक जिसे आचार का व्यावहारिक ज्ञान हो लेकिन उसने पुस्तकों का अध्ययन नहीं किया हो, वह अपने व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं होता है। अभ्यास के लिए उन्होंने खीरा, ककड़ी, लौकी, तरबूज आदि वस्तुओं में छेदन कार्य करने की सलाह दी।

सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा के साथ ही पौधों के वर्गीकरण के क्षेत्र में भी काम किया। उन्होंने पौधों को उनकी विशेषताओं के आधार पर 37 गणों में वर्गीकृत किया। कुकुरमुत्ते को उन्होंने तभी पौधा मान लिया था और सर्पगंधा, भांग आदि पौधों के चिकित्सा में उपयोग का भी उल्लेख किया। उन्होंने विषों का भी वर्गीकरण किया।

उनकी ख्याति नवीं तथा दसवीं शताब्दी से पहले कंबोडिया और अरब देशों तक फैल चुकी थी। उनके अधिकांश विचार 2000 वर्ष बाद भी आज के ज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं। जब पश्चिम में अंधकार युग चल रहा था तब भारत में सुश्रुत जैसे मनीषी चिकित्सा विज्ञान के गूढ़ रहस्यों का अनावरण कर रहे थे। उनकी कुछ मान्यताएं वर्तमान समय में यदि सही प्रतीत नहीं भी होती हैं तब भी विज्ञान के उस उषा काल में उनके वैज्ञानिक सोच को देखकर आज हमें आश्चर्य होता है। महर्षि सुश्रुत निःसंदेह अपने समय के एक महान चिकित्सक थे।

कौमारभृत्य जीवक

जीवक औषधि विज्ञान के एक महान मनीषी थे। वे गौतम बुद्ध के समकालीन थे। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में जब बौद्ध धर्म का तेजी से प्रचार और प्रसार हो रहा था तब सम्राट बिंबसार के दरबार में औषधि विज्ञान के प्रमुख विद्वान जीवक को उनकी प्रभावी औषधियों और कार्यकुशलता के लिए राजवैद्य नियुक्त किया गया।

आज से करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व मगध की राजधानी राजगृह थी। मगध में बिंबसार का राज था। राजगृह में नगरवासियों का मनोरंजन करने के लिए सालवती नाम

की एक अत्यंत सुंदर नर्तकी थी। कहा जाता है, नर्तकी होने के कारण सालवती पुत्र जन्म से अप्रसन्न थी। अतः उसने अपनी दासी को बालक को कहीं फेंक आने की आज्ञा दी। दासी ने उस बालक को सूप में रख कर कूड़े के ढेर में छोड़ दिया। कहते हैं, वहां से गुजरते हुए राजकुमार अभय ने कौओं से घिरे बालक को देखा और अंतःपुर ले आए। बालक के जीवित मिलने के कारण उन्होंने उसका नाम जीवक रख दिया। कुमार ने बालक का पालन-पोषण किया। अतः उसे कौमारभृत्य कहा जाने लगा। यही कौमारभृत्य जीवक आगे चल कर महान चिकित्सक बने।

जीवक ने अपनी पढ़ाई तक्षशिला में पूरी की थी। उन्होंने वहां आयुर्वेद का अध्ययन किया। उस समय तक्षशिला विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था और वहां चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा भी दी जाती थी। तक्षशिला में शिक्षित अनेक वैद्यों ने बहुत ख्याति अर्जित की। तक्षशिला का पतन हो जाने के बाद भारत में उज्जयनी और नालंदा विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई थी।

जीवक ने औषध विज्ञान की शिक्षा संभवतः महर्षि आत्रेय पुनर्वसु से प्राप्त की। आत्रेय ने उन्हें रोगों के कारणों एवं लक्षणों, पदार्थों के सामान्य एवं विशिष्ट स्वभाव, उनके गुण और क्रियाओं के बारे में शिक्षा दी। आचार्य जीवक ने सात वर्ष तक महर्षि आत्रेय के सान्निध्य में अध्ययन किया। सात वर्ष के लंबे अंतराल के बाद उन्होंने महर्षि आत्रेय से वापस जाने की आज्ञा मांगी। महर्षि आत्रेय ने जीवक से तक्षशिला में चारों ओर घूम कर ऐसी वनस्पति लाने को कहा जिसका औषधि के रूप में कोई उपयोग न हो। लौट कर आचार्य जीवक ने महर्षि से कहा कि ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जिसका औषधि के रूप में उपयोग न हो। तब महर्षि आत्रेय ने कहा कि ठीक है, तुम बहुत-कुछ सीख चुके हो और उन्होंने उन्हें वापस जाने की आज्ञा दे दी। आचार्य जीवक थोड़े से राह खर्च, जड़ी-बूटियों और औषधियों के साथ राजगृह की ओर चल दिए। धन समाप्त हो जाने पर जीवक काशी में रूक गए। काशी में नगर सेठ की पत्नी भयंकर सिरदर्द से पीड़ित थी। जीवक ने उनका इलाज कर धन अर्जित किया और कुछ दिनों बाद राजगृह पहुंच गए। वहां सामंत अभय ने उनसे अंतःपुर में ही रहने का निवेदन किया। तब जीवक स्थायी रूप से वहीं रहने लगे।

महर्षि आत्रेय ने जीवक से तक्षशिला में चारों ओर घूम कर ऐसी वनस्पति लाने को कहा जिसका औषधि के रूप में कोई उपयोग न हो। लौट कर आचार्य जीवक ने महर्षि से कहा कि ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जिसका औषधि के रूप में उपयोग न हो। तब महर्षि आत्रेय ने कहा कि ठीक है, तुम बहुत-कुछ सीख चुके हो और उन्होंने उन्हें वापस जाने की आज्ञा दे दी। आचार्य जीवक थोड़े से राह खर्च, जड़ी-बूटियों और औषधियों के साथ राजगृह की ओर चल दिए।

मगध की राजधानी राजगृह के राजा बिंबसार भगंदर नामक असाध्य रोग से पीड़ित थे। जीवक की औषधि के एक ही लेप से राजा बिंबसार भगंदर से मुक्त हो गए। तब राजा बिंबसार ने प्रसन्न होकर उन्हें मगध का राजवैद्य बना दिया।

राजा बिंबसार के काल में बौद्ध धर्म का जोर-शोर से प्रचार हुआ। स्वयं राजा बिंबसार गौतम बुद्ध के अनुयायी थे। वे निरंतर भिक्षु संघ में गौतम बुद्ध के उपदेश सुनने जाते थे। बिंबसार के निकटतम जीवक इस तरह गौतम बुद्ध के संपर्क में आए। भिक्षु संघ में आचार्य जीवक ने एक भिक्षुणी का इलाज किया। बाद में सारथी से उन्हें पता चला कि वह भिक्षुणी उनकी मां है। आचार्य जीवक ने गौतम बुद्ध को बीमार भिक्षुणी के बारे में बताया। गौतम बुद्ध ने आचार्य जीवक से कहा कि वह मात्र एक भिक्षुणी है, किसी की मां नहीं। आचार्य जीवक ने कहा कि वे भी सब कुछ त्याग चुके हैं और किसी के पुत्र नहीं हैं और न ही उनकी कोई मां है। आचार्य जीवक ने गौतम बुद्ध से भिक्षुक बनने की इच्छा व्यक्त की और संघ की शरण में लेने को कहा। गौतम बुद्ध ने भिक्षु जीवक से लोगों की सेवा सुश्रुषा जारी रखने को कहा।

महावग्ग में महान चिकित्सक आचार्य जीवक की विस्तृत कथा दी गई है जिससे उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

❑❑❑

नोबेल पुरस्कृत हमारे वैज्ञानिक

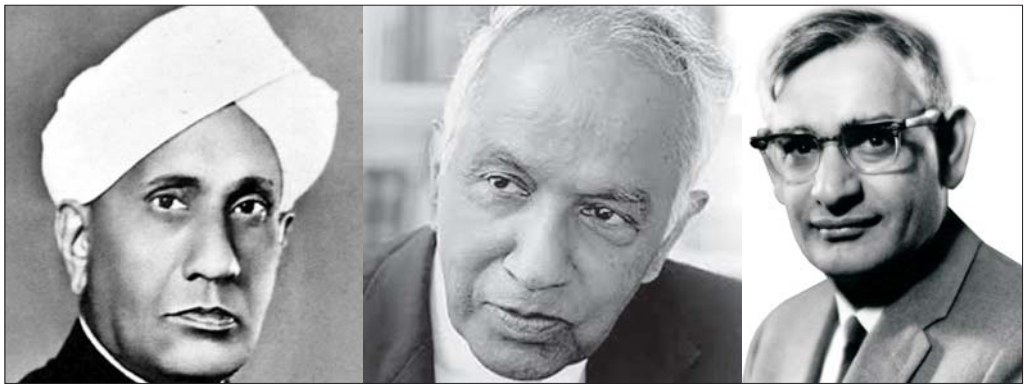

विज्ञान-विश्व में ऐसी अनेक भारतीय प्रतिभाएं-विभूतियां हुई हैं जिन्होंने समूचे पटल को अपने काम से प्रभावित तथा अचंभित किया है। आदि युग से लेकर आधुनिक युग तक भारतीय वैज्ञानिकों की उपस्थिति को विश्व ने उन्हें विज्ञान-इतिहास में रेखांकित किया है, रेखांकित करने के साथ-साथ सम्मानित भी किया है। सैकड़ों वैज्ञानिकों की सूची में कुछ नाम ऐसे हैं जिन्हें नोबेल पुरस्कार से नवाज़ा गया, उनमें से तीन महत्वपूर्ण नाम सर चंद्रशेखर वेंकट रामन, सुब्रह्मण्यन् चंद्रशेखर और हरगोविंद खुराना हैं।

सर चंद्रशेखर वेंकट रामन प्रथम भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। डॉ. रामन को यह पुरस्कार इसलिए प्रदान किया गया कि उन्होंने प्रकाश के छितराने के संबंध में खोज की और बताया कि उसके छितराने का प्रभाव होता है। इस सिद्धांत को रामन प्रभाव कहा गया। 1930 में उन्हें इसी सिद्धांत के लिए नोबेल पुरस्कार दिया गया। चंद्रशेखर सुब्रह्मण्यन को खगोल भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया गया। उनका जन्म अविभाज्य भारत के लाहौर में 1910 में हुआ था। आरंभिक शिक्षा के बाद 1930 को वे इंग्लैण्ड चले गये। चंद्रशेखर का मुख्य विषय रहा-खगोल भौतिकी। यह विषय तारों के निर्माण, उनके विकास और उनकी समाप्ति का विज्ञान है। उन्होंने इसी क्षेत्र में कार्य किया। हरगोविंद खुराना को दो अन्य अमेरिकी वैज्ञानिकों के साथ नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। वे प्रोटीन संश्लेषण के न्यूक्लिटाइड की भूमिका का प्रदर्शन करने वाले पहले वैज्ञानिक थे।

उन्नीसवी सदी के अवसान में जो वैज्ञानिक गतिविधियां शुरू हुई उनमें भारत के बंगाल प्रांत से कई नाम जुड़े। सर चंद्रशेखर वेंकटरामन का नाम अग्र पंक्ति का है। चंद्रशेखर वेंकटरामन का जन्म 1888 में तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली नामक शहर में हुआ, उनके पिता श्री चंद्रशेखर एसपीजी कॉलेज के भौतिकी व्याख्याता थे और उन्हें संस्कृत तथा अंग्रेजी का ज्ञान था। दादा सप्तर्षि शास्त्री संस्कृत के एक महान विद्वान थे। बालकाल से ही रामन अत्यधिक मेघावी छात्र थे। उन्होंने 11 वर्ष की आयु में हाईस्कूल और 16 वर्ष की आयु में भौतिक तथा अंग्रेजी साहित्य में स्वर्ण पदक के साथ बीए की परीक्षा पास की और 1906 में भौतिकी में एमए की परीक्षा पास की। इस समय उनकी अवस्था 18 की थी। अब तक दी परीक्षाओं में उन्होंने सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था और वे अपने प्राध्यापकों से भी आगे थे। उनके ब्रिटेन के प्रसिद्ध शोध जनरलों में शोध प्रबंध प्रकाशित हुए जिसमें उनका पहला शोध फिलोस्फिकल पत्रिका में छपा। बाद में इन शोध पत्रों की संख्या 475 के आसपास हो गई। रामन को तमिल, तेलगू तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान था जिसे विस्तारित करते हुए उन्होंने जर्मनी सीखकर और समृद्ध किया। उन्हें फलित ज्योतिष, मौसम विज्ञान और शरीर विज्ञान जैसे विषयों में भी अधिक रूचि थी। चंद्रशेखर ने चुम्बकत्व और क्रिस्टल भौतिकी, पराध्वनिक, ध्वनिक, प्रकाश विज्ञान आदि की खोज करते हुए पाईथोगोरस की इस बात को सूत्रबद्ध किया की ध्वनि को संगीत में बदलने वाला घटक क्या है?

आरंभिक शिक्षा के पश्चात वे कलकत्ता आ गये थे। अपने प्रकाशित शोधपत्रों के कारण उन्हें 'भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधान परिषद' का सदस्य बना लिया गया। रामन ने अगले दिन से इंडियन एसोसिएशन की प्रयोगशाला में खोजबीन का कार्य शुरू कर दिया। वह

दिन में नौकरी करते और रात में देर तक प्रयोग करते रहते थे। उन्होंने ऐसे अनेक आश्चर्यजनक आविष्कार किए जिनसे उनकी ख्याति इंग्लैंड और अमेरिका तक जा पहुँची। प्रयोगशाला में आपके अनुसंधानों का विवरण पुस्तिकाओं (बुलेटिनों) के रूप में प्रकाशित होकर विदेश में जाने लगा जिससे परिषद का नाम सर्वत्र फैलने लगा। तीन वर्ष पश्चात् आपका स्थानांतरण रंगून हो जाने से परिषद् की प्रयोगशाला से संपर्क टूट गया। किंतु अनुसंधान कार्य में व्यवधान उपस्थित होने पर भी आप विज्ञान के आकर्षण से विरत नहीं हुए और अपना समय वैज्ञानिक अध्ययन में लगाते रहे। 1910 में रामन मद्रास आए और प्रेसीडेंट कॉलेज की प्रयोगशाला में प्रयोग करने लगे। अवकाश की अवधि के अंत में आपको नागपुर स्थानांतरित कर दिया गया। नागपुर में आपने अपने निवासगृह में निजी प्रयोग हेतु अनुसंधानशाला स्थापित की और इस प्रकार अपनी इच्छानुकूल कार्यक्रम का निर्माण किया। नागपुर में एक वर्ष तक कार्य करने के बाद सन् 1911 में आपको डाकतार विभाग के महालेखा पाल के पद पर पदोन्नत कर कलकत्ता भेजा गया। अनुसंधान परिषद् के पार्श्व में आकर रमन अत्यंत प्रसन्न हुए तथा नवंबर 1911 से जुलाई 1917 तक आप कलकत्ता में राजकीय लेखाकार्य एवं परिषद् की प्रयोगशाला में अनुसंधान कार्य करते रहे। अभी तक रामन बाबू भारतीय विज्ञान परिषद् के उपसभापति थे। किंतु सन् 1919 में डॉ. अमृतलाल सरकार की मृत्यु हो जाने पर वे इस संस्था के अवैतनिक प्रधानमंत्री भी नियुक्त किए गए और उन्हें अनुसंधान की स्वच्छन्द सुविधाएँ प्राप्त होने लगीं।

सन 1921 में ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों के सम्मेलन में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों के प्रतिनिधि के रूप में तथा आशुतोष महोदय के विशेष आग्रह एवं प्रोत्साहन पर उन्हें लंदन भेजा गया। आपने कुहासे तथा हलके बादलों से निर्मित इंद्रधनुष के रंगों की व्याख्या की। सामुद्रिक यात्रा से आपको समुद्र के नीले रंग के अध्ययन का अवसर मिला तथा विश्लेषण करके आप इस निर्णय पर पहुँचे कि समुद्र के जल में नीला रंग प्रकाश के प्रभाव के कारण होता है। उन्होंने समुद्र के गहरे रंग की व्याख्या इन सीधे-सादे शब्दों में की, ''गहरे समुद्र के गहरे नीले रंग का कारण है, आकाश की नीलिमा का अक्स।''

वे सितंबर सन 1921 में वापस स्वदेश लौट आए। आपने आकाश, समुद्र और ग्लेशियर के रंगों के संबंध में सफल प्रयोग किए। आपने सिद्ध किया कि केवल पारदर्शक द्रव्यों में ही नहीं, अपितु बर्फ और स्फटिक जैसे ठोस पारदर्शक पदार्थों में भी अणुओं की गति के कारण प्रकाश का परिक्षेपण होता है। इसके विवरण पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए जिससे विश्व के वैज्ञानिकों के ज्ञान में वृद्धि हुई तथा रमन की गणना विश्व के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों में की जाने लगी। उन्होंने भारतीय विज्ञान परिषद के तत्वावधान में 'इंडियन जर्नल ऑफ फिजिक्स' का पकाशन प्रारंभ किया। सन 1924 में कनाडा में ब्रिटिश साम्राज्य के वैज्ञानिकों के सम्मेलन में भारत की ओर से भाग लिया, जहाँ उनकी भेंट संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा के वैज्ञानिकों से हुई तथा अमेरिका और कनाडा की प्रयोगशालाओं का निरीक्षण आपने किया। इस यात्रा काल में आपकी जिन वैज्ञानिकों से भेंट हुई, उनमें अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. मिलिकन प्रमुख थे अमेरिका से आप इंग्लैंड, नार्वे और यूरोप के कई नगरों की यात्रा पर गए। इस प्रकार 10 माह तक विदेशों में रहकर आप 18 मार्च, 1925 को भारत वापस आए तथा पुनः वैज्ञानिक अनुसंधान में लग गए। आपने 'साबुन के बुलबुलों' के निर्माण पर कार्य किया। रामन ने एक ओर नवीन अनुसंधान किए और दूसरी ओर पहले के अनुसंधानों में संशोधन कर उन्हें पूर्णता प्रदान की। आपके आविष्कारों में सबसे महत्वपूर्ण प्रकाश प्रकीर्णन अथवा 'रामन किरण' का आविष्कार है जो उन्होंने सन 1928 में 28 फरवरी को पूर्ण किया। 28 फरवरी का दिन प्रतिवर्ष उन्हीं के सम्मान में राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस आविष्कार से आपने सिद्ध किया कि जब अणु पकाश को बिखेरते हैं, तो उस समय मूल प्रकाश में परिवर्तन हो जाता है। नवीन किरणों की उपस्थिति से हम यह परिवर्तन देख सकते हैं। परक्षिप्त प्रकाश में जो किरणें दीख पड़ीं, वे 'रमन प्रभाव' अथवा 'रामन किरणें' कहलायी। यह आपका सर्वश्रेष्ठ आविष्कार है। विश्व के महान् गणितज्ञों, भौतिकविदों एवं रसायनशास्त्रियों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और इसका लाभ उठाया। इस आविष्कार के उपलक्ष्य में आपको विश्व का सबसे महान् एवं सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'नोबेल पुरस्कार' सन 1930 में प्रदान कर सम्मानित किया गया। कहते हैं, उन्होंने अपनी इस खोज के लिए उपकरणों पर मात्र 200 रुपए खर्च किए थे। रामन प्रभाव ने क्वाटंम सिद्धांत को मजबूत संबल प्रदान किया।

सन 1960 में रामन ने एक अत्यंत महत्वपूर्ण खोज की। आपने आँख के रेटिना-काला भाग को देखने के लिए आपथैलोमोस्कोप नामक यंत्र बनाया। यह यंत्र वैज्ञानिक हेलमोल्तज के यंत्र से अनोखा है। इससे आँख के अंदर की रचना और प्रक्रिया को बड़ी सरलता से देखा जा सकता है। यही नहीं, रामन ने रेटिना में तीन रंग (Pigment) की खोज की है। आपने इन रंगों के कार्य,

उनके प्रभाव और पहचान का भी पता लगाया है। आपने राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, बंगलौर में कण विज्ञान (क्रिस्टिओलॉजी) पर अनुसंधान कार्य किया। सन् 1922 में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको डी.एस. सी. की सम्मानित उपाधि प्रदान की। सन् 1924 में रॉयल सोसायटी, लंदन ने आपको फैलो निर्वाचित कर सम्मानित किया। सन् 1928 में भारतीय गणित परिषद् ने आपको अपना फैलो मनोनीत किया। सन् 1928 में आप भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सभापति चुने गए।

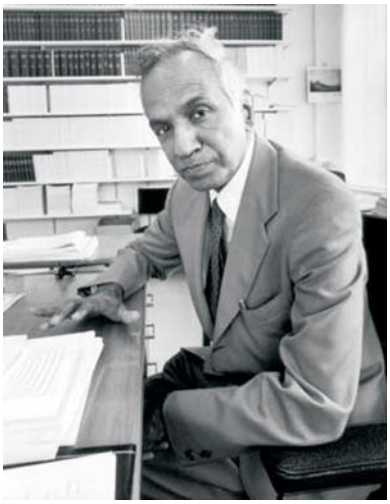

सन् 1928 में इटालियन सोसायटी, रोम ने 'मैथ्यूसी' नामक स्वर्ण पदक प्रदान कर आपको सम्मानित किया। सन् 1929 में ब्रिटिश सरकार ने आपको 'सर' की उपाधि प्रदान की।

नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के लिए आप स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम गए जहाँ आपको स्वीडन नरेश ने 8 हजार पौंड अर्थात् 1 लाख 10 हजार रुपए की धनराशि का पुरस्कार तथा स्वर्णपदक प्रदान किया। यह पुरस्कार स्वीडन निवासी वैज्ञानिक श्री आल्फ्रेड नोबल द्वारा प्रदत्त धनराशि पर अर्जित ब्याज से प्रतिवर्ष भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, औषधि विज्ञान, आदर्शपूर्ण साहित्यिक रचना एवं विश्व शांति के लिए किए गए प्रयास के उपलक्ष्य में प्रदान किया जाता है तथा प्राप्तकर्ता के रंग, धर्म, जाति एवं लिंग का कोई विचार नहीं किया जाता है। इसी समय यूरोपकी विज्ञान संस्था ने आपको फैलो मनोनीत किया। सन् 1930 में फ्रीवर्ग विश्वविद्यालय ने पी-एच.डी. तथा इस प्रकार विश्व के समस्त देशों द्वारा उनको सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया। डॉ. रामन सन् 1917 से सन् 1932 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय और विज्ञान परिषद् में अनुसंधान कार्य में संलग्न रहे और अपने कार्यों से भारत के गौरव में वृद्धि करते रहे। सन् 1933 में भारत सरकार ने आपको 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस' बंगलौर का संचालक नियुक्त किया। 1948 ई. में रामन रिसर्च इंस्टीट्यूट, बंगलौर की स्थापना हुई, जिसके वह निदेशक बने।

विज्ञान और विश्वशांति डॉ. रमन विज्ञान का प्रयोग युद्ध क्षेत्र में करने के पक्ष में नहीं थे। वे विज्ञान का प्रयोग शांति कार्यों एवं जनकल्याण हेतु ही उचित समझते थे। वे नहीं चाहते थे कि वैज्ञानिक ऐसा प्रयोग करें जो विश्व शांति में बाधक हो। उनके इन वैज्ञानिक शांतिपूर्ण कार्यों द्वारा राष्ट्रों के मध्य मैत्री विकसित करने के उपलक्ष्य में सन् 1958 में 'लेनिन शांति पुरस्कार' प्रदान कर आपको सम्मानित किया गया।

डॉ. रामन कार्य शीघ्रता से करते थे। उनके अंग-प्रत्यंग में बिजली के समान तेजी थी। वे विज्ञान के साथ-साथ अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, इतिहास और संस्कृत के मर्मज्ञ थे। आपमें ज्ञान की पिपासा सदैव विद्यमान रही। आप विभिन्न भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त कई यूरोपीय भाषाओं के भी अच्छे ज्ञाता थे। ऐसे महान् देशरत्न वैज्ञानिक को हमारी राष्ट्रीय सरकार ने सन् 1954 में 'भारतरत्न' के सर्वोच्च अलंकरण से सम्मानित किया है। सन् 1970 में 21 नवंबर को देश के इस महान् सपूत का 82 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। रामन कोट, पैंट, टाई के साथ सिर पर दक्षिण भारतीय पद्धति की पगड़ी धारण करते थे। वह सही अर्थों में राष्ट्रवादी थे। रामन के व्यक्तित्व और कार्य का ऐसा प्रभाव था कि आने वाली पीढ़ी उनसे प्रभावित होती रही और उनके कार्यों को आगे बढ़ता रही। कोई अचरज नहीं की उन्हीं के भतीजे को आगे चलकर विज्ञान का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ, जिसका नाम था सुब्रह्मण्यन चंद्रशेखर।

सुब्रह्मण्यन चंद्रशेखर का जन्म 19 अक्टूबर 1910 अविभाज्य भारत के लाहौर शहर में हुआ। उनका बचपन मद्रास में बीता। उन्होंने नियमित स्कूल जाना ग्यारह साल की अवस्था में शुरु किया। सन 1925 में मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में दाखिला लिया। यहां उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, भौतिकी और रसायन में शिक्षा प्राप्त करते हुए एमए की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान बनाया। 1930 में वे इंग्लैण्ड आये और उच्च अध्ययन के बाद अपनी आगे की यात्रा यही से तैय की जो 65 वर्षों तक चली। शुरु के कुछ वर्षों में वे अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय से जुड़े रहे। उन्होंने तारों की संरचना, उनका निर्माण, उनकी समाप्ति विषय के अंतर्गत उनके भौतिक गुणधर्मो से संबंधित विषय पर काम किया। उनकी सबसे अधिक प्रसिद्धी 'चंद्रशेखर सीमा' खोज से हुई जिसमें तारों के विकास, न्यूट्रॉन तारों, ब्लैक होल्स के विषय में जानकारी ज्ञात हुई। उन्होंने बताया की तारों के द्रव्यमान की एक अधिकतम सीमा होती है जो गुरुत्वबल को उसके भीतर स्थित इलेक्ट्रॉनों व नाभकीय कणों के दबाव से संतुलित किये जाने से निर्धारित होती है। यह सीमा सूर्य के द्रव्यमान के लगभग 1.44 गुना के बराबर है। यदि किसी तारे का द्रव्यमान इस सीमा से अधिक है तो वह तारा 'श्वेत बामन' नहीं बनेगा। गुरुत्वबल अत्यधिक होने के कारण वह तारा सिकुड़ता जायेगा और अंततः एक न्यूट्रॉन तारा बन जायेगा। वस्तुतः तारे संतुलित रहते हैं अर्थात गुरुत्व बल और तारों का आंतरिक दबाव एक दूसरे को संतुलित कर देते हैं। किन्तु हर तारे के जीवन में जब नाभकीय अभिक्रियाएं बंद पड़ जाती हैं तब आंतरिक दबाब कम हो जाता है और वह गुरुत्वबल को संतुलित नहीं कर पाता। तारा सिकुड़ने लगता है तब द्रव्यमान के अनुसार तारों की तीन अंतिम

अवस्थाएं हो सकती हैं- श्वेत वामन, न्यूट्रॉन तारा और ब्लैक होल। सुब्रह्मण्यन चंद्रशेखर को उनके इन्हीं महत्वपूर्ण कार्यों के लिए 1983 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया। सुब्रह्मण्यन चंद्रशेखर सभी शोध कार्यों में विलक्ष्ण रहे। उनका झुकाव किसी खास विषय की ओर नहीं था बल्कि उनमें विषय से संबंधित सभी पहलुओं को जानने की लालसा थी। वे एक क्षेत्र में शोधकार्य करने के बाद दूसरे क्षेत्र में शोध करने हेतु तैयार हो जाते थे। उनका अधिकांश समय विदेश में ही बीता और 21 अगस्त 1995 आपका निधन हुआ।

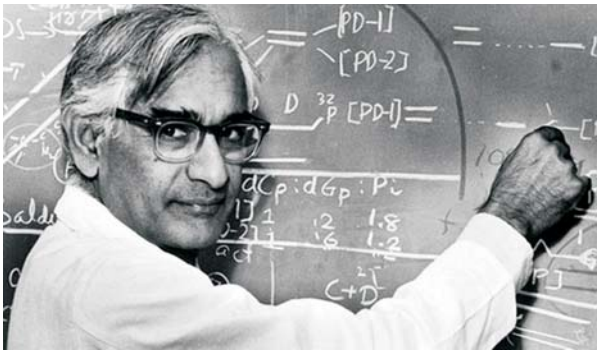

आण्विक जीव विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने वाले हरगोविंद खुराना को 1968 में नोबेल पुरस्कार मिला। वे प्रोटीन संश्लेषण में न्यूक्लिटाइड की भूमिका का प्रदर्शन करने वाले पहले वैज्ञानिक थे।

हरगोविंद खुराना का जन्म अविभाजित भारत के रायपुर (जिला मुल्तान, पंजाब) नामक स्थान पर 9 जनवरी 1922 में हुआ था। उनके पिता एक पटवारी थे। अपने माता-पिता के चार पुत्रों में हरगोविंद सबसे छोटे थे। गरीबी के बावजूद हरगोविंद के पिता ने अपने बच्चो की पढ़ाई पर ध्यान दिया जिसके कारण खुराना ने अपना पूरा ध्यान पढ़ाई पर लगा दिया। वे जब मात्र 12 साल के थे, तभी उनके पिता का निधन हो गया और ऐसी परिस्थिति में उनके बड़े भाई नंदलाल ने उनकी पढ़ाई-लिखाई का जिम्मा संभाला। उनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानिय स्कूल में ही हुई। उन्होंने मुल्तान के डी.ए.वी। हाई स्कूल में भी अध्ययन किया। वे बचपन से ही एक प्रतिभावान् विद्यार्थी थे जिसके कारण इन्हें बराबर छात्रवृत्तियाँ मिलती रहीं। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से सन् 1943 में बी.एस-सी (आनर्स) तथा सन् 1945 में एम.एस-सी। (ऑनर्स) की डिग्री प्राप्त की। पंजाब विश्वविद्यालय में महान सिंह उनके निरीक्षक थे। इसके पश्चात भारत सरकार की छात्रवृत्ति पाकर उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड चले गए। इंग्लैंड में उन्होंने लिवरपूल विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रॉजर जे.एस। बियर के देख-रेख में अनुसंधान किया और डाक्टरेट की उपाधि अर्जित की। इसके उपरान्त इन्हें एक बार फिर भारत सरकार से शोधवृत्ति मिलीं जिसके बाद वे जूरिख (स्विट्सरलैंड) के फेडरल इंस्टिटयूट अह्व टेक्नॉलॉजी में प्रोफेसर वी. प्रेलॉग के साथ अन्वेषण में प्रवृत्त हुए। उच्च शिक्षा के बाद भी भारत में डाक्टर खुराना को कोई भी योग्य काम न मिला इसलिए सन 1949 में वे वापस इंग्लैंड चले गए और केंब्रिज विश्वविद्यालय में लार्ड टाड के साथ कार्य किया। वे सन 1950 से 1952 तक कैंब्रिज में रहे। इसके बाद उन्होंने के प्रख्यात विश्वविद्यालयों में पढ़ने और पढ़ाने दोनों का कार्य किया।

1952 में उन्हें वैंकोवर (कनाडा) की कोलम्बिया विश्वविद्यालय से बुलावा आया जिसके उपरान्त वे वहाँ चले गये और जैव रसायन विभाग के अध्यक्ष बना दिए गये। इस संस्थान में रहकर उन्होंने आनुवाँशिकी के क्षेत्र में शोध कार्य प्रारंभ किया और धीरे-धीरे उनके शोधपत्र अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं और शोध जर्नलों में प्रकाशित होने लगे। इसके फलस्वरूप वे काफी चर्चित हो गये और उन्हें अनेक सम्मान और पुरस्कार भी प्राप्त हुए।

सन 1960 में उन्हें 'प्रोफेसर इंस्टीट्युट ऑफ पब्लिक सर्विस' कनाडा में स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया और उन्हें 'मर्क एवार्ड' से भी सम्मानित किया गया। इसके पश्चात सन् 1960 में डॉ. खुराना अमेरिका के विस्कान्सिन विश्वविद्यालय के इंस्टिट्यूट ऑव एन्ज़ाइम रिसर्च में प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुए। सन 1966 में उन्होंने अमरीकी नागरिकता ग्रहण कर ली। सन 1970 में डॉ. खुराना मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी (एम.आई.टी.) में रसायन और जीव विज्ञान के अल्फ्रेड स्लोअन प्रोफेसर नियुक्त हुए। तब से लेकर सन 2007 वे इस संस्थान से जुड़े रहे और बहुत ख्याति अर्जित की।

डॉ खुराना ने जीन इंजीनियरिंग (बायो टेक्नॉलॉजी) विषय की बुनियाद रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जेनेटिक कोड की भाषा समझने और उसकी प्रोटीन संश्लेषण में भूमिका प्रतिपादित करने के लिए सन 1968 में डॉ. खुराना को चिकित्सा विज्ञान का नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। डॉ.हरगोविंद खुराना नोबेल पुरस्कार पाने वाले भारतीय मूल के तीसरे व्यक्ति थे। यह पुरस्कार उन्हें दो और अमेरिकी वैज्ञानिकों डॉ.राबर्ट होले और डॉ. मार्शल निरेनबर्ग के साथ सम्मिलित रूप से प्रदान किया गया था। इन तीनों ने डी.एन.ए. अणु की संरचना को स्पष्ट किया था और यह भी बताया था कि डी.एन.ए. प्रोटीन्स का संश्लेषण किस प्रकार करता है। चिकित्सा के क्षेत्र डॉ. खुराना के कार्यों को सम्मान देने के लिए विस्कोसिंन मेडिसन यूनिवर्सिटी, भारत सरकार और इंडो-यूएस सांइस एंड टेक्नॉलॉजी फोरम ने संयुक्त रूप से सन 2007 में खुराना प्रोग्राम प्रारंभ किया।

❑❑❑

गुज़िश्ता सदी के भारतीय वैज्ञानिक

शुचि मिश्रा

गुज़िश्ता सदी की बात करें तो विज्ञान में भारतीय प्रतिभाओं का अमूल्य योगदान कहा जाना चाहिए। यूं तो आचार्य जगदीश चंद्र बसु, चंद्रशेखर वेंकट रामन, बीरबल साहनी, गोपाल समुद्रम नारायण रामचंद्रन, मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया, आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे, पठाणि सामंत, सत्येंद्रनाथ बसु, श्रीनाथ श्रीनिवास रामानुजन येल्ला प्रगद सुब्बाराव, होमी जहांगीर भाभा, करिअमानिक्कम श्रीनिवास कृष्णन, मेघनाद साहा, प्रशांत चंद्र महालनोबिस, शांति स्वरूप भटनागर, शिशिर कुमार मित्र, सुब्रमण्यन चंद्रशेखर, विक्रम साराभाई, राजा रामण्णा, दौलत सिंह कोठारी, दाराशा नौशेरवां वाडिया, शिव रामाष्णन चंद्रशेखर आदि ऐसे नाम हैं जिनके बिना विज्ञान सूची मुकम्मल नहीं होगी किंतु इस लेख में हम कुछ वैज्ञानिकों की चर्चा करना चाहेंगे।

विज्ञान के क्षेत्र में कुछ वैज्ञानिक ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने वैज्ञानिक ढांचे, मॉडल, रोड मैप, ब्लूप्रिंट को साकार कर देश दुनिया की प्रगति की मिसाल कायम की। मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया इसी तरह के वैज्ञानिक थे। उनकी छवि भारत के सर्वाधिक प्रसिद्ध इंजीनियर की छवि है लेकिन आधुनिक भारत के उद्योग जगत के साथ स्थापन तथा विकास के लिए जो कार्य किए हैं वह बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। वे कुशल प्रशासक शिक्षा शास्त्री और आधुनिक निर्माता थे। वृंदावन उद्यान की निर्माण के साथ साथ उन्होंने देश की जीवन रेखा कही जाने वाली कई बड़ी नदियों को नियंत्रित करने और दिशा देने का काम किया जिनमें गंगा, मूसा, ईशा, तुंगभद्रा, कावेरी आदि उल्लेखनीय है।

1860 में तात्कालीन मैसूर राज्य जो अब कर्नाटक है के कोलार जिले में 28 अगस्त की तारीख को मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया का जन्म हुआ गाँव का नाम था मुद्दनेाहल्ली। अल्पायु में पिता का निधन हो गया जिसके चलते मामा के घर रह कर पढ़ाई की इसके बाद इंजीनियरिंग अध्ययन के लिए पुणे चले गए जहां उन्होंने सिविल इंजीनियरिंग में विशेषता हासिल की। 1884 में मुंबई सरकार के लोक निर्माण विभाग में सहायक इंजीनियर हुए और 1909 तक यह कार्य किया। इसी दौरान वे बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविंद रानाडे जैसे क्रांतिकारियों के संपर्क में आए जिससे उन्हें विज्ञान से विकास की ओर देश के विकास की नई दृष्टि मिली इसी दृष्टि से

उन्होंने नगर विकास और जलपूर्ति के कार्य जैसी योजनाओं को क्रियान्वित किया। फलतः मुम्बई प्रांत के कोल्हापुर, धारमाड़, बेलगांव, बीजापुर जैसे शहरों का अवश्यम्भावी विकास हुआ। उन्होंने सिंध, सूरत, पुणे, ग्वालियर मैसूर आदि जगहों पर बृहद बाँध बंधवाये। ब्रिटिश सरकार ने अपनी फौजी बसाहट के लिए उनकी सेवाएँ लीं। उन्होंने अदन के लिए उन्हीं नियुक्त किया। अदन भारत से ब्रिटेन जाते हुए पहला बंरगाह था। स्वेज नहर से जाते हुए यात्रा बहुत लम्बी होती थी। विश्वैश्वरैया ने 1906 में अदन पहुँच कर निकासी तंत्र का निर्माण किया जिसके कारण उन्हें 'कैसर-हिन्द' तमगे से नवाज़ा गया। विश्वैश्वरैया ने 1909 में हैदराबाद में मुख्य अभियंता के रूप में कार्यभार संभाला जहाँ उनके कार्यों में बाढ़ से बचाव की योजना तैयार करना, शहर के घाट से जल निकासी और नगर के पुनर्निर्माण में सलाह तथा सहायता देना था। उक्त समस्याओं से शहर पूर्व में जूझ चुका था। इस समस्या के लिए उन्होंने बांध बांधकर मूसा और ईसा नदी के घाटों को ऊँचा करके उनके दोनों किनारों पर वृक्ष लगवाए। उनके प्रयास से हैदराबाद एक सुंदर शहर के रूप में विकसित हुए जिसकी सुंदरता आज भी बरकरार है।

1909 के अंत में वे मैसूर राज्य के चीफ इंजीनियर नियुक्त हुए। एक उच्च पद पर आसीन रहे। अतः वे सरकार के रेल्वे सचिव भी थे। उन्होंने यहाँ मैसूर सरकार के लिए दो समितियों का गठन किया। इनका कार्य तकनीकी शिक्षा और उद्योग से संबंधित था। अतः इसके माध्यम से उन्होंने बृहत सिंचाई और पनबिजली तथा रेल्वे का पुनर्गठन किया। उन्होंने कन्नड़ भाषा में पाठ्यक्रम शुरू किये जो कम समय में छोटे किसानों के लिए उपयोगी सिद्ध हुए। बुनियादी लेख विधि, बैंकिंग, व्यवसायिक भूगोल आदि के विशेष पाठयक्रम आरंभ किए गए। नागरिक शास्त्र, नागरिक कर्तव्य-अधिकार, व्यापार और सामाजिक नियम, प्रायोगिक कृषि शिक्षा आदि के क्षेत्र में उन्होंने बुनियादी कार्य किए। उन्होंने मैसूर के निकट हिब्बल में एक कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना की तथा कन्नड़ साहित्य परिषद की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे प्रगति के प्रखर समर्थक थे किन्तु वे बहुत बेबाक और स्पष्टवादी व्यक्ति थे।

विश्वैश्वरैया टाटा उद्योग समूह से भी जुड़े रहे। वे लौह एवं इस्पात कारखाने में प्रबंधक रहे और 28 वर्षों तक टाटा स्टील-आयरन कंपनी के निदेशक रहे। उन्होंने अंग्रेजी शासित भारत के युग से लेकर स्वतंत्र भारत तक अपनी सेवाएँ देश के विकास के लिए दी। उनकी सेवा जन उत्थान के लिए रहीं। इस हेतु 1955 में उन्हें भारत रत्न से नवाज़ा गया। 12 अप्रैल 1962 को विश्वैश्वरैया का निधन हुआ।

अल्पायु में पिता का निधन हो गया जिसके चलते मामा के घर रह कर पढ़ाई कि इसके बाद इंजीनियरिंग अध्ययन के लिए पुणे चले गए जहां उन्होंने सिविल इंजीनियरिंग में विशेषता हासिल की। 1884 में मुंबई सरकार के लोक निर्माण विभाग में सहायक इंजीनियर हुए और 1909 तक यह कार्य किया। इसी दौरान वे बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविंद रानाडे जैसे क्रांतिकारियों के संपर्क में आए जिससे उन्हें विज्ञान से विकास की ओर देश के विकास की नई दृष्टि मिली इसी दृष्टि से उन्होंने नगर विकास और जलपूर्ति के कार्य जैसी योजनाओं को क्रियान्वित किया।

श्रीनिवास रामानुजन आयंगर

चैन्नई से चार सौ किलोमीटर दूर इरोड नामक स्थान पर 22 दिसम्बर 1887 को एक बालक जन्मा जिसने सारी दुनिया को प्रभावित किया और जो विरोधाभासों का पर्याय हुआ, उसका नाम था श्रीनिवास रामानुजन आयंगर। 1897 में आरंभिक शिक्षा प्रथम स्थान से उत्तीर्ण करने वाले रामानुजन 1904 में असफल भी हुए। उनकी गणित में गहरी रुचि थी और पूरा ध्यान-समय इसी पर रहता था अतः औपचारिक शिक्षा बीच में छूट गई।

जब वे अपनी आरंभिक या कहें माध्यमिक शिक्षा ग्रहण कर रहे थे तब उन्होंने 'ए सिनाप्सिस ऑफ एलेमेंट्री रिजल्टस इन प्योर एंड अप्लायड मैथेमेटिक्स' नामक किताब पढ़ी जिसके लेखक जार्ज शूब्रिज कार थे। उस पुस्तक के पाठ्य और शीर्षक में कोई मेल नहीं था। यह पुस्तक बीजगणित, त्रिकोणमिति, केलकुलस और विश्लेषिक ज्यामिति के समीकरणों को साध्यों के साथ संक्षिप्त रूप से निरूपित करती थी और इसमें पांच हजार से भी अधिक समीकरण थे। कार ने गणित के ज्ञान-विज्ञान को दो भागों में संकलित किया था और रानुजन के पास पहला महत्वपूर्ण भाग था। रामानुजन इस पुस्तक से बहुत प्रभावित

रामानुजन अपनी प्रतिभा और काम के आधार पर एक बड़े गणितज्ञ साबित हुए। अन्य गणितज्ञों से उनके पास सवालों को हल करने की अलग विधियां थी। वे उलझे प्रश्नों को सरल सहज करते थे। सामान्यकरण की क्षमता–शक्ति, शैक्षणिक बोध और उनकी परिकल्पना उन्हें महान और विलक्षण गणितज्ञ बनाती है। वे उन युवाओं के लिए प्रेरक पुंज हैं जो कुछ असाधारण करने की क्षमता रखते हैं और विपरीत परिस्थिति में निरुत्साहित हो जाते हैं।

हुए। वे कार के दिए साध्यों की दिशा में आगे बढ़े और जहाँ संकेत थे रामानुजन ने कार की सिनाप्सिस के सभी साध्यों को हल कर दिय। वे सब कुछ छोड़कर गणित की ओर झुक गए। इस बीच उनकी छात्रवृत्ति भी बंद हो गई थी। इस कठिन समय में रामानुजन की सहायता आर.रामचंद्र राव ने की। राव तात्कालीन मेललोर के कलेक्टर थे। यहाँ रानुजन ने मद्रास पोर्ट ट्रस्ट में क्लर्क के रूप में काम किया।

प्रसिद्ध ब्रिटिश गणितज्ञ गॉडफ्रे हार्डी के साथ रामानुजन का नाम लिया जाता है। रामानुजन ने उनके साथ काम किया। हार्डी विशुद्ध गणित के समर्थक थे। रामानुजन ने १६ जनवरी 1913 को हार्डी को एक पत्र लिखा। यह पत्र ग्यारह पेज का था और इसमें अपसरण श्रेणी के प्रमेय थे। इन प्रमेय के हल उन्होंने नहीं लिखे जबकि अपना सुझाव और उन्हें प्रकाशित करने की सहायता मांगी। रामानुजन ने लिखा था कि उनकी साधारण पढ़ाई हुई है और उच्च शिक्षा की उपाधि उनके पास नहीं है तथापि उन्होंने अपसरण श्रेणी में एक विशेष अन्वेषण किया है। यह पत्र हार्डी ने अपने मित्र और सहयोगी गणितज्ञ जॉन एडेनसॉर लिटिलवुड को दिखाया। प्रमेयों की जांच के बाद दोनों ने रामानुजन की महत्ता स्वीकारी।

हार्डी ने रामानुजन को इंग्लैंड लाने के लिए लंदन में भारतीय कार्यालय से संपर्क किया। इस बीच रामनुजन को मद्रास विश्वविद्यालय की ओर से छात्रवृत्ति प्राप्त हो गई थी। वे बिदेश जाने की इच्छा भी नहीं रखते थे किंतु उनके चाहने वालों ने उन्हें राजी कर लिया और 17 मार्च 1914 को वे इंग्लैंड के लिए रवाना हो गए। हार्डी ने रामानुजन की मौलिकता पहचानी और उन्हें कार्य करने का अवसर प्रदान किया। रामानुजन को उनके काम के लिए 1916 में बी.ए. की डिग्री मिली। यह काम 'उच्चतर संयुक्त संख्या' पर केंद्रित था जो कि 'लंदन मैथेमेटिकल सोसाइटी' द्वारा पेपर के रूप में प्रकाशित किया गया।

सन 1918 में वे रॉयल सोसाइटी के फैलो बने। उन्हें 'दीर्घवृत्तीय फलन और संख्या-सिद्धांत में संबंधित उनकी खोज' के लिए चुना गया। इस कार्य के बाद रामानुजन ने गणित के क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य किए जिसमें गणित संख्या सिद्धांत, संख्या पद्धति, अभाज्य संख्या आदि के प्रमेय शामिल थे।

रामानुजन अपनी प्रतिभा और काम के आधार पर एक बड़े गणितज्ञ साबित हुए। अन्य गणितज्ञों से उनके पास सवालों को हल करने की अलग विधियाँ थीं। वे उलझे प्रश्नों को सरल सहज करते थे। सामान्यकरण की क्षमता-शक्ति, शैक्षणिक बोध और उनकी परिकल्पना उन्हें महान और विलक्षण गणितज्ञ बनाती है। वे उन युवाओं के लिए प्रेरक पुंज हैं जो कुछ असाधारण करने की क्षमता रखते हैं और विपरीत परिस्थिति में निरुत्साहित हो जाते हैं। 26 अप्रैल 1920 को रामानुजन का देहावसान हुआ। उनकी स्मृति में मद्रास के एवाई अकादमी में 'रामानुजन संग्रहालय' की स्थापना की गई। रामानुजन का समूचा जीवन अभाव, संघर्ष और सफलता की कहानी है। जो लोग परिस्थितियों की उलाहना देते रहते हैं उन्हें रामानुजन की जीवनी से शिक्षा लेनी चाहिए। हमारे देश के पथम प्रधानमंत्री पं.जवाहरलाल नेहरू ने उनके संदर्भ में कहा था- ''रामानुजन का संक्षिप्त जीवन व मृत्यु भारत की परिस्थितियों के प्रतीक हैं। हमारी लाखों की आबादी में आखिर कितनों को शिक्षा मिल पाती है, कितने लोग भुखमरी की सीमा पर निवास करते हैं।''

सत्येंद्रनाथ बोस

कोलकाता में जन्में सत्येंद्रनाथ बसु ने संसार को उसकी समग्रता और जटिलता में देखने का सूत्र दिया। उनका मानना था कि ब्रह्माण्ड में व्याप्त हर एक पदार्थ अथवा तत्व को उसके रहस्य, आश्चर्य, अस्तित्व, विस्तार, संकुचन, उपस्थिति के साथ ही देखना चाहिये।

एकपक्षीय दर्शन अथवा दृष्टिकोण उस पदार्थ के बारे में कुछ कहने के लिये न्याय नहीं होता। सत्येंद्रनाथ बसु के इन्हीं विचारों के कारण उन्हें वैज्ञानिकों के अनंत नामों की सूची में पृथकता से देखा जाता है। बी.डी. नागचौधरी के शब्दों में, 'शायद सत्येंद्रनाथ बसु का सबसे बड़ा आकर्षण इस बात में निहित था कि उन्होंने जीवन को सम्पूर्णता में देखा। उनके लिए विश्राम और आनंददायक साहचर्य जैसे साधारण सुख मस्तिष्क और बुद्धि के विराट क्षेत्र में व्याप्त रहने वाली सुखानुभूति के अंशमात्र थे। एक अर्थ में यह उनकी सशक्त सीमा भी थी। बसु ने संसार को उसकी सम्पूर्णता में जानने और उसकी जटिलता को समझने की कोशिश की, जिसमें विशेष रूप से विज्ञान तथा वह स्वयं इस प्रयास के छोटे-से अंश-मात्र थे।' भारतीय विज्ञान जगत में सत्येन्द्रनाथ बसु ही एक मात्र ऐसा नाम है जिसे अल्बर्ट आइंस्टीन के साथ जोड़कर देखा जाता है। सांख्यिकी यांत्रिकी और क्वाटंम सांख्यिकी के प्रगति में सत्येन्द्रनाथ बसु का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। वे व्यापक दृष्टि से चीजों को देखते थे। जिंदादिल और उन्मुक्त प्रकृति के होने के कारण बहुआयामितता उनके दृष्टिकोण में थी। ब्रह्माण्ड में व्याप्त हर एक तत्व को उसके रहस्य, आश्चर्य, अस्तित्व, विस्तार, संकुचन और उपस्थिति के साथ संपूर्णता से देखने का आग्रह उनके मूल स्वभाव में था।

1 जनवरी 1894 को कोलकाता में सत्येन्द्रनाथ बसु का जन्म हुआ था। पिता रेल विभाग में काम करते थे और उनका नदिया जिले का बारा जुगलिया गांव था जिसमें बांग्ला भाषा बोली जाती थी। उनका नाम सुरेन्द्रनाथ बसु और माता का नाम अमोदनी बसु था। सत्येंद्रनाथ की छः बहनें थी। सत्येन्द्रनाथ बसु की आरंभिक शिक्षा यहीं पर नार्मल स्कूल में हुई। संयोग से उस समय तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शिक्षा प्राप्त की थी। उनके परिवार को अपने घर में जाकर रहने के कारण बसु का स्कूल भी बदल गया और नर्मल स्कूल के बाद उन्हें न्यू इंडियन स्कूल में भर्ती किया गया, फिर उसके बाद हिन्दी स्कूल में। १९१३ में उन्होंने ने बी एस-सी ऑनर्स की गणित परीक्षा प्रथम श्रेणी में उतीर्ण की तथा एमएस-सी में ९२ प्रतिशत अंक प्राप्त कर विश्वविद्यालय के इतिहास में अभूतपूर्व कीर्तिमान रचा। दोनों परीक्षाओं में दूसरे स्थान पर मेघनाथ साहा थे। इन दोनों ने नवस्थापित यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साइंस के प्रवक्ता के रूप में नौकरी कर ली। अध्यापन के साथ-साथ दोनों युवकों ने शोधकार्य शुरू किया। सैद्धांतिक भौतिकी में बसु का पहला लेख जो साहा के साथ मिलकर लिखा था 'ऑन द इनफ्लुएंस ऑफ द फाइनाइट वाल्यूम ऑफ मॉलक्यूल्स ऑन द इक्वेशन ऑफ स्टेट' प्रकाशित हुआ। यह लेख 1918 में फिलॉसाफिकल मैग्जीन में प्रकाशित हुआ था तथा आगामी वर्ष में 'बुलेटिन ऑफ द कैलकता मैथेमेटिकल सोसायटी' में बसु के दो लेख प्रकाशित हुए। आगे चलकर 1920 में लगातार प्रकाशन हुआ, इसके बात तीन वर्षों तक वे अप्रकाशित रहे। 1921 में ढाका विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद उन्हें वहां भौतिकी विभाग में नौकरी मिल गई। यहाँ उन्होंने प्लांक के विकिरण नियम के परिणाम निकाले। साहा के साथ हुए विचार-विमर्श में एक संतोषजनक व्याख्या सामने आयी जो आइंस्टीन के फोटान समीकरण पर आधारित थी। यह लेख फिलासफिकल मैगजीन में भेजा गया किंतु बैरंग लौटने पर इसे उन्होंने आइंस्टीन के पास भेजा। उनका सोचना था कि आइंस्टीन 'जेइट्स स्क्रिप्ट फुर फिजिक' में उसके प्रकाशन की व्यवस्था कर सकेंगे। बसु आइंस्टीन से पूर्णतः अपरिचित थे और उन्होंने जो मूल्य निर्धारित किये थे उसके अनुसार यह तथ्य सामने आता था- प्लांक के नियम में गुणांक 8V2/C3 की व्युत्पत्ति दर्शाने की कोशिश है। बसु ने इस मत को आधार बनाया कि प्रावस्था समष्टि के प्रारंभिक क्षेत्रों में h3 सारतत्व उपस्थित होता है।

आइंस्टीन ने इस लेख को स्वीकार ही नहीं किया बल्कि उसे विज्ञान के इतिहास का महत्वपूर्ण दस्तावेज कहते हुए जर्मन भाषा में अनुवाद भी किया। सैद्धांतिक भौतिकी के

आइंस्टीन ने इस लेख को स्वीकार ही नहीं किया बल्कि उसे विज्ञान के इतिहास का महत्वपूर्ण दस्तावेज कहते हुए जर्मन भाषा में अनुवाद भी किया। सैद्धांतिक भौतिकी के साथ-साथ प्रायोगिक भौतिकी के अच्छी तरह परिचय करने की चाह बसु के मन में गहरा रही थी। इस इच्छा के चलते रेडियोधर्मिता तकनीक के बारे में मैडम क्यूरी और एक्स किरण स्पेक्ट्रमी के बारे में मौरिस डी ब्रोग्ली से संपर्क किया। मैडम क्यूरी, बसु से प्रभावित हुई किंतु फ्रेंच भाषा के सीखने का भी आग्रह किया जिस पर बसु ने अमल किया।

साथ-साथ प्रायोगिक भौतिकी के अच्छी तरह परिचय करने की चाह बसु के मन में गहरा रही थी। इस इच्छा के चलते रेडियोधर्मिता तकनीक के बारे में मैडम क्यूरी और एक्स किरण स्पेक्ट्रमी के बारे में मौरिस डी ब्रोग्ली से संपर्क किया। मैडम क्यूरी, बसु से प्रभावित हुई किंतु फ्रेंच भाषा के सीखने का भी आग्रह किया जिस पर बसु ने अमल किया। पेरिस में एक साल बिताने के बाद 1925 में बसु बर्लिन के लिए रवाना हुए। यह वह समय था जब आइंस्टीन से उनकी मुलाकात हुई। अलबर्ट आइंस्टीन ने बसु के कामों को सामान्य नियम का रूप दिया। इससे सांख्यिकी क्वांटम यांत्रिकी प्रणाली के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसी को आजकल बसु आइंस्टीन सांख्यिकी कहते हैं। इसके जरिये समाकल चक्रण वाली कणिकाओं की व्याख्या की जाती है जो बहुगुणित होने पर भी पूर्व की क्वांटम अवस्था को प्राप्त करती है। इन कणिकाओं को अब बसु-आइंस्टीन के नाम पर बोसान कहा जाता है।

संगीत में उनकी रुचि का दायरा भारतीय क्लासिकल संगीत, लोकसंगीत और पाश्चात्य संगीत तक है। ललित कलाओं में भी वे गहरी दिलचस्पी रखते थे जिनके लिए वे अलग से समय निकाल लेते थे। इस तरह सत्येंद्रनाथ बसु को पारंपरिक वैज्ञानिकों की तरह नहीं देखा जा सकता। वह किसी अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान की कार्यशाला अथवा सम्मेलन में लुंगी पहनकर जाने में संकोच नहीं करते थे। उनसे कभी भी कोई भी मिल सकता था और विज्ञान के अलावा अन्य विषय में भी बात कर सकता था। वे आत्म प्रचार से बहुत दूर रहते थे

सत्येन्द्रनाथ बसु अपने स्पष्ट नजरिये के चलते विज्ञान के क्षेत्र और जीवन में नवोन्मेष कर पाये। उनका आइंस्टीन से लंबा विमर्श चला जो वर्षों बाद संरक्षित किया गया। उनके लंबे-लंबे पत्राचार आज भी विज्ञान के सूत्रों को समझने में सहायक हैं।

वे जीवन और संसार को जैसा का तैसा स्वीकार करने में झिझकते थे। चीजों को बार-बार देखना और नये सिरे से देखा उनकी आदत में शुमार था। किसी भी तथ्य अथवा तत्व का अनवेषण करते हुए वे उसके मूल तक पहुँते थे। उन्हीं के शब्दों में, ''किसी विचार को तब तक स्वीकार न करो, जब तक तुम स्वयं उसकी संगतता और उस अवधारणा का आधार प्रस्तुत करने वाली तार्किक संरचना से संतुष्ट न हो जाओ। विषय-प्रवीण लोगों की कृतियों का अध्ययन करो। ये वे लोग हैं जिन्होंने विषय में महत्वपूर्ण योगदान किया है। अपेक्षाकृत कम क्षमता वाले लोग क्लिष्ट बिंदुओं पर छलाँग लगा देते हैं।''

सत्येन्द्रनाथ सरलता पर हमेशा बल देते थे। क्लिष्टता को वे अवरोध मानते थे। सहज, स्वाभाविक, शांत रहने पर उनकी पूरी दिनचर्या निर्भर होती थी। उन्हें संगीत में गहरी रुचि थी जिसके चलते यसराज और बांसुरी बजाने में वे प्रवीण थे। संगीत में उनकी रुचि का दायरा भारतीय क्लासिकल संगीत, लोकसंगीत और पाश्चात्य संगीत तक है। ललित कलाओं में भी वे गहरी दिलचस्पी रखते थे जिनके लिए वे अलग से समय निकाल लेते थे। इस तरह सत्येंद्रनाथ बसु को पारंपरिक वैज्ञानिकों की तरह नहीं देखा जा सकता। वह किसी अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान की कार्यशाला अथवा सम्मेलन में लुंगी पहनकर जाने में संकोच नहीं करते थे। उनसे कभी भी कोई भी मिल सकता था और विज्ञान के अलावा अन्य विषय में भी बात कर सकता था। वे आत्म प्रचार से बहुत दूर रहते थे और जिन चीजों से उन्हें लगता था कि प्रचार हो सकता है उन्हें दूर ही रखते थे। वे अपनी रचनाओं को अक्सर बिखरे हुये पन्नों पर रचते थे और उन्हें सुरक्षित रखने की कोशिश भी छोड़ देते थे। एक तरह से यह उदासीनता उनके स्वभाव का हिस्सा थी। इस तरह वे पूर्णतः अनौपचारिक जीवन जीते थे। इसके विपरीत कुछ लोगों का मत था कि सत्येन्द्रनाथ एक ऐसे प्रतिभावान व्यक्ति की प्रस्तुति जो कठोर परिश्रम से बचता था तथा उसने अपनी ऊर्जा कुछ छोटे कामों में बरबाद कर दी।

1 जनवरी 1894 को जन्मे सत्येंद्रनाथ बसु 80 वर्ष की उम्र में 4 फरवरी 1974 को दिवंगत हुए। यह विज्ञान के क्षेत्र में एक भारी क्षति थी। डॉ. एस.डी. चटर्जी ने उनकी मृत्यु पर कहा था, ''सत्येंद्रनाथ बसु की मृत्यु के साथ एक युग का अंत हो गया। यह भारत में विज्ञान की उत्पत्ति करने वाले महान लोगों के युग का अंत भी है।''

suchimishra2015@gmail.com

❑❑❑

आधुनिक भारतीय रसायन विज्ञान के संस्थापक

आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे

नवनीत कुमार गुप्ता

आधुनिक विज्ञान के विकास में जिन भारतीय वैज्ञानिकों का महत्वपूर्ण योगदान है उनमें आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे प्रमुख हैं। आधुनिक भारतीय रसायन विज्ञान के संस्थापक आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे प्रयोगशाला और शिक्षण तक सीमित न होकर मानवीय सरोकार के सभी क्षेत्रों-शिक्षा सुधार, औद्योगिक विकास, रोजगार सृजन, गरीबी उन्मूलन, आर्थिक स्वतंत्रता और देश के राजनीतिक विकास जैसे सभी क्षेत्रों से संबंधित थे। 2 अगस्त 1861 को जैसोर (बाद में उसका नाम खुलना रखा गया) नामक गांव में में प्रफुल्ल चन्द्र रे का जन्म हुआ था। यह स्थान अब बांग्लादेश में है। रे की प्रांरभिक शिक्षा अपने ही गाँव की पाठशाला में शुरू हुई। सन 1870 में उनके पिताजी स्थाई तौर पर कलकत्ता चले गए। सन 1871 में रे और उनके बड़े भाई नलिनीकांत का डेविड हेयर द्वारा स्थापित स्कूल में दाखिला करा दिया गया।

रे अत्यंत अध्ययनशील व्यक्ति थे। उनमें पुस्तकों को पढ़ने की गहरी जिज्ञासा थी। केवल 12 साल की उम्र में ही वे सुबह तीन-चार बजे तक उठ जाया करता था ताकि बिना किसी बाधा के अपने किसी प्रिय लेखक की कृति को पढ़ सकें। इतिहास और जीवन-कथाएं उन्हें उस समय अधिक आकर्षित करती थी। सर डब्ल्यू.एम. जोन्स, जॉन लेडेन और उनकी भाषाई उपलब्धियों तथा फ्रैंकलिन के जीवन ने रे को काफी प्रभावित किया। रे को बेंजमिन फ्रैंकलिन बचपन से ही प्रिय थे। इस महान वैज्ञानिक का जीवन रे के लिए हमेशा अध्ययन का विषय रहा। 1874 में रे अपनी नियमित पढ़ाई शुरू की। उन्होंने ब्रह्मसमाज के संस्थापक केशवचंद्र सेन के अलबर्ट स्कूल में प्रवेश किया। सन् 1879 में उन्होंने उसी स्कूल से दसवीं कक्षा की परीक्षा उतीर्ण की। उसके बाद उन्होंने ईश्वरचंद्र विद्यासागर द्वारा स्थापित मेट्रापांलिटन कॉलेज (अब विद्यासागर कॉलेज) में 11वीं कक्षा में दाखिला लिया।

तत्पश्चात रे ने गिलकास्इट स्कॉलर के रूप में इंग्लैड़ में एडिनबरा विश्वविद्यालय में बी.एस-सी. की कक्षा में दाखिला लिया। वहाँ अलेक्जेंडर क्रुम ब्राऊनर (सन 1838-1922) उनके शिक्षक थे।

इंग्लैड में छह साल बिताने के बाद रे सन 1888 में भारत लौट आए। उनका उददे्श्य रसायनशास्त्र में अपने शोधकार्यों को जारी रखना, तथा अध्यापन अथवा प्रायोगिक कार्यों के माध्यम से अन्य लोगों को भी अपनी अर्जित जानकारी से लाभन्वित करना था। लेकिन उन दिनों भारतीय रसायनशास्त्र अपनी शैशव अवस्था में था। उन दिनों किसी रसायनज्ञ के लिए रसायनशास्त्र संभावानओं से भरा पेशा नहीं था। इसके अलावा किसी भारतीय के लिए शिक्षा-सेवा में स्थान पाना अत्यधिक कठिन था। इंग्लैड़ में होने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं के दरवाजे केवल ब्रिटेनवासियों और आयरिश लोगों के लिए खुले हुए थे। ये प्रावधान केवल शिक्षा-सेवा पर लागू होते थे। जगदीश चंद्र बसु कैम्ब्रिज और लंदन में शानदार कैरियर पाने के बाद रे से तीन साल पहले ही लौट आए थे, पर अपनी ही जन्मभूमि में उच्च सेवा में प्रवेश पाने के लिए उन्हें अकथनीय कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। उन्हें दहलीज लांघने की इजाजत केवल इस शर्त पर मिली कि वे पूरे वेतन पर अपना दावा छोड़ देंगे और केवल दो-तिहाई वेतन लेंगे। इस देश के युवकों को उच्च सेवा में बहुत कम अवसरों पर स्थान मिल पाता था, और उसके सामने उपस्थित अंधकारपूर्ण स्थिति और भी प्रत्यक्ष होकर सामने आती थी। नियमतः निर्धारित योग्यता वाले भारतीय भी सहायक सेवा में ही प्रवेश कर सकते थे।

इन परिस्थितियों में रे अपने उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं कर सकते थे। वह इंग्लैड से अपने शिक्षक क्रुम ब्राउन का सिफारिशी पत्र लाए थे। चार्ल्स बर्नाड ने भी रे को कोई न कोई नौकरी दिलाने का आश्वासन दिया था। बर्नाड, इंडियन कौन्सिल के सदस्य थे। उन्होंने कोलकाता के प्रमुख कॉलेज यानी प्रेसीडेन्सी कॉलेज के प्रिसिपल बी.एच. टावनी से रे की मुलाकात भी करवाई थी। टावनी, सर बर्नाड के

संबधी भी थे, और उन दिनों अपनी छुट्टियाँ बिताने के लिए लंदन गए हुए थे। उन्होंने रे की सिफारिश करते हुए जनशिक्षा-निदेशक सर अल्फ्रेड क्राफट को लिखा था कि 'मुझे विश्वास है कि यदि रे को स्थान दिया गया तो वह विभाग के लिए एक महत्वपूर्ण धरोहर साबित होंगे।' कोलकता लौटने के बाद रे, अल्फ्रेड क्राफट, टावनी और सर अलेक्जेंडर पेडलर से मिले। उन्होंने बंगाल के तत्कालीन गर्वनर स्ट्यूअर्ट बेली से भी मिलने की कोशिश की और अंततः उन्हें प्रांतीय सेवा के अंतर्गत प्रेसीडेंसी कॉलेज में 250 रूपये महीने के वेतन पर रसायनशास्त्र का सहायक प्रोफेसर नियुक्त कर लिया गया। यह महत्वपूर्ण बात है कि कि जगदीश चंद्र बसु ने प्रांतीय सेवा की नौकरी करने से इंकार कर दिया था, जबकि रे ने जुलाई 1889 में यह पद स्वीकार कर लिया था। 'रे सन् 1916 में प्रेसीडेंसी कॉलेज से रसायन-शास्त्र के प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष के पद से रिटायर हुए। वहाँ से सेवानिवृत होने के बाद रे यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ सांईस में नियुक्त कर लिए गए। सन् 1936 में रे यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साइंस से सेवानिवृत हो गए, पर वे रसायनशास्त्र के सवेतन अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर के रूप में उससे जीवन के अंत तक जुड़े रहे।

वो अपने देश की वास्तविकता से परिचित थे और स्वतंत्रता आंदोलन से गहरा लगाव महसूस करते थे। रे में देशभक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी थी। रे की देशभक्ति उनके इस कथन से झलकती है कि 'विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता है, पर स्वराज नहीं।' वह स्वतंत्रता-आंदोलन से कई प्रकार से जुड़े थे। सरकारी कर्मचारी होने के कारण वह राजनीति में सीधे तौर पर भाग नहीं ले सकते थे, लेकिन उन्होंने असहयोग आंदोलन के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों के लिए खुले मन से आर्थिक सहायता प्रदान की। वे गोपालकृष्ण गोखले और महात्मा गांधी के गहरे मित्र थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के शीर्ष नेताओं से उनका संपर्क निंरतर बना रहता था। महात्मा गांधी को पहली बार कलकत्ता लाने के लिए रे ने ही पहल की थी। अपर सर्किल रोड़ के आवास नंबर 91 पर मेरे फुर्सत के क्षणों में गोखले अक्सर मुझसे मिलने आया करते थे। बंगाल केमिकल और फार्मास्युटिकल का ऑफिस भी उन दिनों वहीं पर स्थित था, लेकिन तब वह शैशवावस्था में था। गोखले जी मुझे 'एकांतवासी वैज्ञानिक' कहकर काफी आंनदित हुआ करते थे। गोखले उम्र में मुझसे कई साल छोटे थे, और स्वाभाविक तौर पर अपने पूरबिया स्वभाव के अनुरूप मैं उनसे उन्मुक्त व्यवहार किया करता था।' मुख्य घटना जिसने रे को बदल दिया - वो था 1905 में बंगाल का बंटवारा। इस घटना से बंगालियों में उठा रोष टेगोर की अमार शोनार बांग्ला में देखा जा सकता है। रे के लिए ये अंतिम संकेत था की भारत अंग्रेजों की गुलामी में उन्नति नहीं कर सकता। 1911 में कई विरोधों के बाद बंगाल को फिर से एक कर दिया गया। लेकिन रे के लिए राष्ट्रीय स्थिति नहीं बदली। उन्होंने चरखा और खादी जैसे प्राचीन यंत्र के प्रति अपनी शुरूआती वैज्ञानिक घृणा के बावजूद अपना लिया। थोड़ी जाँच के बाद रे को चरखा घुमाने में छिपे प्रतीक का आभास हुआ और चरखे को अपना लिया। वो प्रतिदिन कम से कम एक घंटा चरखा चलाते थे। रे को साहित्य से गहरा लगाव था, खासकर शेक्सपीयर और टेगोर के साहित्य। सिर्फ यही नहीं, उन्होंने शेक्सपीयर पर 19 धारावाहिक लिखे जो बाद में 'शेक्सपीयर पहेली' के नाम से छपे। वे प्रसिद्ध शेक्सपीयर विद्वान ऐ. सी. ब्रैडली के संपर्क में थे। 1932 में उन्होंने अपनी आत्मकथा, 'एक बंगाली केमिस्ट की आत्मकथा' के नाम से लिखी।

रे ने 1892 में 'बंगाल केमिकल एंड फार्मास्यूटिकल वर्क्स' की शुरुआत की। उनका पहला संघर्ष ये था कि ऐसा रास्ता खोजा जाए जिससे सस्ते और प्रभावी उत्पाद बनाए जा सकें। वो चाहते थे कि प्राचीन भारत का ज्ञान और पश्चिम के आधुनिक औद्योगिक तरीकों को मिला दिया जाए। आज हम जिस स्टार्ट अप की बात कर रहे हैं असल में वैसे ही विचार को सौ वर्ष से भी पहले रे अमूर्तरूप दे चुके थे।

रे विज्ञान में प्रयोगों पर विशेष जोर देते थे उनके कुछ प्रयोगों के बड़े दिलचस्प प्रतिकूल प्रभाव हुए। उदाहरण के लिए, उन्होंने जानवरों की हड्डियों से कॉस्टिक सोडा बनाने की कोशिश की। रे ने खूब सारी हड्डियाँ जमा करके अपनी छत पर रखी थी। उस साल खूब बारिश हुई और हड्डियाँ सड़ने लगी। उनके पड़ोसियों को लगा कि रे ने अपने घर में इन्सान की हड्डियाँ रखी हुई है। इसलिए हड़बड़ी में रे ने सारी हड्डियाँ जला दी - और उस राख को कॉस्टिक सोडा बनाने के लिए प्रयोग में लाया गया और इस तरह बंगाल केमिकल्स में उत्पादन शुरू हुआ। ग्राहकों को अपने उत्पाद के बारे में विश्वास दिलाने के शुरूआती संघर्ष के बावजूद कंपनी सफल रही। जल्द ही रे को अपने घर से निकल कर बड़े परिसर में इसे स्थानांतरित करना पड़ा। 1905 में उनकी कंपनी ने माणिकतला में 3 एकड़ का प्लाट ख़रीदा और वहाँ से उत्पादन शुरू किया। बहुत से भारतीयों को नौकरी देने की वजह से रे को बेहद संतोष मिला। बंगाल केमिकल्स आज भी दवायें तथा रसायन बना रही है। इसकी फैक्ट्रियाँ बंगाल के माणिकतला और पानीहाटी में तथा कानपुर और मुंबई में स्थित है। सबसे महत्वपूर्ण बात ये है कि

भारत में पहली बार उद्योग और विज्ञान का समावेश करने की पहल हुई थी।

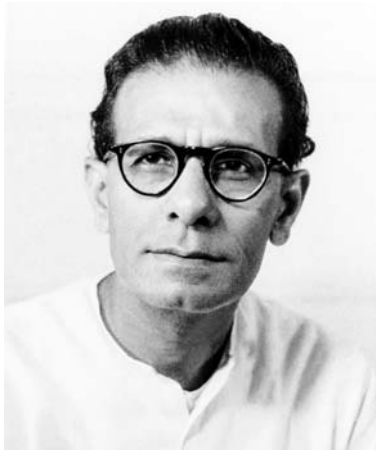

वो 1895 का साल था। रे ने अपनी प्रयोगशाला में कुछ सामान जुटाया-ठंडा, तरल नाइट्रिक एसिड और मरक्युरी। उनके अनुभवों के अनुसार इस सामग्री से मरक्युरस नाइट्रेट बन जाना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता था। जब रे ने सामग्री मिलाई तो उन्होंने एक अजीब सा पीला क्रिस्टलीय पदार्थ देखा। ये तो कुछ नया ही था लेकिन ये क्या हो सकता था। पहले रे ने सोचा की ये लवण (साल्ट) है। लेकिन शक्तिशाली अम्लीय घोल में लवण का बनना संभव नहीं था। इसलिए उन्होंने कई परिक्षण किए, उन्हें सबसे पहले पता चला की ये मरक्युरस कम्पाउंड है और बाद में उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि ये नाइट्राइट है। उन्होंने संयोग से एक नया कम्पाउंड मरक्युरस नाइट्राइट ढूंढ़ लिया था। ये केमिस्ट्री उस समय के सहज ज्ञान के परे थी। अहम सवाल यह था कि नाइट्रिक एसिड से नाइट्रेट आयन तो मिलता है लेकिन नाट्राईट कहाँ से आया? जल्द ही उन्होंने इसका हल भी ढूंढ़ लिया - ये मरक्युरी द्वारा नाइट्रिक एसिड में बदलने से बनता है।

उन्होंने सबसे पहले अपनी इस खोज को बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में छपवाया। इस खोज पर प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिका, नेचर की नज़र पड़ी। मरक्युरस नाट्राईट ने रे को पूरी दुनिया में शोहरत दिलाई और उनके ''जीवन का नया अध्याय'' शुरू हो गया। लेकिन इसमें इतनी बड़ी बात क्या थी? बड़ी बात थी कि उस समय नाट्राईट की केमिस्ट्री के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध थी। लेकिन रे का काम मरक्युरस नाइट्राईट पर आकर खत्म नहीं हुआ। उन्होंने दूसरी धातुओं और ऑरगैनिक कैटियनस के विभिन्न नाइट्राईट के गुणों का अध्ययन किया। उन्होंने खोज निकला कि अमोनियम नाइट्राईट का संश्लेषण कैसे किया जाता है। रे के बहुमूल्य योगदान के कारण ही नाईट्राईट और उससे संबंधित विभिन्न प्रकारों जैसे हाइपो-नाइट्राईट की केमेस्ट्री का विकास हुआ। उन्होंने जैविक सल्फ़र कम्पाउंड की बड़ी मात्रा में संश्लेषण के साथ ही भारी संक्रामक धातु आयनों, इरीडियम, प्लैटिनम और सोने की समन्वय केमिस्ट्री पर काफी काम किया। रे के खोज का विभिन्न कार्यों में प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, समन्वय योगिकों का प्रयोग फोटोग्राफी, सोने की परत चढ़ाने और सोना और चाँदी निकालने के लिए किया जाता है। अमोनियम नाइट्रेट का प्रयोग तकनाशी (रोडेंटीसाइड), सूक्ष्मजीव नाशी (माइक्रोबाइओसाइड) और कृषि संबंधी कीटनाशक में किया जाता है। जैविक सल्फ़र कंपाउंड्स का प्रयोग विभिन्न फार्मास्यूटिकल घटकों, कीटनाशकों, विलायक (सोल्वेंट्स) बनाने में और रबर और रेयन के उत्पाद में किया जाता है। रे ने इन विषयों में 100 से अधिक पेपर्स को प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपवाया और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। मरक्युरस नाट्राईट की ये खोज एक तरह से भारत में केमिस्ट्री के अध्ययन के लिए उत्प्रेरक (कैटालिस्ट) थी। रे को वाकई भारतीय केमिस्ट्री का पिता मानना सही है।

रे के प्रसिद्ध कार्य, ''हिन्दू केमिस्ट्री का इतिहास'' का पहला संस्करण 1902 में छपा और दूसरा संस्करण 1908 में आया। इन संस्करणों में कई स्वदेशी तरीकों का विस्तार से वर्णन किया गया था जिससे ये साबित होता है भारत में केमिस्ट्री और मेडिसिन बेहद उन्नत थी। प्रफुल्ल चंद्र रे स्कूलों और कॉलेजों में शिक्षण-भाषा के रूप में मातृभाषा के प्रयोग के प्रबल समर्थक थे। बांग्ला भाषा को विकसित करने और समृद्ध करने में उनके योगदान को मान्यता देने के लिए उन्हें बंगीय साहित्य परिषद (सन 1931-1934) का अध्यक्ष चुना गया। वे हिंदू समाज की जाति-व्यवस्था के प्रबल आलोचक थे। वे कई सामाजिक मुद्दों जैसे छुआछूत, बाल विवाह और दहेज़ प्रथा के सख्त ख़िलाफ थे। 1922 में बंगाल में भयानक बाढ़ आई लेकिन सरकार ने इससे निपटने के लिए कुछ खास नहीं किया। ऐसे में प्रफुल्ल चंद्र रे और उनका साथ देने के लिए सुभाष चन्द्र बोस और मेघनाद साहा आगे आए, जो कभी उनके छात्र थे। एक बार एक समाज सेवी किसी अनाथालय के लिए उनसे दान मांगने आया। रे ने अपनी पासबुक देखी - उनके खाते में 3500 रुपए थे। प्रफुल्ल चंद्र रे ने तुरंत ही 3000 रुपयों का चेक लिख दिया। बंगाल केमिकल कम्पनी में रे के कई लाखों रुपयों के शेयर्स थे। उन्होंने सब दान दे दिए। इन शेयर्स से होने वाले मुनाफे को गरीब विधवाओं और अनाथों के हित और खादी के उत्पाद में लगाया जाता था। 1921 में प्रफुल्ल चन्द्र रे 60 बरस के हो गए - उन्होंने अपने बचे हुए कार्यकाल का सारा वेतन 2 रिसर्च फेलोशिप बनाने और केमिस्ट्री विभाग को दान में दे दिया। 20 साल के कार्यकाल के बाद, 1936 में रे विश्वविद्यालय विज्ञान कॉलेज से सेवानिवृत्त हुए तब वे 75 बरस के थे। उन्होंने सदा एक नियमित जीवन जिया - वो रोज़ सैर पर निकल जाते थे और खुद पर बहुत कम खर्च करते थे। भारत में रसायन विज्ञान को एक नयी दिशा देने वाले महान वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे की मृत्यु 1944 में 83 साल कि उम्र में हुई। (संपादित अंश)

vigyanprasar123@gmail.com

❑❑❑

विज्ञान इस माह

पृथ्वी की जैविक सुपर मार्केट

इरफान ह्यूमन

आर्द्रभूमि पृथ्वी का वह भाग होता है जो नम, दलदला या पानी से संतृप्त हो। गौरतलब है कि ईरान के रामसर अभिसमय के अनुसार आर्द्रभूमि उस स्थान को माना गया, जहां वर्ष के आठ महीने पानी भरा रहता हो। ये क्षेत्र तालाब, नदी या झील के किनारे का हिस्सा हो सकता है जहां भरपूर नमी पाई जाती है। 2 फ़रवरी को सम्पूर्ण विश्व में विश्व आर्द्रभूमि दिवस (world Wetlands Day) मनाया जाता है। दुनिया की आर्द्रभूमि के संरक्षण को लेकर इस दिन वर्ष 1971 में विश्व के विभिन्न देशों ने ईरान के रामसर में एक संधि पर हस्ताक्षर किये थे। वर्तमान में सम्मेलन के 158 करार दल हैं, कुल 161 मिलियन हेक्टेयर में फैली 1758 आर्द्रभूमि क्षेत्र है, जो रामसर की अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमि सूची में शामिल करने के लिए नामित है। रामसर सम्मेलन किसी विशेष पारिस्थितिकी तंत्र से सम्बंधित अकेली वैश्विक वातावरण संधि है। नम भूमियों के महत्वपूर्ण कार्यों, मूल्यों और सेवाओं की जानकारी के आभाव में इनके तेजी से नष्ट होने की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित करने के लिए रामसर अभिसमय तैयार किया गया था। सम्मेलन से जुड़ने वाली सरकारें अपनी आर्द्रभूमि की हानि और उसकी गिरावट के इतिहास को बदलने में मदद के लिए प्रतिबद्धता बनाने की इच्छा व्यक्त की गई। इसके अतिरिक्त कई आर्द्रभूमि दो या दो से अधिक देशों की सीमाओं पर होने, या जो एक से अधिक देशों की नदी घाटियों के भाग होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय प्रणालियों के तहत आते हैं। इनके तथा और अन्य आर्द्रभूमियों की बेहतर स्थिति नदियों, झरनों, झीलों या भूमिगत जल प्रवाह के स्तर का सीमा क्षेत्रीय आपूर्ति जल की गुणवत्ता और मात्रा पर निर्भर है। इसकी आवश्यकता अंतर्राष्ट्रीय चर्चा और आपसी लाभ के संदर्भ में सहयोग की रुपरेखा बनाने के लिए है। आर्द्रभूमि को जैविक सुपर मार्केट भी कहा जाता है जो हमारे पर्यावरण, पारिस्थितिकी और पृथ्वी की जैवविविधता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और जन्तुओं ओर वनस्पति को उपयुक्त वातावरण और आवास उपलब्ध कराती है। आर्द्रभमि क्षेत्र भू-जल स्तर को बढ़ाने और उसके भण्डारण के साथ जल को अपने में समेट कर बाढ़ की विभिषिका के ख़तरे को भी कम करते हैं।

वर्तमान में भारत में 26 रामसर आर्द्रभूमियां अधिसूचित हैं और सरकार ने शुष्क भूमि को भी रामसर आर्द्रभूमियों के अन्तर्गत सम्मिलित किया है। वर्ष 2011 में सरकार ने आर्द्रभूमि संरक्षण और प्रबंधन अधिनियम 2010 की अधिसूचना जारी की जिसके अन्तर्गत इन्हें छह वर्गों में विभक्त किया गया है, जो हैं-अंतर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमियां, राष्ट्रीय उद्यान और गरान जैसी पर्यावरणीय आर्द्रभूमियां, यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में सम्मिलित आर्द्रभूमियां, समुद्रतल से 25000 मीटर से कम ऊंचाई की ऐसी आर्द्रभूमियां जो 500 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल घेरती हों, समुद्रतल से 25000 मीटर से अधिक ऊंचाई किन्तु पांच हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रफल और ऐसे आर्द्रभूमियां जिनकी पहचान प्राधिकरण ने की हो। इस अधिनियम के तहत अब तक 38 नई आर्द्रभूमियां पहचानी गई हैं। रामसर अभिसमय के अन्तर्गत वैश्विक स्तर पर वर्तमान में कुल 1929 से अधिक आर्द्रभूमियाँ हैं।

आर्द्रभूमियाँ कई तरह से हमारे और हमारे पर्यावरण के लिए महत्वपूर्ण हैं। आर्द्रभूमियाँ पानी के संरक्षण का एक प्रमुख स्रोत है। ये आर्द्रभूमियाँ बाढ़ नियंत्रण के महत्त्वपूर्ण होती है। आर्द्रभूमि तलछट का काम करती है जिससे बाढ़ में कमी आती है। आर्द्रभूमि पानी को सहेजे रखती है बाढ़ के दौरान आर्द्रभूमियाँ पानी का स्तर कम बनाए रखने में सहायक होती हैं। समुद्री तटरेखा को स्थिर बनाए रखने में भी आर्द्रभूमियाँ का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ये समुद्र द्वारा होने वाले कटाव से तटबन्ध की रक्षा करती हैं। आर्द्रभूमियाँ समुद्री तूफान और आँधी के प्रभाव को सहन करने की क्षमता रखती हैं। आर्द्रभूमियाँ जैव विविधता संरक्षण के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और इनकी पारिस्थितिकी सुरक्षा में इन आर्द्रभूमियों की अहम भूमिका है। आर्द्रभूमियाँ बहुत से जीव-जन्तुओं का आश्रय प्रदान करती हैं। आर्द्रभूमियाँ अपने आस-पास बसी मानव बस्तियों के लिये जलावन लकड़ी, फल, वनस्पतियाँ, पौष्टिक चारा और जड़ी-बूटियों की स्रोत होती हैं। आज बहुत सी आर्द्रभूमियों पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं और हमारे देश की खाद्यान्नों की कमी और जलवायु परिवर्तन के बढ़ते खतरों के

बीच हमें आर्द्रभूमियों को बचाने की जरूरत है। आर्द्रभूमियाँ प्रदूषण के कारण संकट में हैं। तेजी से बढ़ते कंक्रीट के जंगल, उद्योग, शहरीकरण के लिये जलग्रहण क्षेत्र से छेड़खानी, हजारों टन रेत का जमाव और कृषि रसायनों के जहरीले पानी का आ मिलना आर्द्रभूमियों की बर्बादी का कारण बनता जा रहा है।

अब नैनो कार्बन का ख़तरा

4 फ़रवरी को विश्व कैंसर दिवस (World Cancer Day) मनाया जाता है। कैंसर सभी उम्र के लोगों को, यहाँ तक कि भ्रूण को भी प्रभावित कर सकता है। वास्तव में कैंसर रोगों का एक वर्ग है जिसमें कोशिकाओं का एक समूह अनियंत्रित वृद्धि, दूसरे शब्दों में सामान्य सीमा से अधिक विभाजन कर आस-पास के ऊतकों का विनाश करके इस प्रक्रिया को लसिका या रक्त के माध्यम से शरीर के अन्य भागों में फैला देता है। अधिकांश कैंसर एक गाँठ या अबुर्द (Tumor) बनाते हैं, लेकिन रक्त कैंसर (Leukemia) में गाँठ नहीं बनती है।

लगभग सभी कैसर रूपांतरित कोशिकाओं के आनुवंशिक पदार्थ में असामान्यताओं के कारण होते हैं, जो कार्सिनोजन या कैंसरजन के कारण हो सकती हैं जैसे तम्बाकू धूम्रपान, विकिरण, रसायन आदि कारक। कैंसर को उत्पन्न करने वाली अन्य आनुवंशिक असामान्यताएं कभी-कभी डीएनए प्रतिकृति में त्रुटि के कारण हो सकती हैं या आनुवंशिक रूप से प्राप्त हो सकती हैं। कैंसर में वृद्धि करने वाले अर्बुदजीन प्रारूपिक रूप से कैंसर की कोशिकाओं में सक्रिय होते हैं, उन कोशिकाओं को सामान्य से अधिक वृद्धि और विभाजन जैसे नए गुण दे सकते हैं।

कैंसर दुनिया के कई भागों में एक प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है। कैंसर की रोकथाम को, कैंसर की घटनाओं में कमी लाने के लिए सक्रिय उपायों के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसके लिए कैंसरजन (कैंसर पैदा करने वाले कारकों) से बचना या उनके उपापचय को परिवर्तित करना, ऐसी जीवन शैली या आहार को अपनाना जो कैंसर पैदा करने वाले कारकों को संशोधित करे। हर साल पूरी दुनिया में कम से कम 200,000 लोगों की मृत्यु अपने कार्यस्थल से संबंधित कैंसर के कारण होती है। कई मिलियन श्रमिक ऐसे हैं जिनमें अपने कार्य स्थल पर निरंतर एस्बेस्टस फाइबर और तम्बाकू के धुएँ के संपर्क में रहने के कारण फुफ्फुस कैंसर और मिजोथेलीओमा की तरह के कैंसर के विकसित होने का ख़तरा होता है या निरंतर बेंजीन के संपर्क में रहने के कारण रक्त कैंसर (ल्यूकेमिया) का ख़तरा रहता है। वर्तमान में, व्यवसायिक जोखिम कारकों की वजह से होने वाले कैंसर के कारण होने वाली मौतें अधिकांशतया विकसित दुनिया में होती हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में हर साल लगभग 20,000 कैंसर मौतें और कैंसर के 40,000 नए मामले व्यवसाय से सम्बंधित होते हैं, तुलना करने पर विकसित देशों की स्थिति बहुत ही भयावह हो सकती है।

काउंसिल ऑफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च (CSIR) की एक रिपोर्ट में सीएनजी से चलने वाली गाड़ियों के धुंए से कैंसर होने का ख़तरा बताया गया है। रिपोर्ट के मुताबिक सीएनजी गाड़ियों से निकने वाले धुएं में नैनो कार्बन का पता चला। जो मानव शरीर के लिए बहुत अधिक ख़तरनाक होते हैं। ये कण वातावरण में चारों ओर घूम रहे हैं और सांस के साथ फेफड़ों में जा रहे हैं, जो रक्त में प्रवेश कर शरीर में कैंसर पैदा कर सकते हैं। रिपोर्ट के बाद ये धारणा बदल गई है कि सीएनजी एक साफ ईंधन है, डीजल और पेट्रोल की बजाय सीएनजी से चलने वाले वाहन प्रत्यक्ष धुएं का उत्सर्जन नहीं करते, जिससे पर्यावरण और हमारी सेहत को नुकसान नहीं पहुंचता। लेकिन शोध के बाद ये तय है कि सीएनजी गाड़ियों से भले ही धुंआ निकलते ना दिखे लेकिन उससे निकलने वाली नैनो कार्बन गैस की वजह से पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है जिसकी वजह से कैंसर का ख़तरा बढ़ सकता है। कुछ वर्ष पहले तक कैंसर एक जानलेवा बीमारी समझी जाती थी लेकिन अब ऐसा नहीं है। मेडिकल साइंस ने इतनी प्रगति कर ली है की अगर कैंसर की शुरूआती चरण में पहचान कर ली जाए तो उस पर काफ़ी प्रतिशत मामलों में काबू पाया जा सकता है एवं मरीज की जान बचाई जा सकती है।

विकास के सिद्धांत का मूल

12 फ़रवरी को डारविन दिवस (Darwin Day) मनाया जाता है। दुनिया भर में इस दिवस को चार्ल्स डार्विन के जन्मदिन (12 फरवरी, 1809) के रूप में मनाया जाता है, जिसका उद्देश्य विज्ञान में डार्विन के योगदान स्पष्ट करने और सामान्य तौर पर विज्ञान को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। चार्ल्स डार्विन ने क्रमविकास (Evolution) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उनका शोध आंशिक रूप से वर्ष 1831 से 1836 में एचएमएस बीगल पर उनकी समुद्र यात्रा के संग्रहों पर आधारित था। देखा जाए तो आज जो हम सजीव चीजें देखते हैं, डार्विन की उत्पत्ति तथा विविधता को समझने के लिए उनका विकास का सिद्धान्त सर्वश्रेष्ठ माध्यम बन चुका है। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक जीवजाति का उद्भव (Origin of Species) प्रजातियों की उत्पत्ति सामान्य पाठकों पर केंद्रित थी। डार्विन के विकास के सिद्धान्त से यह समझने में मदद मिलती है कि किस प्रकार विभिन्न प्रजातियां एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं।

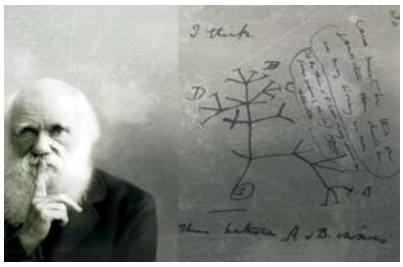

स्वस्थतम की उत्तरजीविता (survival of fittest) एक वाक्यांश है जिसका इस्तेमाल आम तौर पर इसके प्रथम दो प्रस्तावकों ब्रिटिश बहुश्रुत दार्शनिक हरबर्ट स्पेंसर (जिन्होंने इस शब्द को गढ़ा था) और चार्ल्स डार्विन, द्वारा इस्तेमाल किए गए सन्दर्भ के अलावा अन्य सन्दर्भों में भी किया जाता है। हरबर्ट स्पेंसर ने सबसे पहले इस वाक्यांश का इस्तेमाल चार्ल्स डार्विन की ''ऑन द ऑरिजिन ऑफ स्पीशीज़'' को पढ़ने के बाद अपनी प्रिंसिपल्स आफ बायोलॉजी (1864) में किया था, जिसमें उन्होंने अपने आर्थिक सिद्धांतों और डार्विन के जैविक सिद्धांतों के बीच समानताएं व्यक्त करते हुए लिखा कि यह स्वस्थतम की उत्तरजीविता है।

डार्विन ने स्पेंसर के नए वाक्यांश ''स्वस्थतम की उत्तरजीविता'' का इस्तेमाल सबसे पहले वर्ष 1869 में प्रकाशित किए गए ''ऑन द ऑरिजिन ऑफ स्पीशीज़'' के पांचवें संस्करण में ''प्राकृतिक चयन'' के एक समानार्थी शब्द के रूप में किया था। डार्विन ने इसका मतलब ''तत्काल, स्थानीय पर्यावरण के लिए बेहतर अनुकूलित'' के लिए एक रूपक के रूप में किया था। आधुनिक जीवविज्ञानी आम तौर पर वाक्यांश ''स्वस्थतम की उत्तरजीविता'' का इस्तेमाल नहीं करते हैं क्योंकि यह शब्द प्राकृतिक चयन (Natural selection) का सटीक अर्थ नहीं देता है। जिस प्रक्रिया द्वारा किसी जनसंख्या में कोई जैविक गुण कम या अधिक हो जाता है उसे प्राकृतिक वरण या प्राकृतिक चयन कहते हैं। यह एक धीमी गति से क्रमशः होने वाली अनयादृच्छिक (नॉन-रैण्डम) प्रक्रिया है। प्राकृतिक वरण ही क्रम-विकास (Evolution) की प्रमुख कार्यविधि है। जिसकी नींव चार्ल्स डार्विन ने रखी थी। प्राकृतिक वरण तंत्र विशेष रूप से इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक प्रजाति को पर्यावरण के लिए अनुकूल बनने में सहायता करता है। प्राकृतिक चयन का सिद्धांत इसकी व्याख्या कर सकता है कि पर्यावरण किस प्रकार प्रजातियों और जनसंख्या के विकास को प्रभावित करता है ताकि वो सबसे उपयुक्त लक्षणों का चयन कर सकें। यही विकास के सिद्धांत का मूलभूत पहलू है। प्राकृतिक चयन का अर्थ उन गुणों से है जो किसी प्रजाति को बचे रहने और प्रजनन मे सहायता करते हैं और इसकी आवृत्ति पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती रहती है।

रेडियो की वाणी

13 फ़रवरी को विश्व रेडियो दिवस (World Radio Day) के रूप में मनाया जाता है। यह दिवस रेडियो के अनूठी शक्ति को याद रखने और इसे दुनिया के हर कोने लोकप्रिय बनाने के लिए मूल रूप से स्पेन ऑफ किंगडम द्वारा प्रस्तावित होने के बाद यह यूनेस्को के ३६ वें जनरल सम्मेलन में 3 नवंबर, 2011 को घोषित किया गया था। वर्ष 2012 में विश्व रेडियो दिवस के पहले संस्करण के सम्मान में, लाइफलाइन एनर्जी, फ्रंटलाइन एसएमएस, एसओएएस रेडियो और एम्पावरहाउस ने लंदन में एक सेमिनार का आयोजन किया। इतालडियो और इंजीनियरिंग और दूरसंचार संकाय द्वारा इस आयोजन का आयोजन किया गया था। २० वीं शताब्दी के शुरुआती वर्षों में मार्कोनी द्वारा निर्मित इंटरकांटिनेंटल रेडियो स्टेशन की मेजबानी करने वाले पिसा को पहली इटैलियन शहर के रूप में चुना गया था।

रेडियो हमारी जिंदगी का अहम अंग है। आवाज की दुनिया में रेडिया नायक बनकर उभरा और आज भी अपनी भूमिका को बरकरार रखे हुए है। संचार के माध्यम भले ही बदले हों लेकिन रेडियो ने अपनी प्रासंगिकता को बनाए रखा है। दुनिया भर में 13 फरवरी को रेडियो दिवस मनाया जाएगा। यह एक ऐसा अवसर है कि हम रेडियो के द्वारा हमारे जीवन में लाए गए बदलावों को याद करें। सामाजिक परिवर्तनों में भी रेडिया अहम रहा है। कई देशों में रेडियों बदलाव के पड़ावों का साक्षी भी रहा है। वर्ष 1923 में रेडियो क्लब ऑफ बॉम्बे (बॉम्बे की मंडली) से प्रसारण शुरू हुआ था। ऑल इंडिया रेडियो और फिर आकाशवाणी के ज़रिये रेडियो ने देश में अपनी महत्वपूर्ण जगह बनाई है।

रेडियो के विज्ञान पर दृष्टि डालें तो वैज्ञानिक मारकोनी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने वर्ष 1894 में पहला पूर्ण टेलीग्राफी सिस्टम बनाया, जिसे रेडियो कहा गया। रेडिया सेना एवं नौसेना में भी सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया गया। रेडियो के इतिहास पर नज़र डालने पर पता चलता है कि रेडियो में विज्ञापन की शुरुआत वर्ष 1923 में हुई। इसके बाद ब्रिटेन में बीबीसी और अमेरीका में सीबीएस और एनबीसी जैसे सरकारी रेडियो स्टेशनों की शुरुआत हुई। अमेरीका के पिट्सबर्ग में वर्ष 1920 में पहला रेडियो स्टेशन (केंद्र) खोला गया। इसी वर्ष अमेरीका में राष्ट्रपति पद के लिए हुए चुनाव के नतीजे इस स्टेशन (केंद्र) से उद्घाटन कार्यक्रम के रूप में प्रसारित किए गए थे। भारत में वर्ष 1936 में भारत में 'इम्पेरियल रेडियो ऑफ इंडिया' की शुरुआत हुई जो आजादी के बाद ऑल इंडिया रेडियो या आकाशवाणी बन गया। वर्ष 1947 में आकाशवाणी के पास छह रेडियो स्टेशन थे और पहुंच 11 प्रतिशत लोगों तक ही थी, लेकिन आज देश की अधिकतम आबादी तक रेडियो की पहुंच हैं। आज देश में एफएम रेडिया धूम मचा रहा है। भारत में वर्ष 2017 तक डिजिटल रेडियो का लक्ष्य तय किया गया था। वैज्ञानिक लोकप्रियकरण में रेडियो अपनी विशेष भूमिका निभा रहा है और दिल्ली सहित देश के कई राज्यों के आकाशवाणी केन्द्र विज्ञान आधारित कार्यक्रमों का नियमित प्रसारण कर रहे हैं। विश्व रेडियो दिवस का हर वर्ष एक अलग विषय होता है।

वर्ष 2018 का विषय है ''रेडियो और खेल''।

विज्ञान प्रभाव

28 फ़रवरी को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस (National Science Day) के रूप में मनाया जाता है। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस का मूल उद्देश्य विद्यार्थियों को विज्ञान के प्रति आकर्षित व प्रेरित करना तथा जनसाधारण को विज्ञान एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रति सजग बनाना है। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से होने वाले लाभों के प्रति समाज में जागरूकता लाने और वैज्ञानिक सोच पैदा करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद (एनसीएसटीसी) तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय के तत्वावधान में हर साल 28 फरवरी को भारत में मनाया जाता है। 28 फरवरी, 1928 को सर सी. वी. रमन ने अपनी खोज की घोषणा की थी। इसी खोज (प्रकाश के प्रकीर्णन पर उत्कृष्ट कार्य के लिये) उन्हें वर्ष 1930 में भौतिकी का प्रतिष्ठित नोबेल पुरस्कार दिया गया। आज उनका आविष्कार उनके ही नाम, रामन प्रभाव के नाम से जाना जाता है। वर्ष 1954 में उन्हें भारत सरकार द्वारा भारत रत्न की उपाधि से विभूषित किया गया और वर्ष 1957 में लेनिन शान्ति पुरस्कार से नवाज़ा गया था। इससे पूर्व आप वर्ष 1924 में अनुसंधानों के लिए रॉयल सोसायटी, लंदन के फैलो भी बनाए गए।

भौतिक शास्त्री सर सी.वी. रमन एक ऐसे महान आविष्कारक थे, जो न सिर्फ लाखों भारतीयों के लिए बल्कि दुनिया भर के लोगों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। रमन प्रभाव में एकल तरंग-दैर्ध्य प्रकाश (मोनोक्रोमेटिक) किरणें, जब किसी पारदर्शक माध्यम ठोस, द्रव या गैस से गुजरती है तब इसकी छितराई किरणों का अध्ययन करने पर पता चला कि मूल प्रकाश की किरणों के अलावा स्थिर अंतर पर बहुत कमजोर तीव्रता की किरणें भी उपस्थित होती हैं। इन्हीं किरणों को रमन-किरण भी कहते हैं। यह किरणें माध्यम के कणों के कंपन एवं घूर्णन की वजह से मूल प्रकाश की किरणों में ऊर्जा में लाभ या हानि के होने से उत्पन्न होती हैं। रमन प्रभाव का अनुसंधान की अन्य शाखाओं, औषधि विज्ञान, जीव विज्ञान, भौतिक विज्ञान, खगोल विज्ञान तथा दूरसंचार के क्षेत्र में भी बहुत महत्व है।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस पर देश के विज्ञान संस्थानों, विज्ञान प्रयोगशालाओं, स्कूल और कॉलेज तथा प्रशिक्षण संस्थानों में विभिन्न वैज्ञानिक गतिविधियों का आयोजित किए जाता है। महत्त्वपूर्ण आयोजनों में विज्ञान मेला एवं प्रदर्शनी, वैज्ञानिकों के भाषण, निबंध, लेखन, विज्ञान प्रश्नोत्तरी, तथा संगोष्ठी इत्यादि सम्मिलित हैं। विज्ञान के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए राष्ट्रीय एवं दूसरे पुरस्कारों की घोषणा भी की जाती है। भारत सरकार द्वारा विज्ञान की लोकप्रियता को बढ़ाने के लिए विज्ञान संचारकों के लिए विशेष पुरस्कार भी रखे गए हैं। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस देश में विज्ञान के निरंतर उन्नति का आह्वान करता है।

दुर्लभ के प्रति चिन्तन

फ़रवरी के अन्तिम दिन को विश्व दुलर्भ रोग दिवस (World Rare Disease Day) मनाया जाता है। स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाए जाने वाले इस जागरूकता कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य सामान्य जन और निर्णय लेने वालों के साथ दुर्लभ रोगों और रोगियों के जीवन पर उनके प्रभाव के बारे में जागरूकता बढ़ाना है। यह दिवस अन्य मरीजों के साथ नेटवर्क करने और अपनी बीमारियों के बारे में जानने का एक ऐसा समय है, जो चिन्तन करवाता है कि यह कैसे उन बीमारियों को प्रभावित करता है और उनकी बीमारियों के संगठन उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए क्या कर सकता है। इस दिवस की स्थापना वर्ष 2008 में की गई थी।

स्वास्थ्य सक्रियक ने बताया कि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार रोग दुर्लभ तब कहलाता है जब 2000 में से एक व्यक्ति दुलर्भ रोग से प्रभावित होता है। आज 5000 से लेकर 8000 तक रोग ऐसे हैं जिन्हें दुर्लभ परिभाषित किया जा सकता है, इनमें से 80 प्रतिशत का मूल आनुवांशिक या प्रजनक है। उपेक्षित रोगों के प्रति ध्यान आकर्षित कराते हुए उन्होंने कहा कि इस प्रकार के रोगों से विश्व के कम से कम 40 करोड़ लोग पीड़ित है, इनमें 50 प्रतिशत बच्चे हैं। इन रोगों में अधिकांश रोग संक्रामक रोग हैं जो उष्णकटीबन्धीय जलवायु वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। साथ ही उन क्षेत्रों में भी जहाँ लोगों को स्वच्छ जल और स्वास्थ्य एवं साफ-सफाई आदि सेवाएँ उपलब्ध नहीं हैं। मूपेनदावात के अनुसार, ये रोग केवल चिकित्सीय एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी चुनौतियाँ ही नहीं अपितु सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक चुनौती भी प्रस्तुत करते हैं तथा जिसके लिये विश्वव्यापी स्तर पर प्रतिबद्धता की आवश्यकता है।

research.org@rediffmail.com
❑❑❑

कॅरियर

कृषि विज्ञान

संजय गोस्वामी

कोर्स

- बीएससी/बीटेक इनएग्रीकल्चर/बीएससी क्रॉप फिजियोलॉजी/ डेयरी टेक्नॉलॉजी/मृदाविज्ञान
- एमएससी एग्रीकल्चर/ डेयरी टेक्नॉलॉजी
- एमएससी (एग्रीकल्चर बॉटनी/ बायोलॉजिकल साइंसेज)
- एमबीएइन एग्री बिजनेस मैनेजमेंट
- बीएससी इन फूड प्रोसेसिंग
- डिप्लोमा कोर्स इन एग्रीकल्चर एंड एलाइड प्रैक्टिसेज

ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं का आज कृषि क्षेत्र से रुझान तेजी से घट रहा है क्योंकि कृषि अधिक लाभप्रद और आकर्षक व्यवसाय नहीं है। कई वर्षों से किसानों की आत्महत्या देश के लिए चिंता का विषय है। देश में किसानों की आत्महत्या की समस्या हल किसानों को लाभ देने वाली फसल की बेहतरीन उपज के लिए कृषि क्षेत्र में कृषि विशेषज्ञों की आवश्यकता है जो उन लोगों को कृषि उत्पादों की बेहतर तरीके, मार्केटिंग व निर्यात करते हुए आकर्षक मुनाफे के साथ-साथ कृषि क्षेत्र और कॅरियर की सही जानकारी दे सके। भारत एक कृषि प्रधान देश है, लेकिन ऐसा नहीं है कि कृषि केवल पारंपरिक किसानों के लिए ही है। कृषि से आपको आधुनिक तरीकों से खेती करते हुए आकर्षक मुनाफे के साथ-साथ स्वरोजगार का अच्छा अवसर प्राप्त होता है। कृषि क्षेत्र में आप अच्छा उद्यमी बन सकते हैं।

आधुनिक तरीकों से खेती

फूलों की खेती : फूलों के बगैर कोई भी काम अधूरा-सा लगता है। फूलों की मांग पार्टी या फंक्शन के कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। फूलों की बढ़ती मांगने फूलों के कारोबार को काफी विकसित किया है। बीते कुछ सालों में इस क्षेत्र में काफी विकास हुआ है। खुद की नर्सरी खोलकर अच्छी कमाई की जा सकती है। इसके अलावा फ्लोरल डिजाइनर, लैंड स्केप डिजाइनर, फ्लोरी कल्चर थेरेपिस्ट, प्लांटेशन एक्सपर्ट, प्रोजेक्ट को आर्डिनेटर के साथ आपरिसर्च और टीचिंग भी कर सकते हैं।

मशरूम का उत्पादन : तथापि पिछले कुछ वर्षों में बेहतर कृषि-विज्ञान पद्धतियों की शुरूआत के परिणाम स्वरूप मशरूमों की उपज में वृद्धि हुई है। मशरूम की खेती के लिए तकनीकी कौशल की आवश्यकता है। मशरूम की बुआई से लेकर कटाई तक में लगभग दो-तीन महीने का समय लगता है। इतने समय में इसका अच्छा उत्पादन किया जा सकता है।

जैविक खेती : यह बात अब धीरे-धीरे किसानों को समझ में आ गई है। रासायनिक खाद और कीटनाशक का इस्तेमाल करने का नतीजा क्या होता है पिछले कुछ समय में ऑर्गेनिक खाद्य पदार्थों की काफी डिमांड बढ़ी है। डिमांड के मुकाबले काफी कम उत्पादन हो रहा है। ऐसे में इस कार्य को करके आप बेहतर मुनाफा कमा सकते हैं।

आयुर्वेदिक औषधि की खेती : आज नित नई आयुर्वेदिक दवा कंपनियां खुल रही हैं, जिन्हें आयुर्वेदिक औषधियों की हमेशा जरूरत रहती

है। आप चाहें तो नीम, तुलसी, एलोवेरा, अश्वगंधा, मुलेठी जैसे कई आयुर्वेदिक औषधियों की पैदावार कर बेहतर कमाई कर सकते हैं।

कृषि

उद्योग उत्पादन से जुड़े व्यक्तियों के अतिरिक्त वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, प्रौद्योगिकीविदों, विक्रय तथा विपणन से संबंधित व्यक्तियों कोकार्यदेताहै। कार्य के वे क्षेत्र उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण, अन्न एवं बीज प्रसंस्करण, मांस तथा कुक्कुट पैकिंग, डेयरी प्रसंस्करण, वसा एवं तेल, वस्त्र, रेशा, मशीनरी एवं उपकरण, उर्वरक एवं चूना, पेस्टिसाइड्स, हर्बीसाइड, चारा-विनिर्माण, निर्माण आदि से संबंधित होते हैं, जिनके लिए संबंधित क्षेत्रों में पर्याप्त ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

डेयरी टेक्नॉलॉजी

गाँव की आर्थिक संरचना को मजबूत करने में दुग्ध-उत्पादन का महत्वपूर्ण योगदान है। गांवों में हो रहे दुग्ध-उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए सरकार कई तरह से डेयरी योजनाओं के विकास पर काम कर रही है।

मत्स्यविज्ञान

मत्स्यविज्ञान कृषि विज्ञान का एक अहम क्षेत्र है इसमें मत्स्यपालन जलीय गुणवत्ता के अनुरूप मछली की प्रजाति का पालन, उन्नत किस्म की मछलियों का विकास, फिशरीज फार्म की बेहतर देखभाल तथा फिश रिसर्च से जुड़े कामकरते हैं। यह मछलियों को सुरक्षित रखने, नदी की गहराइयों तथा संबंधित परिस्थिति की पर बारीकी से ध्यान देते हैं।

फूडप्रोसेसिंग

निजी क्षेत्र की कई कंपनियां कृषि उत्पादों का ज्यादा समय तक उपभोग सुनिश्चित करने के लिए बड़े पैमाने पर फूड प्रोसेसिंग शुरू कर चुकी हैं। डिब्बा बंद जूस, आइसक्रीम, दुग्ध उत्पाद और चिप्स जैसे उत्पाद प्रोसेस्ड फूड के उदाहरण हैं।

मृदा वैज्ञानिक बनने के अवसर

मृदा वैज्ञानिक का प्राथमिक कार्य फसल की बेहतरीन उपज के लिए मृदा का विश्लेषण करना है। मृदा वैज्ञानिक मृदा प्रदूषण का विश्लेषण भी करते हैं जो उर्वरकों और औद्योगिक अपशिष्ट से उत्पन्न होता है सॉइलकेमिस्ट्री, माइक्रोबायोलॉजी, फ़िज़िक्स, पिडालजी, मिनरोलजी, बायोलॉजी, फर्टिलिटी, प्रदूषण, पोषण, बायोफर्टिलाइजर, अपशिष्ट उपयोगिता, सॉइलहेल्थ एनालिसिस आदिविषयों का अध्ययन करना चाहिए। छात्र कृषि सॉइलसाइंस (Agricultural soil science) में बैचलर या मास्टर डिग्री प्राप्त कर सकते हैं।

शोध

वैश्विक समस्या का रूप ले रहे खाद्यान्न संकट ने इस क्षेत्र को शोध संस्थाओं की प्राथमिकता का केंद्र बना दिया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद सहित देश की तमाम कृषि शोध संस्थाएं कृषि उत्पादकता बढ़ाने वाली तकनीकें और फसलों की ज्यादा उपज देने वाली प्रजातियां विकसित करने में जुटी हैं। स्पेशलाइजेशन के लिए मृदा विज्ञान, एग्रोनॉमी, हॉर्टिकल्चर, प्लांटब्रीडिंग, एग्रीकल्चर जेनेटिक्स, एग्रीकल्चर एंटोमोलॉजी, सांख्यिकीय एग्रीकल्चर, नाभिकीय कृषि, डेयरी टेक्नोलॉजी, मत्स्यपालन, मौसम विज्ञान, जल संसाधन आदि विकल्प मौजूद हैं।

न्यूनतम योग्यता

एग्रीकल्चर से संबंधित डिप्लोमा व बैचलर पाठ्यक्रम में दाखिले की न्यूनतम योग्यता विज्ञान विषयों (बायोलॉजी या गणित) 50 प्रतिशत न्यूनतम अंक के साथ 12वीं पास होना जरूरी है। भारत में एग्रीकल्चर विश्वविद्यालयों में कुल 15 प्रतिशत सीटें AIEEA प्रवेश परीक्षा के आधार पर मिलती है जो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा एग्रीकल्चर में बैचलर डिग्री पाठ्यक्रम में दाखिले के लिए अखिल भारतीय प्रवेश परीक्षा (यूजी) एग्रीकल्चर) परीक्षा में पात्रता सूची के आधार पर किया जाता है। ग्रेजुएशन के बाद एमएससी में दाखिला अखिल भारतीय प्रवेश परीक्षा (पीजी) में योग्यता के आधार पर लिया जा सकता है।

संभावनाएं

कृषि वैज्ञानिक के साक्षात्कार के लिए उम्मीदवारों का चयन मुख्य परीक्षा में उनके निष्पादन के आधार पर किया जाता है। कोई भी व्यक्ति एक कृषि वैज्ञानिक बन सकता है। इन पदों पर भर्ती ICAR/CSIR की नेट परीक्षा - जो वैज्ञानिक पद तथा लेक्चर शिप के लिए संचालित की जाती है, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में विकिरण से खाद्य संरक्षण और विकिरण से बीज/फ़सल का विकास के लिए वैज्ञानिक/वैज्ञानिक सहायक के पदों पर भर्ती प्रवेश परीक्षा/साक्षात्कार के माध्यम से की जाती है। इसके लिए बीएससी एग्रीकल्चर म न्यूनतम 60 प्रतिशत अंक के साथ पास होना जरूरी है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में भी कृषि स्नातकों, स्नातकोत्तरों तथा डॉक्टरोट डिग्रीधारियों के लिए बेहतर विकल्प है। स्नातक डिग्रीधारी व्यक्ति संबंधित विषय में कृषि विश्वविद्यालय में तकनीकी पदों के लिए आवेदन कर सकते हैं। सेना के लिए भोजन का निरीक्षण और पोषण संतुलन के लिए और दुश्मन से सुरक्षित जीवन के लिए मरू (मरुस्थली) वृक्ष सहारा लेना

पड़ता है। इसके लिए रक्षा मंत्रालय में कृषि वैज्ञानिकों/तकनीकी अधिकारी की भर्ती की जाती है।शुगर मिल, फूड कॉर्पोरशन ऑफ इंडिया, बैंक, कॉन्ट्रैक्ट, फार्मिंग कंपनी कृषि सेवा, निरीक्षण तथा विनियमन, खाद्य एवं चारे, बीज एवं उर्वरक से जुड़े व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

- आईसेक्ट विश्वविद्यालय, भोपाल
- आचार्य एन.जी. रंगा कृषि विश्वविद्यालय, (ए.एन.जी.आर.ए.यू.), हैदराबाद, आंध्र प्रदेश
- आणन्द कृषि विश्वविद्यालय, आणन्द, गुजरात
- कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर
- विधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय (बी.सी.के.वी.वी.), पश्चिम बंगाल
- बिरसा कृषि विश्वविद्यालय (बी.ए.यू.) रांची, झारखंड
- असम कृषि विश्वविद्यालय (ए.ए.यू.), जोरहाट, असम
- कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर, शिवाजी नगर, पुणे
- केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय (सी.ए.यू.), इम्फाल, मणिपुर
- डॉ. पंजाब राव देशमुख कृषि विश्वविद्यालय (पी.के.वी.), अकोला, महाराष्ट्र
- केन्द्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुंबई
- डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी (आई.एस.पी.यू.एच. एंड ई.), हिमाचल प्रदेश
- गोविंद वल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय (जी.वी.पी.ए.यू. एवं टी) पंतनगर, उत्तर प्रदेश
- गुजरात कृषि विश्वविद्यालय, सरदार कृषि नगर, दांतीबाड़ा ,बनासकांठा(गुजरात)
- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
- भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर
- इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय (आई.जी.के.वी.वी.), कृषक नगर, रायपुर
- जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, (जे.एन.के.वी.वी.), जबलपुर, मध्य प्रदेश
- कोंकण कृषि विद्यापीठ (के.के.वी.), डोपाली, महाराष्ट्र
- सैम हिग्गिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
- इलाहाबाद एग्रिकल्चरल इन्सटीयूट (डीम्ड युनिवर्सिटी), इलाहाबाद
- केरल कृषि विश्वविद्यालय (के.ए.यू.), केरल
- राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय (आर.ए. यू.), पूसा, समस्तीपुर, बिहार
- महाराणा प्रताप कृषि एवं औद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान
- महाराष्ट्र पशु विज्ञान एवं मात्स्यिकी विज्ञान विश्वविद्यालय , नागपुर, महाराष्ट्र
- मराठवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय (एम.ए.यू.) परभणी, महाराष्ट्र
- नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, नरेन्द्र नगर, फेजाबाद
- महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ (एम.पी.के.वी.), महाराष्ट्र
- नवसारी कृषि विश्वविद्यालय, (एन.ए.यू.), नवसारी, गुजरात
- राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
- जूनागढ़ कृषि विश्वविद्यालय, जूनागढ़
- उड़ीसा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर
- पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना
- राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर
- सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय , मेरठ
- सरदार कृषि नगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, गुजरात
- तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय , कोयम्बत्तूर, तमिलनाडु
- कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, बंगलौर
- शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, श्रीनगर (जम्मू-कश्मीर)
- कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, कृषि नगर, धारवाड़, कर्नाटक
- उ.प्र. पंडित दीन दयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, मथुरा, उ.प्र.
- उत्तर बंग कृषि विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल
- पश्चिम बंगाल पशु एवं मात्स्यिकी विज्ञान विश्वविद्यालय, कोलकाता
- चंद्रशेखर आजाद युनिवर्सिटी ऑफ़ एग्रीकल्चर एंड टेक्नॉलॉजी, कानपुर, उत्तरप्रदेश

goswamisanjay80@yahoo.in

❑❑❑

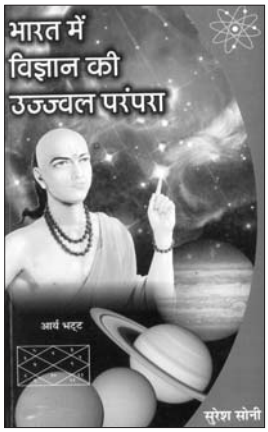

पुस्तक समीक्षा

पूर्वी-पश्चिमी वैज्ञानिक अवधारणा का विमर्श

मनीष पारासर

'भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा' वरिष्ठ विज्ञान संचारक सुरेश सोनी की सद्यः प्रकाशित कृति है। इस किताब में भारतीय विज्ञान परंपरा पर विषद विमर्श है जो कि स्पष्ट रूप से इस अवधारणा को प्रतिपादित करता है कि भारत में विज्ञान और दर्शन का साम्य सदैव ही रहा। भूमिका स्वरूप लिखे मनोगत में लेखक की स्वीकारोक्ति है- ''भारत मात्र धर्म दर्शन के क्षेत्र में ही नहीं विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी अग्रणी था। इतना ही नहीं तो हमारे पूर्वजों ने विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय किया था। जिसमें से उत्पन्न विज्ञान दृष्टि के कारण विज्ञान का विकास जैवसृष्टि के अनुकूल व मंगलकारी रहने की दृष्टि प्राप्त हुई थी जिसकी आवश्यकता आज का विश्व भी अनुभव कर रहा है।'' यहाँ यह रेखांकित करना होगा कि लेखक इस आवश्यकता को समझ-बूझ रहा है और एक अनुकूल कृति की रचना भी कर रहा है। विषय वस्तु की दृष्टि से यह कृति के दो भाग हैं जो कि एक आंतरिक लय की तरह है। यहाँ सामग्री स्पष्टतः विभक्त नहीं है और किताब को खंण्डो में बाँटने की दरकार भी नहीं। किंतु पाठक जब इस कृति से गुज़रता है तो वह साफ तौर पर दो रास्ते देख पाता है। पहला- भारतीय परंपरा पर विमर्श। दूसरा- विषयगत चिंतन।

भारतीय विज्ञान परंपरा पर विमर्श के लिए उसे तीन लेखों से गुजरना होता है। ये लेख हैं- पहला : भारत- वर्तमान और अतीत, दूसरा : पश्चिम व भारत में प्रयोगों के प्रति दृष्टि और तीसरा : पश्चिम विज्ञान व भारतीय अवधारणा। पहले लेख 'भारत-अतीत एवं वर्तमान' में लेखक भारत की गौरवशाली परंपरा की बात करता है। ज़ाहिर है कि वह विज्ञान की परंपराओं पर बात करते हुए अन्य अंतर्विषयों पर बात करते हुए चलता है। इस लेख में गौरवशाली अतीत, विज्ञान का महत्व, आज का यथार्थ जैसी अवधारणाओं पर विस्तार से चर्चा की गई है। एक उदृद्धरण देखें - ''हजारों वर्षों तक जो देश जगद्गुरु व सोने की चिड़िया रहा, उस पर पिछले 1500 वर्षों में हुए बर्बर आक्रमणों, कुछ अपने सामाजिक दोषों तथा मुसलमानों के मजहबी आक्रमण, लूट और अंग्रेजों के 190 वर्षों के शासन में आर्थिक दृष्टि से देश का इतना शोषण हुआ कि सोने की चिड़िया कंगाल हो गई। यहाँ के कृषि, उद्योग, व्यापार को नष्ट किया गया। इस कारण आज जब हम देखते हैं कि दुनिया के देशों की पंक्ति में भारत का कौन सा स्थान है जो हम पाते हैं कि उसका 124 वां स्थान है। दुनिया में भारत को फिर से जगद्गुरु और सोने की चिड़िया बनाने की चुनौती आज की पीढ़ी के सामने है। स्वाधीनता संग्राम के अनेक सेनानियों तथा चिंतकों ने भव्य भारत का जो स्वप्न देखा, उसे साकार करने का आह्वान आज की पीढ़ी के सामने है। ऊपर उल्लिखित स्वप्न को साकार करना है तो आवश्यकता है कि देश के कला, कौशल, व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि सभी क्षेत्रों में पुनः प्रगति हो। सैद्धांतिक दृष्टि से धर्म, दर्शन के क्षेत्रों में देश की श्रेष्ठता आज भी विश्व को मान्य है। पर जहाँ भौतिक समृद्धि का प्रश्न आता है, या तत्वज्ञान के अनुकूल समाज जीवन में व्यवहार का प्रश्न आता है, तो उत्तर देना कठिन हो जाता है।'' (पृष्ठ 12)

इस कठिन उत्तर की ही खोज की परिणति स्वरूप इस किताब की रचना हुई है जहां तत्वज्ञान की ओर पाठक को संकेत मिलता है और वह अपनी उज्जवल परंपरा के प्रति जिज्ञासु हो जाता है। पाठक की इस जिज्ञासा का शमन अन्य लेखों में है जिनमें बार-बार कुछ प्रश्नों से जूझना होता है जैसे- विज्ञान और तकनीकी मात्र पश्चिम की देन है या भारत में भी इसकी कोई परंपरा थी? भारत में किन-किन क्षेत्रों में वैज्ञानिक विकास हुआ? विज्ञान और तकनीकी के अंतिम उद्देश्य को लेकर क्या भारत में कोई विज्ञान दृष्टि थी? और यदि थी तो आज की विज्ञान दृष्टि से उसकी विशेषता क्या थी? आज विश्व के सामने विज्ञान एवं तकनीक के विकास के साथ जो समस्याएं खड़ी हैं उनका समाधान क्या भारतीय विज्ञान दृष्टि में है? इसके अतिरिक्त, ब्रह्मांड क्या है? इसका अंतिम सत्य क्या है? ब्रह्मांड को संचालित करने वाली शक्तियां क्या हैं? इसके नियम क्या हैं? ब्रह्मांड की विभिन्न इकाइयों का स्वरूप क्या है तथा उनका आपसी संबंध क्या है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके संदर्भ में लेखक ने विचार किया है और लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समूचे ब्रह्मांड का एक-एक कण आपस में मिला हुआ

है। यहाँ यह दोहा बहुत प्रासंगिक है -

विश्व एक है ये नियम है ऐ मन कभी न भूल।
इक तारा थर्रा उठा जब तोड़ा इक फूल दो।।

कहना होगा कि ब्रह्मांड का कण-कण परस्पर संगुफित कुछ ऐसे है कि एक कण को चोट पहुँचती है तो दूसरे में विचलन होता है। लेखक ने लिखा है - ''आज का विज्ञान कहता है सम्पूर्ण जगत में द्वंद्व है। मैटर है, एन्टी मैटर है। यदि ब्रह्मांड में एक ऊर्जाणु दक्षिावर्त (Clockwise) घूम कर ऊर्जा रहा है, तो इसका साथी कहीं दूसरी जगह वामावर्त (Anti Clockwise) नीचे आ रहा है। भारतीय दार्शनिकों ने भी प्रारंभ से कहा जगत द्वंद्वात्मक है- पुरुष-प्रकृति, सुख-दुःख, शीत-उष्ण, दिन-रात।

आज का विज्ञान कहता है कि सम्पूर्ण दुनिया में आपसी सम्बन्ध है। इसे व्यक्त करने वे भौतिकी के क्षेत्र में शब्द प्रयोग करते हैं (Inseparable quantum interconnectedness where every particle contains every other particle) अर्थात प्रत्येक ऊर्जाणु के भीतर बाकी सारे ऊर्जाणु विद्यमान हैं। भारतीय ऋषियों ने इस सत्य को अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त किया था वृक्ष में बीज , बीज में वृक्ष। एक बीज में पूरा वृक्ष समाया है और वृक्ष जब उगता है तो उसमें बीज आते हैं। इसी तरह से कहा यद्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे। जो पिंड में है वही ब्रह्मांण्ड में है। इस प्रकार विज्ञान के विकास के साथ पश्चिम में वैज्ञानिक सोचने लगे हैं कि सत्य की खोज मात्र भौतिक धरातल पर ही नहीं हो सकती। अतः हीजेनबर्ग, इरविन श्रोडिंगर, जेम्स जीन्स, फ्रिटजोफकाप्रा, गेझुकोव, ज्योफ्रीच्वे आदि वैज्ञानिक जगत को समझना है तो मन, चेतना इसको भी समझना पड़ेगा ऐसा मानते हैं। इस प्रकार टुकड़ों में नहीं तो समग्रता में विचार करना पड़ेगा अतः आज होलिस्टिक एप्रोच की चर्चा चल रही है। परंतु मूलभूत प्रश्न यह है कि आज भी यह दृष्टिकोण जितना प्रभावी होना चाहिये नहीं हुआ है। आज भी विज्ञान खेमों में बंटा है। भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, मनोविज्ञान सब अपने-अपने क्षेत्र में काम कर रहे हैं। एक समग्र दृष्टि का अभाव है इसी का परिणाम है कि वैज्ञानिक विकास के साथ ही मानव सुख एवं समस्या के दोराहे पर खड़ा है।''

अन्य दो लेखों में पश्चिम व पूर्वी दृष्टिकोण और तर्क व प्रयोगों पर बात होने के साथ-साथ पश्चिम भारतीय धारणा पर आख्यानात्मक विमर्श है जो बहुत ही सरलता से प्रस्तुंत किया गया है। लेखक ने अपनी बात स्पष्ट और सिद्ध करने के लिए प्रचूरता से संदर्भ ग्रहण किये हैं। विषयगत दृष्टि से पाठक, विद्युत शास्त्र, मैकेनिक्स एवं यंत्र विज्ञान, धातु विज्ञान, विमान विद्या, नौका विज्ञान, स्थापत्य शास्त्र, रसायन शास्त्र,काल गणना, खागोल कृषि विज्ञान, प्राणि शास्त्र, स्वास्थ्य विज्ञान, ध्वनि तथा वाणी विज्ञान, लिपि विज्ञान, सैद्धांतिक विज्ञान आदि विषय से गुज़रना है। इन विषयों और लेखों का अध्ययन करते हुए पाठक पूर्वी-पश्चिमी सभ्यता अथवा विचारधाराओं के तुलनात्मक अध्ययन से भी गुजरता है। लेखक ने अपनी बात के लिए 66 संदर्भ ग्रंथों से उद्धृरण लिए हैं जो कृति को अधिक विश्वसनीय, रोचक और ग्राह्य बनाते हैं। विज्ञान के पाठक, प्रेमी, शोधार्थियों के लिए यह एक उपयोगी कृति है।

manishparashar71@gmail.com

वार्षिक घोषणा

समाचार पत्र का नाम	: इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए
भाषा जिसमें प्रकाशित किया जाता है	: हिन्दी
प्रकाशन की समयावधि	: मासिक
प्रकाशक का नाम	: सिद्धार्थ चतुर्वेदी
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: स्कोप कैम्पस एनएच.-12, होशंगाबाद रोड, भोपाल-47
संपादक का नाम	: संतोष चौबे
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए, स्कोप कैम्पस एनएच.-12, होशंगाबाद रोड, भोपाल-47
मुद्रणालय जहाँ मुद्रण	: पहले पहल प्रिंटरी 25A, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एमपी.नगर, भोपाल (म.प्र.)

उपर्युक्त समस्त जानकारी सही दी गयी है।

सिद्धार्थ चतुर्वेदी
स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक

अनुसृजन शृंखला की प्रकाशित पुस्तकें

क्र	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य रुपये
प्रथम चरण			
1.	खनिज और मानव	डॉ. विजय कुमार उपाध्याय	100/-
2.	भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम	कालीशंकर एवं राकेश शुक्ला	100/-
3.	जल संरक्षण	डॉ. डी. डी. ओझा	100/-
4.	भूमि संरक्षण	डॉ. दिनेश मणि	80/-
5.	पर्यावरणः दशा एवं दिशा	अरुण कुमार पाठक	100/-
6.	वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोत	संगीता चतुर्वेदी	60/-
7.	प्राचीन भारत में वैज्ञानिक चिंतन	डॉ. पुरुषोत्तम चक्रवर्ती	60/-
8.	इलेक्ट्रॉनिक आधारित सामरिक सुरक्षा तकनीक	डॉ. मनमोहन बाला	60/-
9.	जैव विविधता संरक्षण	मनीष मोहन गोरे	50/-
10.	दूर संचार	संतोष शुक्ला	80/-
11.	घर-घर में विज्ञान	डॉ. के. एम. जैन	80/-
12.	भौतिकी की विकास यात्रा	डॉ. के. एम. जैन	90/-
13.	नेनोटेक्नॉलॉजी	डॉ. पी. के. मुखर्जी	80/-
द्वितीय चरण			
14.	हमारे जीवन में अंतरिक्ष	कालीशंकर एवं राकेश शुक्ला	150/-
15.	वैश्विक तापन	डॉ. दिनेश मणि	100/-
16.	ई-वेस्ट प्रबंधन	संतोष शुक्ला	100/-
17.	लेजर लाईट	डॉ. पी. के. मुखर्जी	100/-
18.	न्यूक्लियर एनर्जी	अनुज सिन्हा	100/-
19.	न्यूट्रिनों की दुनिया	डॉ. के. एम. जैन	100/-
तृतीय चरण			
20.	भोजवैटलैंडः भोपाल ताल	राजेन्द्र शर्मा 'अक्षर'	150/-
21.	महासागर बोलते हैं	बजरंगलाल जेठू	250/-
22.	महासागरः जीवन के आधार	नवनीत कुमार गुप्ता	200/-
23.	ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति	महेन्द्र कुमार माथुर	200/-
24.	सूक्ष्म जीव विज्ञान	डॉ. पंकज श्रीवास्तव एवं श्रीमती तोषी जैन	200/-

25.	भारत में विज्ञान एवं विज्ञान संचार की परंपरा	विश्वमोहन तिवारी	200/-
26.	सेहत और हम	मनीष मोहन गोरे	200/-
27.	रसोई विज्ञान	पुनीता मल्होत्रा	100/-
28.	ह्यूमन ट्रांसमिशन एवं अन्य विज्ञान कथाएं	डॉ. ज़ाकिर अली रजनीश	150/-
29.	बायोइंफार्मेटिक्स	डॉ. अर्चना पांडेय	150/-
30.	हमारे प्रेरणा स्रोत भारतीय वैज्ञानिक	राम शरण दास	200/-
31.	मध्यप्रदेश की विज्ञान संचार यात्रा	चक्रेश जैन	100/-
32.	हिन्दी विज्ञान लेखनः भूत, वर्तमान एवं भविष्य	डॉ. शिव गोपाल मिश्र	200/-
33.	दैनिक जीवन में रसायन	डॉ. पुरुषोत्तम चक्रवर्ती	200/-
34.	जलवायु परिवर्तन	डॉ. दिनेश मणि	150/-
35.	ग्रीन बेबी	विजय चितौरी	200/-
36.	फोरेन्सिक साइंस	डॉ. पंकज श्रीवास्तव	150/-
37.	सर्वशास्त्र शिरोमणि गणित	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र	200/-
38.	ऊतक संवर्धन	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	200/-
39.	आइए लिनक्स सीखें	रविशंकर श्रीवास्तव	250/-
40.	हम क्या समझते हैं?	प्रदीप श्रीवास्तव	100/-
41.	सौन्दर्य प्रसाधनों का रसायन विज्ञान	डॉ. बबिता अग्रवाल	200/-
42.	प्रदूषण जनित रोग	डॉ. सुनंदा दास	200/-
43.	भोपाल के पक्षी	डॉ. स्वाति तिवारी	400/-
44.	पर्यावरण और मानव जीवन	डॉ. सुमन गुप्ता	200/-
45.	बच्चों के लिए विज्ञान मॉडल	बृजेश दीक्षित	100/-

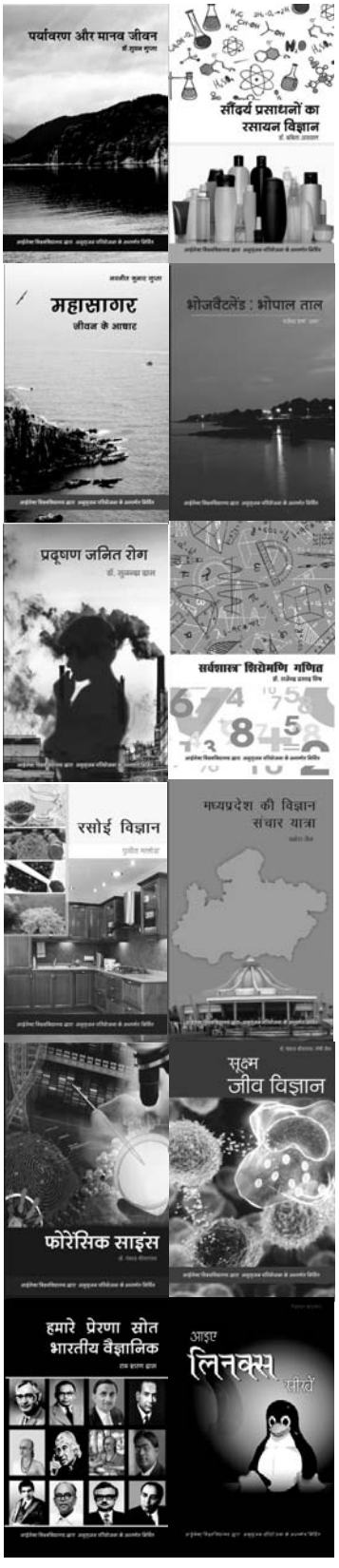

पुस्तक प्राप्ति के लिए 'आईसेक्ट विश्वविद्यालय' को भुगतान के दो विकल्प :
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, शाखाः महावीर नगर, भोपाल ब्रांच कोड : 3867,
IFSC:SBIN0003867, MICR 462002015, Account No. 32425578992

अथवा

बैंक ड्राफ्ट : 'आईसेक्ट विश्वविद्यालय' को भोपाल में देय। ड्राफ्ट इस पते पर भेजें:
निदेशक, आईसेक्ट विश्वविद्यालय, बंगरसिया चौराहे के पास,
चिकलोद मार्ग, जिला रायसेन - 464993

डाक खर्चः पांच पुस्तक तक की खरीदी पर पुस्तकों के मूल्य में डाक खर्च रु. 50/- जोड़ें। पांच से अधिक पुस्तकों की खरीदी पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

महत्वपूर्ण : खरीदी जाने वाली पुस्तकों की सूची एवं भुगतान का विवरण निम्नलिखित ई-मेल पर भेजें : cscau@aisectuniversity.ac.in